श्रीहरिः

# विषयानुक्रमणिका

| विषय | पृष्ठ |
|---|---|

## चिकित्सा प्रकरण ।



## कषाय ।



| विषय | पृष्ठ |
|---|---|

## वातज्वरकी चिकित्सा ।



## पित्तज्वर चिकित्सा ।



## कफ ज्वरकी चिकित्सा ।



## वात पित्तज्वर चिकित्सा ।

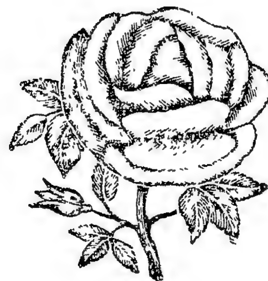
## परिभाषा प्रकरण ।



## पारिभाषिक शब्द ।

॥ विषयानुक्रमणिका समाप्त ॥

———o———



पुस्तक मिलने का पता—

सनातनधर्म-यन्त्रालय,

मुरादाबाद.

❀ श्रीः ❀

# भूमिका ।



आयुर्वेदकी शिक्षा समाप्त करनेके अनन्तर, जबसे मुझे स्वतन्त्र विचार करनेका समय मिला है, तबसे मेरी यह धारणा दिनों दिन दृढ़ होती गई, कि-प्रत्येक दशामें घर गृहस्थोंके साधारण या विशेष रोगके उपचार (इलाज) में हर जगह सुलभ मिलने वाली आयुर्वेदकी जड़ी बूटी आदि से जिस सुगमताके साथ लाभ उठाया जा सकता है। अन्य चिकित्सा विधियोंसे ऐसी सुगमता व सरलता पूर्वक प्रत्येक स्थितिका पुरुष इतना लाभ नहीं उठा सकता। परन्तु आयुर्वेद-साहित्य-वाटिकाके चिरदिनसे असंस्कृत दशामें पड़े रहनेके कारण, तथा सामयिक सुगम सर्वसाधारणकी बोलचालकी भाषामें उसका सुसंस्कृत विकाश कम होनेके कारण, वह सर्वसाधारणके लिये दुर्गम वियावान जंगलमय सा प्रतीत हो रहा है। क्योंकि-अबतक मातृभाषा हिन्दीमें कोई भी ऐसी पुस्तक नहीं लिखी गई जिसमें आयुर्वेद शास्त्रोंके सिद्धान्त, चिकित्सा विधि, औषधिनिर्वाचन और औषधिनिर्माणकी विद्वन्मण्डलीमें वर्षोंसे व्यवहारमें आनेके कारण सततोनुभूत विधियों को एकत्रित कर नाति-संक्षेप विस्तारसे प्रचार किया गया हो। जिससे साधारणसे साधारण भाषा ज्ञान रखने वाले स्त्री पुरुषों से लेकर विद्यालयोंके नव परीक्षोत्तीर्ण छात्र तक तथा प्रवासमें सर्वसाधारण वैद्यगण आवश्यक समय पर लाभ उठा सकें, तथा आयुर्वेदकी निर्दोष अमृतमय औषधियोंके व्यवहारसे सुखित गृहस्थ के आनन्दसे उच्चारण किये हुए आयुर्वेदके जय २ कारका शब्द दिशाओंको मुखरित और संसारको चकित करे। यही कारण है कि-अधिकांश देशभक्तोंकी इस चिकित्साकी ओर परम श्रद्धा और भक्ति होने पर भी वे कर्तव्यजीवनमें इसके व्यवहारसे यथेष्ट लाभ नहीं उठा रहे हैं।

कुछ कर्मवीर आयुर्वेद भक्त वैद्यराजोंने मातृभाषामें साहित्य और भाषाकी दृष्टिसे आयुर्वेदकी बहुत उत्तम २ पुस्तकें लिखी हैं। जिनसे आयुर्वैदिक साहित्यका बहुत कुछ उपकार हुआ है। किन्तु उन पुस्तकों में इस बातका कम ध्यान रखा गया है, कि-प्रत्येक रोगके चुने हुए जो शास्त्रीय प्रयोग उस २ रोगमें अपनी अचूक गुणकारक शक्तिके कारण सदियोंसे वैद्यसमाजमें आदरके साथ व्यवहार किये आरहे हों, जो चुनी हुई औषधि निर्माण विधियाँ सुगम होनेके कारण वैद्यसमाज में प्रचलित हों; जो शास्त्रसम्मत चिकित्सा विधियाँ शास्त्रोंमें संक्षेपसे वर्णन कीगई हैं उनकी सुबोध सुललित व्याख्या और रोगोंका विवेचन तथा लाक्षणिक चिकित्सा पूर्वक औषधि निर्वाचन सर्व साधारणकी समझमें आसके, इधर उधरकी व्यर्थ बातोंको छोड़कर उन्हींको चुन २ कर लिखा जाता। जिससे साधारणसे भी साधारण पाठक निधड़क आवश्यक समय पर सुगमतासे औषधि निर्वाचन आदि कर सके। उसको उस समय यह भ्रम न होने पावे, कि-इस रोगके लिए ये जो सैंकड़ों औषधियाँ लिखी गई हैं, इनमेंसे कौनसी औषधि ( रोगकी इस दशामें ) बनाकर व्यवहार करूँ। यही बात विद्यालयोंके नवीन उपाधिधारी छात्रोंके सम्मुख भी बड़ी विकट दशामें उपस्थित हुआ करती है। जब कि-वे पोथीके पुतले बनकर विद्यालयका सनद्-रूपी शस्त्र हाथमें लेकर कार्यक्षेत्रमें अवतीर्ण होते हैं, तब उन्हें अपनी उन पठित बड़ी २ पोथियोंमेंसे रोगीकी सामयिक दशाका निर्वाचन तथा औषधि व्यवस्था करनेमें विषय संदेहका शिकार होना पड़ता है। बहुत समय अनुभवमें आया है, कि-जब औषधालयसे बाहर किसी जगह दो चार या अधिक दिनके लिए किसी रोगीकी चिकित्साके लिए जाना पड़े, उस समय भारी २ पोथियोंका साथमें ले जाना अति कठिन होता है। यदि उस समय इस प्रकारकी कोई छोटीसी पुस्तक पास हो तो उससे समय पर बहुत सहायता मिलती है। कभी २ जब किसी भयंकर रोगग्रसित रोगीका यथार्थ विवेचन ध्यानमें नहीं उतरता, उस

समय "सरल-आयुर्वेदशिक्षा" सरीखी गागरमें सागर भरनेकी कहावत चरितार्थ करने वाली पुस्तक पास हो, तो उसके रोग विवेचन आदि पर साधारण मनोयोग पूर्वक विवेचन करनेसे, रोगीकी यथार्थ दशा समझनेमें सुभीता होते देखा गया है। बस इन्हीं कठिनाइयोंके मिटने और सुभीतोंके मिलनेकी आशासे ही हम इस पुस्तकके लिखनेमें तत्पर हुए हैं इस पुस्तकके पास रहने पर हमें पूर्ण आशा है, कि-यह सब आवश्यकतायें और चिकित्साके समयकी झंझटोंको बहुत कम कर देगी।

भगवान्‌की अपार दयासे आयुर्वेदके प्रेमी पाठकोंको "सरल-रोगी परिचर्या शिक्षा" के अनन्तर आज यह "सरल-आयुर्वेद-शिक्षा" नाम से दूसरी भेंट उपस्थित करनेका सौभाग्य प्राप्त होरहा है। प्रस्तुत पुस्तक बङ्ग भाषामें आयुर्वेदके सत्साहित्यप्रचारसे लब्धप्रतिष्ठ कविराज श्री देवेन्द्रनाथसेन व उपेन्द्रनाथसेन महाशय लिखित और प्रचारित आयुर्वेद-प्रदीपका मातृभाषानुवाद है। लेखक प्रवरोंने इस पुस्तकके विषयोंको सर्वाङ्गसुन्दर सर्वसाधारणके सुपाठ्य बनानेमें जो सराहनीय उद्योग किया है, उसीने मुझे मातृभाषाके सत्साहित्य मन्दिरमें इसको संगृहीत करनेकी ओर आकर्षित किया है। इन दिवंगत आत्माओंके प्रतापसे ही आज हमें मातृभाषामें आयुर्वेदविषयक ऐसी सर्व साधारणका अधिकाधिक हितसाधन करने वाली पुस्तकको अनुवादित करनेका सौभाग्य प्राप्त होरहा है। इसलिये हम इन महानुभावोंको अति-कृतज्ञता पूर्वक धन्यवाद देते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक आयुर्वेदीय चिकित्साके गूढ़ संकेतोंको सुगमतासे समझनेके लिए प्रश्न और उत्तररूपमें लिखी गई है। स्थान २ पर कठिन विषयोंको सरल बनानेके लिए विशेष २ उदाहरण दिये गये हैं। जिससे निःसंकोच सोनेमें सुगन्धकी कहावतको चरितार्थ हुई कहा जासकता है।

पुस्तकके आरम्भमें विस्तृत विषयसूची दी गई है, जिससे किसी भी रोगका वर्णन, चिकित्सा-विधि, औषधि आदि समय पर अति शीघ्र निकाल ली जासकती है।

**अवतरणिका प्रकरणमें**—वात, पित्त व कफ इन तीनों दोषों और रस रक्त आदि सात धातुओंका विवेचन, वात आदि दोषोंके बिगड़ने के कारण व उनके पृथक् २ लक्षण, दोषके प्रकोप, प्रसर, स्थानप्राप्ति आदिका वर्णन, रोगसंकर और रोग व उपद्रवका विवेचन, नाड़ी, जिह्वा व नेत्र आदिकी परीक्षा, द्रव्योंके रस गुण वीर्य विपाकका वर्णन, और विरेचक, स्तम्भक, मूत्रकारक आदि औषधियोंके गुण दिये गये हैं।

**रोगाधिकारमें**—ज्वरआदि रोगोंके लक्षण, चिकित्सा विधि, चुने हुए अनुभूत छोटे २ चुटकले वा क्वाथ आदि लिखकर, नीचेसे उस २ रोगमें दृष्टफल शास्त्रीय रस, गुटिका, अवलेह, चूर्ण, आसव तैल घृत आदि औषधियोंके गुण और व्यवहार-विधि दीगई है। सबसे विशेष बात यह रखी गई है कि-रोगके किन २ लक्षणोंमें या किस २ दशामें कौनसी औषधिकी व्यवस्था की जाय, इसका विवेचन किया गया है। प्रत्येक रोगके संस्कृत नामोंके सामने यथा-सम्भव प्रचलित भाषाके नाम दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त एक समान लक्षण वाले दो भिन्न २ रोगोंमें कैसे भेद किया जाय, तथा एक समान प्रकृतिके भिन्न २ रोगों की औषधियाँ एक दूसरेमें कैसे वर्ती जासकती है, आदिका विवेचन स्थान २ पर दिया गया है। जैसे-गर्भ और स्त्रियोंके रक्तगुल्ममें बहुत समय यह निर्णय करना कठिन होजाता है, कि-इस रोगिणीका गर्भ रह गया है या रक्तगुल्म है, तथा रक्तातिसारकी औषधि बनी हुई हो, और रोगी रक्तार्श या रक्तपित्तका आया, तब उस औषधिको कैसे रक्तार्श या रक्तपित्तमें वर्ता जासकता है, आदि २ यथास्थान ऐसी २ बातोंका खुलासा बड़ी चतुराईसे समझाया गया है।

**अरिष्ट ( मृत्युसूचक ) लक्षणोंमें**—प्रत्येक रोगमें किन २

लक्षणोंके उपस्थित होने पर रोगको मरणासन्न समझना चाहिए, इसका खुलासा वर्णन किया गया है।

**पथ्यापथ्य प्रकरणमें**—प्रत्येक रोगमें कौन २ से लाभदायक पथ्य और कौन २ से अपकारक अपथ्य हैं, लिखा गया है।

**परिभाषा प्रकरणमें**—किसी प्रयोगके बनानेके लिए औषधिका मूल शाखा आदि कौनसा भाग सूखा या गीला लेना चाहिए, प्रयोगमें लिखी हुई किसी औषधिके न मिलने पर उसके बदलेमें दूसरी कौन २ सी समानगुण औषधियाँ लेनी चाहिये, तैल घृतकी मूर्छाविधि और उनके पकानेकी विधिका शास्त्रीय परिभाषा सहित विवेचन और धातु उपधातु, रस, उपरस आदिके शोधन मारणकी सुगम विधियाँ दीगई हैं।

**औषधिप्रस्तुत-प्रणाली प्रकरणमें**—अकारादि अनुक्रम से शास्त्रीय प्रसिद्ध शतशोनुभूत विद्वान् वैद्योंमें प्रचलित ( जिनके गुण और व्यवहार विधि प्रत्येकरोगके वर्णनके अन्तमें दीगई है ) रस, गुटिका आसव, अवलेह, तैल, घृत आदिके तीन सौके करीब चुने हुए प्रयोग ( नुसखे ) और उनके बनानेकी विधि दी गई है।

पुस्तकके अन्तर्गत विषयोंका जो थोड़ासा दिग्दर्शन ऊपर किया गया है, उससे तथा एकबार पुस्तकको आद्योपान्त पढ़ कर पाठकगण यह समझ सकेंगे, कि—जिन उद्देश्योंसे प्रेरित होकर इसका चुनाव और अनुवाद हुआ है, उसमें हम कहाँ तक सफल हुए हैं। हमारे विचारसे प्रत्येक शिक्षित परिवारमें इसकी एक प्रति संगृहीत रहनेसे, वे समय पर इससे बहुत कुछ लाभ उठा सकेंगे।

यद्यपि पुस्तकको मातृभाषामें सर्वाङ्ग सुन्दर उपादेय बनानेमें हमने भरसक चेष्टा की है। फिर भी बहुत सी त्रुटियाँ रह जाना असम्भव नहीं है। इस लिए विद्वान् पाठकोंसे हमारा सादर निवेदन है, कि—वे जो कुछ त्रुटियाँ इसमें पावें, उनको लिख भेजनेका कष्ट स्वीकार करनेकी कृपा करना न भूलेंगे, ताकि अगले संस्करणमें वे सब त्रुटियाँ दूर कर पुस्तकको और भी उपादेय बनाया जा सके।

उत्साही सहृदय प्रकाशकके न मिलनेसे, भिन्न २ विषयोंकी इसी तरहकी पाँच छै पुस्तकें लिखी रहने पर भी हम अब तक उनको पाठकों के सन्मुख उपस्थित नहीं कर सक रहे थे। किन्तु माननीय **श्रीमान् ऋ०कु० प० रामचन्द्रजी शर्मा गौड़ने** इस पुस्तकके प्रकाशन का भार स्वीकार कर हमारा यह परिश्रम पाठकों तक पहुँचानेकी कृपा की है। इसके लिये वे हमारे तथा पाठकगणके परम धन्यवादके पात्र हैं। ईश्वर इनके सब उच्च मनोरथ पूर्ण करे।

विनीत—

श्री सेवाश्रम आ० औ०
टिहरी गढ़वाल स्टेट
११ जून १९२८

सत्येश्वरानन्द शर्मा लखेड़ा
आयुर्वेदविशारद ( दिल्ली )



❀ श्रीहरिः ❀

# सरल-आयुर्वेद शिक्षा

## अवतरणिका

प्रश्न-चिकित्सा किसको कहते हैं ?

उत्तर-जिस क्रियासे रोगी पुरुषके रोगकी शान्ति हो, उसको चिकित्सा कहते हैं।

प्रश्न-रोग किसको कहते हैं और आरोग्यता क्या है ?

उत्तर-शरीरमें वायु, पित्त, कफ ये तीन पदार्थ रहते हैं, इन तीन पदार्थोंकी न्यूनाधिकताको ही रोग और इनके समान अवस्थामें रहने को आरोग्यता कहते हैं, अर्थात् जब तक वायु, पित्त व कफ प्रकृतिमें स्थित रहते हैं, तब तक शारीरिक व मानसिक किसी तरहका कोई भी रोग नहीं होने पाता, और इनके विषम भावापन्न ( कुपित वा बिगड़ने ) होने पर विविध प्रकारके शारीरिक व मानसिक दुःख उपस्थित होते हैं, इस दुःखके संयोगको ही रोग कहते हैं।

प्रसङ्गवश यहाँ पर आयुर्वेद शास्त्रोंमें प्रचलित वात आदि दोषोंके पारिभाषिक नाम कहता हूँ, सुनो—

वायु, पित्त, कफ ये कुपित होकर शरीरमें रस, रक्त आदि धातुओं को दूषित करते हैं, इसीसे इनका एक साधारण नाम दोष है, और रस रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा व शुक्र ये सात धातु वात आदि दोषोंसे दूषित होते हैं, इस लिये इनको दूष्य कहते हैं। इसी तरहसे वात आदि दोष व रस, रक्त आदि दूष्योंसे शरीर रक्षित रहता है, इस लिए इन दोनों ( दोष और दूष्यों ) को धातु नामसे कहा जाता है,

अर्थात् धातु शब्दके प्रयोगसे वात आदि दोष और रस, रक्त आदि दूष्योंका भी बोध होता है।

प्रश्न-गुरुवर! आपने उपदेश दिया है, कि-वात आदि दोषोंके कुपित होने पर ही शारीरिक व मानसिक विविध प्रकारके दुःख होते हैं, अतः जिज्ञासा करता हूँ, कि-वात आदि दोषोंका प्रकोप किससे होता है और कुपित हुए दोषोंके पहिचाननेके लक्षण क्या हैं?

उत्तर-भद्र! क्रमशः वात आदि दोषोंके कुपित होनेके कारण और कुपित हुए दोषोंके लक्षण कहता हूँ, सुनो—

**वात प्रकोपके कारण ये हैं** अधिक परिश्रम, अधिक सहवास, पढ़नेमें अति. करना (दिमागको विश्राम न देना), निरन्तर रास्ता चलना, घोड़े आदिकी सवारीमें जाना आना, रातमें जागना, रक्त आदि धातुओंका क्षय होना अति भय, अति शोक, अभिघात (चोट फटाकके लगनेसे), शैत्य, (ठंड लगना), अधिक मात्रामें कड़वे, चरपरे और कषैले रसकी चीजें, रूक्ष (रूखा) द्रव्य व ठंडी चीजें खाना, शुष्क शाक, शुष्क मांस, चीना अन्न, मूँग, मसूर, अरहर, मटर व सेम इनका अधिक सेवन, उपवास (लंघन), अनियमित भोजन व पहिले किये हुए आहारके अजीर्णमें खाना तथा मल मूत्र व अधोवायुको रोकना इन सब कारणोंसे वायु कुपित होता है, इसके अतिरिक्त शीतकाल, वर्षाऋतु, मेघोदय व वायुके प्रवाहके समय और प्रत्यूष (बहुत तड़के) व अपराह्न (सायंकाल) तथा भोजन किये हुए आहारके जीर्ण होनेके (पक जाने) के बाद वायु कुपित होता है।

**पित्त प्रकोपके कारण ये हैं**-क्रोध, शोक, भय, श्रमजनक कार्य, उपवास (भूखा रहना) भुनी हुई व पर्युषित (बासी) वस्तुओंका भोजन, अधिक मैथुन, अधिक परिमाणोंमें चरपरी, खट्टी व नमकीन रसकी चीजें खाना, तीक्ष्ण वीर्यद्रव्य, गरम चीजें, मछली, दही, सरसों, अलसी व अम्लरस भोजन तथा आग

सेकना आदि कारणोंसे पित्तका प्रकोप होता है, इसके अतिरिक्त उष्ण-काल ( गर्मीके मौसम ), मध्याह्न ( दुपहर ) के समय आधीरातमें तथा भोजन किये हुए आहारके जीर्ण होनेके समय पित्त प्रकुपित होता है।

**कफ प्रकोपके कारण ये हैं**—दिनमें सोना, परिश्रम न करना, आलस्य तथा मीठा, खट्टा, नमकीन रस वाली चीजें, शीतल पदार्थ, पिच्छिल द्रव्य, गुरुपाक ( देर हजम ) द्रव्य, माष ( उड़द ) की दाल, लोबिया, तिलकी पिट्ठी, दही, दूध, खिचड़ी, खीर गुड़ व गुड़जात द्रव्य, जलचर प्राणियोंका मांस व वसा( चर्बी ), सिंघाड़ा, ताल व नारियल आदि मधुर फल तथा कद्दू, पेठा आदि बेलमें लगने वाले फल ये सब चीजें अधिक मात्रामें खाना तथा पहिले किये हुए भोजनके हजम हुए बिना दुबारा भोजन करना आदि कारणों से कफका प्रकोप होता है, इसके अतिरिक्त शीतकाल, वसन्तऋतु, पूर्वाह्न ( प्रातःकाल ), व प्रदोष समयमें तथा भोजन करते समय कफका स्वाभाविक प्रकोप होता है।

वात आदि दोषोंके प्रकोपके कारण कह दिये हैं अब प्रकुपित वात-आदि दोषों के लक्षण कहता हूँ, सुनो—

**प्रकुपित वायुसे**—उदराध्मान ( अफारा ), शरीर जकड़ जाना, रूखा होना और स्फुटित (तोड़ने) मथित ( मथने ), पट्टिनवत् (खिंचाव) के समान दर्द होता है, हाथ, पाँव व मस्तकमें दर्द होता है, सुईसे बींधनेके समान, शूलीसे छेदनेके समान अथवा छेद-भेद-भङ्ग आदिके समान वेदना उपस्थित होती है, शरीर शिथिल व अवसन्न होजाता है बिना परिश्रमके थकन मालूम होती है और कानमें बहुत प्रकारके शब्द सुनाई देते हैं। वातपीड़ित रोगी बकवास करता है, उसके शरीर व मनमें ग्लानि उपस्थित होती है, अङ्ग चलायमान होजाते हैं, शरीर काँपता है, जंभाई आती है, आक्षेप धनुष्टंकार आदि होजाते हैं, शरीर में शोथ होजाता है, रोमांच होता है व शरीर सिड़सिड़ करता है, कंठ, ओष्ठ वा मुख सूख जाता है शरीर खुर्दरा व कालाफीकारंग व अरुण-

वर्ण होता है, और मल मूत्र आदिका रंग भी ऊपर लिखेके अनुसार होता है। मुखका स्वाद कषैला व फीका होता है, प्यास अधिक लगती है, बीच २ में नींद टूटती है अथवा नींद बिलकुल आती ही नहीं, वायु के कुपित होने पर साधारणतः ये लक्षण होते हैं।

प्रकुपितपित्तसे—विस्फोटक ( फोड़े ) अम्लोद्गार (खट्टे डकार) आना ), मूर्छा, शरीरमें दुर्गन्ध, प्यास, दाह, चक्कर आना, उत्ताप ( शरीरका गरम होना ) धुवेंके समान डकार आना प्रलाप ( बकवास ) घर्म ( पसीना ), क्षुधा लगना, उन्मत्तता व अंधेरी आना ये सब लक्षण प्रकाश होते हैं। इसके अतिरिक्त प्रकुपित पित्तसे व्रण ( घाव ) आदि के पकने पर शरीरमें घाव बढ़ जाता है, मुखका स्वाद कड़वा, चरपरा व खट्टा होता है, और मल, मूत्र आदि भी इसी रस वाले होते हैं, तथा शरीर व मलमूत्र आदिका रङ्ग पाण्डु वर्णके अतिरिक्त और सब प्रकार ( लाल, काला, नीला, पीला, हरा आदि ) का होता है, पित्तके प्रकुपित होने पर साधारणतः ये सब लक्षण होते हैं।

प्रकुपित कफसे—भोजनकी इच्छा न होना, आलस्य, तन्द्रा ( औंघना ), नींद अधिक आना व शोथ होता है, इससे शरीर व शरीरमें उत्पन्न हुए स्फोटक-शोथ आदि व मल कठिन होता है तथा भारी, चिकना व शीतल हुआ करते हैं, मलकी अधिकता, जिह्वा आदि का लिपा रहना, शरीरमें खुजली होना, मुख व नाकसे पानी गिरना मुखका स्वाद व मल,आदिमें मिठास व नमकीन रस और शरीर व मूत्र आदिका रङ्ग श्वेत होता है, कफके कुपित होने पर साधारणतः ये लक्षण होते हैं।

वात आदि दोषोंके प्रकोपके कारण व लक्षण संक्षेपसे कह दिये है इन हेतु व लक्षणोंको विचारस्थलीका आभूषण बनाये रखनेसे विविध प्रकारके रोगोंमें वायु, पित्त आदि दोषोंकी वृद्धि व ह्रासका निर्णय सरलतासे हो सकता है।

प्रश्न-गुरुवर! जिज्ञासा है, कि-वात आदि दोष कुपित होकर किस प्रकारसे रोग रूपमें परिणत होते हैं?

उत्तर-इस प्रश्नका उत्तर निम्नमें एक उदाहरणके द्वारा दिया जाता है-जैसे किसी निर्दिष्ट स्थानसे आकर जल सरोवर आदिमें एकत्रित होकर पुनः उन सरोवर आदिका जल क्रमशः बढ़कर लबालब भर जानेके बाद उसकी प्राचीरको उल्लंघन कर उससे बाहर दूसरे स्थानकी ओर बह जाते हैं, उसी तरह पर वात आदि दोष भी अपने २ प्रकोपक हेतुओंसे क्रमशः वृद्धिको प्राप्त होकर आखिरमें अपनी अपनी हदको लाँघ कर दूसरे स्थानमें प्राप्त होकर अपनी २ क्रियाओं को दिखाते हैं। जबतक ये वात-आदि अपने स्थान पर बढ़ते रहते हैं, तबतक इस वृद्धिको "दोष-संचय" नामसे कहा जाता है, और जब उस स्थानको लाँघ जाते हैं; तब "दोष-प्रकोप" जब दूसरी जगह जाते हैं, तब "दोष-प्रसर" और जब दूसरे स्थानमें प्राप्त हो जाते हैं, तब उसको "स्थान-प्राप्ति" नामसे कहते हैं, जब उस स्थानमें स्थित हो कर अपने २ कार्य ( लक्षण ) प्रकाश करते हैं, तब उसको "दोषकी अभिव्यक्ति" ( प्रकट होना ) नामसे कहते हैं, इस लक्षणावलिके प्रकाश को ही रोग नामसे कहा जाता है। दोषके संचय होनेसे लेकर स्थान प्राप्ति तकको कोई विशेष रोग नहीं कहा जाता, परन्तु इस अवस्थामें भी शरीर स्वस्थ नहीं रहता, बल्कि शरीर क्रमशः अस्वस्थ होता जाता है। संचय आदिके समय ही उसका प्रतिकार करनेसे और और आहार विहार आदिके विषयमें सावधान हो जाने पर भावि ( उत्पन्न होने वाले ) रोगका प्रतिबन्ध किया जा सकता है। दोषके संचय होनेके समयसे ही शरीर अस्वस्थ होजाता है, इसी लिये आयुर्वेदशास्त्रमें दोषके वैषम्यको ही रोग और साम्यको आरोग्य कहा गया है।

प्रश्न वात आदि दोषोंके स्थान शरीरमें कहाँ २ पर हैं?

उत्तर-वात आदि दोष शरीरमें सब जगह व्याप्त होकर रहते हैं, तथापि वायुका प्रधान आश्रय स्थान-पक्वाशय व गुह्य नाड़ी है, पित्त

का प्रधान आश्रय स्थान-यकृत व प्लीहा है, और कफका स्थान-आमाशय व हृदय है।

प्रश्न-अब जिज्ञासा करता हूँ, कि-बहुत समय देखनेमें आया है, कि-बहुतसे पुरुष अधिक खूनको देखकर उसी समय मूर्छित होजाते हैं और बहुतोंको गहरी चोट फटाक लगनेसे ज्वर हो जाता है तथा बहुतसे आदमी मक्खीको देखकर व खाकर या इसी तरह किसी मनको बिगाड़ने वाली वस्तुको देखने व सूँघने मात्रसे उसी समय वमन (कै) कर देते हैं, ऐसी जगहों पर किस तरहसे वात आदि दोषोंका संचय प्रकोप-प्रसर तथा स्थान प्राप्ति आदि हुआ करती है ?

उत्तर-बेटा ! तुम्हारे इस प्रश्नसे अधिक प्रसन्नता हुई है, इसका उत्तर सुनो—

हठात् ( एकाएक ) खूनके देखने आदि आगन्तुज ( बाहरी ) कारणोंसे वात-आदि दोषोंका संचय व प्रकोप आदि नहीं होता, तथा वात-आदि दोषोंके प्रकोपसे ही रोग उत्पन्न होते हैं, यह बात भी सत्य है, परन्तु द्रव्यमें जिस तरहसे गुणका संयोग होता है, अर्थात् किसी भी द्रव्यके उत्पन्न होनेके समय ही जैसे उसमें उसी समय गुणका संयोग हुआ मिलता है, आगन्तुज कारणोंसे उत्पन्न रोगमें भी उसी तरह उत्पत्तिके साथ ही वात-आदि दोषोंका सम्बन्ध होजाता है।

वात-आदि दोष पहिले ही से कुपित होकर जिन सब रोगोंको उत्पन्न करते हैं, उनको "निज" अर्थात् दोषज रोग कहते हैं, और रोग उत्पत्तिके कुछ क्षण बाद ही जिन रोगोंमें वात-आदि दोषोंका संयोग होता है, उनको "आगन्तुज" नामसे कहते हैं। निज व आगन्तुज भेदसे रोग दो प्रकारके होते हैं। निज रोग दोषके संचय आदि की अपेक्षा करते हैं, परन्तु आगन्तुज रोगोंमें ऐसा नहीं होता। वात आदि दोष निज रोगकी उत्पत्ति व स्थिति इन दोनोंके कारण होते हैं, परन्तु आगन्तुज रोगोंमें वे केवल रोगकी स्थितिके ही कारण होते हैं, उत्पत्तिके कारण नहीं होते । संक्षेपसे भावाशय

यह है, कि–चाहे रोग निज हो व आगन्तुज पर इनकी उत्पत्ति व स्थिति में वात–आदि दोष ही मुख्य होते हैं। निज रोगोंमें रोगकी उत्पत्तिके पहिले ( संचय आदि काल ) से ही ये ( दोष ) यथावत् कार्य करते रहते हैं और आगन्तुज रोगोंमें उत्पत्तिके बादसे अपनी २ क्रिया सम्पादन करते हैं, बस निज व आगन्तुजमें केवल यही भेद है। इसके अतिरिक्त निज व आगन्तुज रोगोंकी चिकित्सामें भी कुछ अधिक भेद नहीं है। निज रोगोंमें वात आदि दोषोंकी जिस तरह चिकित्सा की जाती है, आगन्तुज रोगोंमें भी वात–आदि दोषोंकी चिकित्सा उसी तरहकी जाती है। इस विषयमें आयुर्वेद शास्त्रोंका केवल यह ही एक विशेष निर्णय है, कि–आगन्तुज रोगोंकी चिकित्सामें युक्ति व दैवव्यपाश्रय चिकित्सा की जाय, अर्थात् वात आदि दोषोंके प्रशमके लिए औषधिका प्रयोग तथा हेतु प्रशामक स्वस्तिवाचन, देवपूजन, यज्ञ, हवन आदि दैव कर्म भी किया जाना चाहिए, साधारणतः यही भेद है।

प्रश्न–गुरुवर ! वायु, पित्त व कफ ये तीनों जिस किसी रोगको करते हैं, क्या उस रोगमें इनके अपने २ प्रकोपके सम्पूर्ण लक्षण प्रकाश होते हैं ? और क्या सब रोगोंमें यह लक्षण एकसे होते हैं या भिन्न भिन्न ?

उत्तर–सौम्य ! यह बात सिद्ध है, कि–जैसा कारण होता है, वैसा ही कार्य भी होगा, जैसे मानलो–कि–एक दिन रातमें जागनेसे वायुका जितना प्रकोप होगा, क्या एक मास तक नित्य प्रति रात्रि जागरण करनेसे वायु उसी मात्रामें प्रकुपित होगा ? तथा अति अल्प कारणसे अर्थात् २. १ मात्र प्रकोपक हेतुओं द्वारा वात–आदि दोष प्रकुपित होकर उनके जो २ लक्षण जिस २ भावसे प्रकट होवेंगे, क्या सारे प्रकोपक हेतुओंसे प्रकुपित होकर भी उनके केवल वही लक्षण उस २ भावमे ही उपस्थित होवेंगे ? अर्थात् ऐसा नहीं होता। अत एव स्वयं सिद्ध है, कि–कारण ( रात्रि जागरण आदि ) के न्यूनाधिकताके अनुसार कार्य ( वात–आदिका प्रकोप ) भी न्यूनाधिकतासे होगा, अर्थात् जितने अधिक कारणोंसे ये दोष कुपित होंगे, उनके लक्षण भी उतने ही बलवान् होंगे तथा रोग भी उतना ही कष्ट साध्य होगा।

प्रश्न-भगवन् ! क्या वायु, पित्त व कफ ये तीनों जुदे २ रोगको उत्पन्न करते हैं, अथवा परस्पर मिलित होकर ?

उत्तर-जिस जगह केवल एक दोष कुपित होता है, वहाँ पर केवल वह एक ही दोष रोगको उत्पन्न करता है, इसी तरह जहाँ दो २ दोष या तीनों दोष ही एक साथ कुपित होते हैं, वहाँ पर वे मिल कर दो २ वा तीनों ही रोग उत्पन्न करते हैं।

प्रश्न-आपने वात आदि दोषोंके प्रकोपके लक्षण जो पहिले बताये हैं, उनसे मेरी यह धारणा हुई है, कि-द्विदोषज और त्रिदोषज रोग ही अधिक होते हैं, क्योंकि-अधिक संख्यक रोगोंमें द्विदोष व त्रिदोषके लक्षण ही अधिकतः प्रकाश होते दिखाई देते हैं, तब क्या एक दोषज रोगोंकी संख्या अल्प है ?

उत्तर-दो या तीनों दोषोंके लक्षण प्रकाश होने पर ही सब रोग द्विदोषज व त्रिदोषज माने जाँय, यह बात नहीं है, इसको स्पष्ट किये देता हूँ, सुनो-यदि दो दोष व तीनों दोष मिल कर किसी रोगको उत्पादन करें, तो ऐसे रोगको द्विदोषज व त्रिदोषज कहा जाता है। परन्तु यदि कोई एक दोष अपने प्रकोपक हेतुओंसे प्रकुपित होकर किसी रोगको उत्पन्न करनेके बाद और २ दोषोंको प्रकुपित करे और इसीसे जो उसमें और २ दोषोंके प्रकोप लक्षण प्रकट होजावें, तो उस रोगको द्विदोषज व त्रिदोषज नहीं कहा जाता, क्योंकि-वे दोष अपने प्रकोपक हेतुओंसे कुपित नहीं हुए हैं, तथा वे रोगोत्पादक कारण भी नहीं हैं। आयुर्वेद शास्त्रोंमें कहा है, कि-कोई सा एक दोष कुपित होकर क्रमशः और सब दोषोंको भी कुपित कर देता है। इसीसे एक दोषज रोगोंमें अन्यान्य दोषोंके लक्षण भी विद्यमान होते हैं। जो दोष वा जो २ दोष अपने २ हेतुसे कुपित होकर रोगको उत्पन्न करे, वही दोष प्रधान होता है, और उसी दोषके लक्षण सबसे अधिक व प्रबल होते हैं। इसी लिये उस दोषकी ही प्रधानतया चिकित्सा कीजाती है, तथा और दोष उसके आधीन व क्षीण होते हैं, और प्रधान दोषके नाश होने पर अकसर

उसके आधीन दोष भी उपशमित होजाते हैं। एक दोषज रोग सुखसाध्य होते हैं, और द्विदोषज रोग कष्टसाध्य तथा त्रिदोषज ( सान्निपातिक ) रोग अतिकष्टसाध्य वा असाध्य जानने चाहिये।

यहाँ पर प्रश्न किये बिना मैं तुम्हें साध्य व असाध्यके विषयमें और कुछ उपदेश देता हूँ, सुनो–क्योंकि–जिसको जिस शास्त्रसे अभिज्ञता नहीं, वह उस शास्त्र सम्बन्धी उपयोगी प्रश्न करनेमें समर्थ नहीं होता। इसीसे जहाँ पर जो २ उपदेश देना उचित समझूँगा, तुम्हारे प्रश्न किये बिना भी मैं अपने आप वहाँ पर उस विषयका उपदेश दूँगा। अब यहाँ पर जो कुछ विशेष कहता हूँ, सुनो–जो रोग जितने थोड़े कारणोंसे उत्पन्न हुआ हो और जिस रोगमें वात आदि दोषोंके जितने ही कम लक्षण प्रकाश हों, वह रोग उतना ही सुखसाध्य होता है, और जो रोग जितने अधिक व प्रबल हेतुओंसे उत्पन्न हुआ हो, तथा जिसमें दोषोंके लक्षण अधिक प्रकाश हुए हों, वह रोग उतना ही अधिक कष्टसाध्य व असाध्य जानना चाहिये। अचर कालोत्पन्न रोग सुखसाध्य और दीर्घकाल समुद्भूत रोग कष्टसाध्य होता है। परन्तु स्त्रियोंका रक्तगुल्म रोग पुराना होने पर ही सुखसाध्य होता है, यह रोगका प्रभाव है। इसी लिये शास्त्रमें लिखा है, कि–दशवें महीनेके व्यतीत होने पर रक्तगुल्मकी चिकित्सा करनी चाहिए। जिस रोगमें कोई उपद्रव न हो वह सुखसाध्य होता है तथा जिस रोगमें जितने ही उपद्रव उपस्थित हों वह उतना ही कष्टसाध्य व असाध्य होता है। रोगसंकर अतिकष्टसाध्य व असाध्य होता है।

प्रश्न–रोग–सङ्कर व उपद्रव किसको कहते हैं ?

उत्तर–जिस तरहसे वात–आदि दोष रोगको उत्पन्न करते हैं, उसी तरह कोई २ रोग भी और दूसरे रोगका उत्पादक होता है। किसी समय कोईसा रोग किसी दूसरे रोगको उत्पन्न कर स्वयं प्रशमित हो जाता है, इसी तरह किसी २ मौके पर एक रोग दूसरे रोगको पैदा कर देता है और अपने आप भी स्थित रह कर अन्यान्य रोगोंका हेतु बन

बैठता है। इसीसे एक साथ बहुतसे रोगोंका संघ देखा जाता है। इस प्रकारके बहुतसे रोगोंके मिलनेको ही रोगसंकर कहा गया है। एक रोगसे जो अन्य रोगकी उत्पत्ति होती है, उसका दृष्टान्त, जैसे-सर्दीसे कास, ज्वरसे प्लीहा ( तिल्ली ) व जिगरका बढ़ना, यकृत प्लीहासे जठररोग, जठरसे शोथ रोग आदि होजाते हैं।

"रोग-संकर" किसको कहते हैं, यह ऊपर कह आये हैं, अब उपद्रव किसको कहते हैं, इस विषयमें कहता हूँ, सुनो—

केवल उत्पत्तिके पूर्व व पश्चात्के भेदसे रोगको ही उपद्रव नामसे कहा जाता है, अर्थात्-वात-आदि दोष अपने प्रकोपण हेतुओं द्वारा कुपित होकर पहिले जो विकार उत्पन्न करते हैं, उसको रोग और उस रोगको उत्पादन कर जो वात आदि दोष अन्य हेतुओंके संयोगसे और अधिक कुपित व लब्ध बल होकर उस रोगमें और जिन २ विकारोंको संवर्द्धित करते हैं, उन सब विकारों ( रोगों ) को ही प्रथमोत्पन्न रोगका उपद्रव कहते हैं, जैसे-वात-आदि दोषोंने कुपित होकर ज्वर उत्पन्न किया और ज्वर उत्पादनके बाद ये वात-आदि दोष अन्य कारणोंसे अधिक प्रकुपित व बलवान् होकर कास, श्वास आदि विकारोंको उत्पन्न करें, तो इस प्रकार पीछेसे उत्पन्न हुए ये कास, श्वास आदि विकार ही उस ज्वरके उपद्रव होते हैं। परन्तु यही वात-आदि दोष यदि पहिले कास, श्वास आदि रोग उत्पन्न करनेके अनन्तर ज्वरको उत्पन्न करें, तो इस तरह पर कास, श्वास आदि रोगोंको प्रधान रोग और ज्वर इनका उपद्रव कहा जायेगा। बस रोग और उपद्रवमें यही एकमात्र भेद है। कुछ विशेष भेद न होनेसे रोगका प्रधान और अप्रधान जानना चाहिये। इसमें पहिले प्रधान रोगकी चिकित्सा करनी चाहिए, क्यों कि-उपद्रवके अविरोधी चिकित्सा अवलम्बन कर रोगकी शान्तिका उपचार करनेसे ही उसके सब उपद्रवोंकी भी शान्ति हो जाती है। परन्तु जिस रोगमें रोगकी अपेक्षा उपद्रव बलवान् व शीघ्र विपज्जनक होजावें, ऐसे मौके पर सबसे पहिले उपद्रवकी चिकित्सा करना अति

आवश्यक होता है, क्यों कि-ऐसा न करनेसे वह उपद्रव शीघ्र ही प्राण विनाशकी नौबत तक कर देता है।

प्रश्न-गुरुवर! सुना था, कि-आयुर्वेद शास्त्रमें दोष कलाकल अति दुर्बोध विषय है, पर आपकी अमृत-वाणीसे यह, तो बिल्कुल ही सुगम होगया है, इसीसे मेरी प्रश्न पर प्रश्न करनेकी जिज्ञासा बढ़ रही है। गुरो! इस शिष्यके अपराधको क्षमा कीजिये, और दया कर मेरी आगेकी जिज्ञासाओंके समाधान करनेका कष्ट स्वीकार कीजिये।

द्विदोषज व त्रिदोषज रोगोंमें क्या केवल उस रोगके उत्पन्न करने वाले दो दोष व दोषत्रयके निर्दिष्ट प्रकोप लक्षण ही मिलकर प्रकाशित होते हैं? अथवा इनसे भिन्न कोई और लक्षण भी होते हैं?

उत्तर-किसी २ रोगमें तो केवल निर्दिष्ट वात आदि दोषोंके लक्षण मिल कर प्रकट होते हैं, परन्तु किसी २ रोगमें निर्दिष्ट लक्षणोंके और २ लक्षण भी प्रकाश होते हैं। जहाँ पर रोगको उत्पन्न करने वाले दोषद्वय व दोषत्रय साधारणभावसे मिलित होकर रोगको उत्पन्न करते हैं, वहाँ पर केवल उनके निर्दिष्ट लक्षण ही प्रकट होते हैं, पर जहाँ पर उनका संयोग विशेष अर्थात् किसी विशेष रासायनिक प्रक्रिया द्वारा मिलित होकर रोग उत्पन्न करते हैं, वहाँ पर उनके कुछ तो निर्दिष्ट लक्षण प्रकट होते हैं और कुछ दूसरे विशेष लक्षण भी उपस्थित होजाते हैं। इस तरह संयोग-विशेषसे लक्षण विशेषका उत्पन्न होना स्वाभाविक है, जैसे-पारा व गन्धकके साधारण संयोगसे काले रंगकी कज्जली बनती है, पर प्रकारान्तरसे उस पारद व गन्धकको मिलाकर अग्निमें पाक करनेसे उज्ज्वल लाल रंगका हिंगुल (सिंगरफ) बन जाता है, तथा चूने और हल्दीको मिलानेसे लाल रंग उत्पन्न होता है। वातआदि दोषोंके भी भिन्न २ प्रकारके संयोगसे रस, रक्त आदि धातुओंके साथ उनके भिन्न २ प्रकारके मूर्छनसे भिन्न २ प्रकारके अनेक लक्षण उपस्थित होजाते हैं।

प्रश्न जहाँ पर दोषोंके संयोग विशेषसे लक्षण विशेष उपस्थित होते

हैं, वहाँ पर किस विधिसे रोगारम्भक वात-आदि दोषोंका निर्णय किया जाता है ?

उत्तर-बुद्धिमान् चिकित्सक रोगके उत्पन्नकर्ता हेतुओंको जानकर तथा वात-आदि दोषोंके परिस्फुट सब लक्षणोंको लक्ष्य कर तथा नाड़ी-परीक्षा कर, रोग किस २ दोषसे उत्पन्न हुआ है, यह सब जान लेते हैं। जैसे-रोगी व उसके अविभावकोंसे पूछने पर मालूम हुआ, कि-रोगी ने रोगोत्पत्तिके पहिले वही २ आहार विहारसे वन किये हैं जिनसे वायु अथवा कफ कुपित होता है। उपस्थित लक्षणोंमें भी वायु अथवा कफके प्रकोप लक्षण ही स्फुटरूपसे प्रकट हुए हों, और इसी तरह पर नाड़ीकी गतिमें भी वात व कफकी गति अधिक अनुभूत हो तो अवश्य ही यह निर्णय ठीक होगा, कि-यह रोग वातश्लैष्मिक है। इसी तरह पर वात पित्त, पित्तकफ व त्रिदोषज रोगोंमें भी वात-आदि दोष स्थिर किये जाते हैं।

एक उदाहरणके द्वारा इस विषयको और भी साफ कर देते हैं, सुनो-मैं एक ज्वर रोगीको देखने गया। रोगीसे पूछने पर मालूम हुआ, कि-इसके पहिले उसका शरीर अर्श ( बवासीर ) के कारण अधिक रक्तस्राव होनेसे रक्तरहित होगया था। उसके बाद उसको संयोगवश बहुत दिन तक लगातार अधिक परिश्रम करना पड़ा। परिश्रम करने के समय वह अपने शरीरमें अधिक गरमीकी आशंका कर प्रति दिन अधिक मात्रामें दही खाता था, शर्बत पीता या छुट्टीके दिन दिनमें अधिक सोता था। इस प्रकार करनेके कुछ दिन बाद ही उसको यह ज्वर हुआ था। प्रत्येक दिन सायंकालमें सर्दी लगकर ज्वर आता था तथा वह ज्वर रातके ९।१० बजे तक जोरसे रहता और बादको कम होना आरम्भ होता था। ज्वर बढ़नेके समय शरीरमें अधिक दर्द होता था, हाथ, पैर और कमरमें ऐंठन होती थी, एक दम अरुचि और कुछ भी खानेको इच्छा न करती थी, प्रतिक्षण निद्रित व्यक्तिकी तरह निद्रा-भिभूत रहता था, शरीर बोझीला, मुखविरस, कभी मीठा व कड़वा

रहता था, अधिक पसीना आता था, शरीरमें अधिक सन्ताप होता था, कभी हाथ पैर व आँखोंमें जलन होती थी, कभी२ दिल मिचलाता व कै ( वमन ) भी होजाती थी, मल अधिक कठिन और आँखें पाण्डु रङ्गकी थीं। यह सब कुछ मालूम करने पर हमने जान लिया, कि-यह ज्वर "वातश्लैष्मिक" है। क्योंकि-अधिक रक्तक्षय व अधिक परिश्रम वायु प्रकोपके हेतु हैं और दही खाना, शर्बत पीना व दिनमें सोना कफ प्रकोपके कारण हैं, कम्प ( शीत लगना ); शिरमें दर्द, हाथ पैर व कमरमें पेंठन, मुखकी विरसता व मलका काठिन्य ये सब वात प्रकोपके लक्षण हैं, तथा अरुचि, सर्वदा तन्द्रित, भारीपन, मुखका मीठा स्वाद व आँखोंकी शुक्ल वर्णता ये सब कफ प्रकोपके लक्षण हैं। इसी तरह ज्वरके आनेका समय सायंकाल तथा रात्रिका पूर्वभाग है, कफ सायंकाल वायुके प्रकोपका तथा रात्रिका पूर्वभागके प्रकोपका समय है। आयुर्वेद शास्त्रोंका उपदेश है, कि-जिस समय जिस दोषका प्रकोप होता है, उस समय उस दोषसे उत्पादित रोगका आगम व वृद्धि होती है। इन सब लक्षणों व हेतुओंसे ठीक २ मालूम होगया, कि-रोग वातश्लैष्मिक है। इसके अतिरिक्त मुखमें तिक्त आस्वाद, अधिक पसीना आना, अधिक सन्ताप, हाथ पैर व आँखोंमें जलन, दिलका मिचलाना व कै आना ये सब यद्यपि पित्त-प्रकोपके लक्षण हैं, तथापि ज्वर उत्पन्न होनेके पहिले पित्त-प्रकोपका कोई सा भी कारण नहीं हुआ था, और रोगीसे पूछने पर भी मालूम हुआ, कि-पित्तके लक्षण इतने प्रबल उपस्थित नहीं होते। इसीसे निश्चय किया, कि-पित्त इस ज्वरमें उत्पादक ( कारण ) नहीं है, परंच वायु व कफका अनुबल है, और ये सब लक्षण वायु व कफके संयोगविशेषसे भी उत्पन्न हो आसकते हैं। मैं जिस समय रोगीको देखनेके लिये उसके घर पर गया, वह उसी समय नींदसे जागा था। इस दशामें नाड़ीकी गति ठीक नहीं जानी जाती, यह विचार कर मैंने उस समय नाड़ी न देखी। जहाँ पर निदान व लक्षणसे ही ज्वर वातकफज स्पष्ट-

तया जान लिया जाय, वहाँ पर नाड़ी देखना आवश्यक नहीं समझा जाता। इस ज्वरके लिये मैंने पित्तका अविरोधी वात-कफनाशक दशमूलका काढा तथा मृत्युंजय रसकी व्यवस्था की। तीन चार दिन औषधि सेवन करने मात्रसे वह उस दो तीन मासके ज्वरसे मुक्त होगया

प्रश्न-नाड़ी किस प्रकारसे देखते हैं और वात आदि दोषोंके प्रकोप से नाड़ीकी गति किस तरहकी होती है?

उत्तर-नाड़ी-विज्ञान शास्त्र अतिकठिन है, अधिक दिन तक नाड़ी परीक्षाका अभ्यास किये बिना केवल पुस्तक पाठ व उपदेश सुनने मात्रसे नाड़ीज्ञान नहीं होता है। परंच फिर भी यहाँ पर नाड़ी-परीक्षाके विषयमें कुछ संकेत मात्र बताये देता हूँ। जिनको हृदयङ्गम कर समय २ पर मेरे पास आये हुए या अन्य रोगियोंकी नाड़ी देखते२ नाड़ीपरीक्षामें सिद्ध हो सकोगे, सुनो—

यदि रोगी पुरुष हो, तो उसके दाहिने हाथकी और स्त्रीके बाँये हाथके अंगूठेकी जड़के नीचेकी पश्चिमाभिमुख ग्रन्थिविशिष्ट स्थानके नीचे वाली नाड़ीकी परीक्षा करनी चाहिए। अपने दाहिने हाथकी तर्जनी, मध्यमा व अनामिका इन तीन अंगुलियोंसे स्थिरचित्त होकर इस स्थानकी नाड़ीको हलके हाथसे स्पर्श करना चाहिए। यदि वायु का प्रकोप हुआ हो-तो तर्जनी अंगुलीके नीचे नाड़ीकी गति ( सामान्य से अधिक ) प्रतीत होती है, अर्थात्-और अंगुलियोंकी अपेक्षा तर्जनी के नीचे ही नाड़ीका स्पन्दन अधिक होता है और स्पन्दन (फड़कन) सर्प, जौंक आदिके समान द्रुत और वक्र होता है। **पित्तके प्रकोपमें** नाड़ीकी गति मध्यमा अंगुलीके नीचे स्फुट होती है, **और** वह गति लवा, तीतर व मेंढक आदिके समान उछलती हुई सी होती है अर्थात् नाड़ी जोर से उछल २ कर चलती है। **कफके प्रकोपमें**—नाड़ीकी गति अनामिका अंगुलिके नीचे परिस्फुट होती है और वह गति राज हँस, मोर, कबूतर व मुर्गे आदिकी तरह दोलायमान मन्थर होती है। **वात पित्तके प्रकोपमें**-नाड़ीकी गति तर्जनी व मध्यमा अंगुलीके

नीचे अनुभूत होती है और नाड़ी कभी सर्प आदिकी तरह द्रुत-वक्र गतिसे और कभी मेंढक आदिकी तरह उछलती चालसे चलती है। **वात कफके प्रकोपमें**—नाड़ीकी चाल तर्जनी व अनामिकाके नीचे परिस्फुट होती है, और नाड़ी कभी सर्प आदिकी तरह द्रुत व वक्र गतिसे और कभी राजहँस आदिके समान दोलायमान मन्थर गतिसे चलती है। **पित्तकफके प्रकोपमें**—नाड़ीकी चाल मध्यमा व अनामिकाके मध्यमें मालूम होती है तथा नाड़ी कभी मेंढक आदिकी तरह से उछलती चालसे और कभी मोर आदिकी तरह दोलायमान मन्द गतिसे गमन करती है **त्रिदोष ( सन्निपात ) के प्रकोपमें** नाड़ी तीनों अंगुलियोंके नीचे स्पष्ट होती है और काष्ठकुट्ट ( खुटक विल्लया ) पक्षी जिस तरह ठहर २ कर अतिवेगसे लकड़ीको काटता है, इस तरहसे द्रुतगति होकर चलती है, अर्थात् सन्निपातकी नाड़ी कभी मन्द २ और कभी जल्दी २ चलती है।

नहाने, सोने और खानेके बाद ही तथा भूख व प्याससे व्याकुल, धूपसे तपे हुए और थके हुए पुरुषकी नाड़ीकी थाह नहीं मालूम होती इसलिए इन मौकों पर रोगीकी नाड़ी परीक्षा न करनी चाहिए।

**मृत्युसूचक नाड़ीकी परीक्षा**—सन्निपात रोगी की नाड़ी कभी मन्द २ चलकर ढीली होजाय और फिर व्याकुल गतिसे ( धड़फड़ कर ) चलनेके बाद ही रुक २ कर चलने लगे और फिर लुप्त हो जाय, अथवा सूक्ष्म सूतके समान बारीक होजाय तथा एक बार अपने स्थानको अर्थात् अंगुष्ठमूलको छोडकर फिर उसी स्थान पर स्पर्श होने लगे, तो ऐसे लक्षणोंसे असाध्य व मरणसूचक समझना चाहिए।

जिसके शरीरमें अधिक दाह हो और नाड़ी शीतल हो अथवा जिसका शरीर शीतल हो और नाड़ी गर्म हो तथा जिसकी नाड़ीकी गति विविध प्रकारकी हो, ऐसी नाड़ी मरणसूचक होती है।

( ऊँची जगहसे गिरना, अतिशोक, अतिभय व अधिक शीत

लगनेसे भी नाड़ी रुक जाती है, पर ऐसी जगह पर मरणकी आशंका न करनी चाहिए )।

सन्निपात ज्वरके दाहसे सन्तप्त रोगीकी नाड़ी यदि बर्फकी तरह ठंडी हो, तो तीन दिनके भीतर उस रोगीकी मृत्यु निश्चित जानना। जिसकी नाड़ी जल्दी २ चलते २ एकदम रुक जाय, उसका जीवन एक सप्ताह तक जानना; परन्तु यदि रोगीके शरीरमें शोथ हो, तो ऐसा नहीं होता।

जिसकी नाड़ी आधे जौं ( यव ) प्रमाण भी अपने स्थानको छोड़ दे, वह रोगी कभी नहीं बच सकता, तथा तीन दिनके भीतर ही उसकी मृत्यु होजाती है। जिसकी नाड़ीकी गति भौंरेकी तरह अर्थात् जैसे भौंरा उडते २ क्षणभरके लिए एक जगह पर रहकर गुन २ करता है और फिर वहाँसे उड़कर दूसरी बार फिरसे पहिली जगह पर आकर गुन २ करने लगता है, इस तरह पर बार २ जिसकी नाड़ी चले, ऐसा रोगी एक दिनका महमान समझना चाहिए। जिसकी नाड़ी तर्जनी अंगुलीके नीचे नियम पूर्वक न चले बल्कि बीच २ में कभी २ मालूम हो, उसकी मृत्यु १२ प्रहरके भीतर जानना। जिसकी नाड़ी मूल स्थानमें बिजलीकी चमकके समान चले, उसका जीवन एक दिन तक रहता है, दूसरे दिन उस रोगीकी मृत्यु होजाती है।

मृत्यु-सूचक नाड़ीका इससे अधिक परिचय करानेकी आवश्यकता नहीं है। परीक्षार्थियोंको इतना जाननेसे ही यथेष्ट ज्ञान होसकता है।

जब तक नाड़ी अंगुष्ठ-मूलको न छोड़े या जब तक अंगुष्ठ-मूलमें उसका चिन्हमात्र तक पाया जावे तब तक असाध्य न समझना चाहिए, बल्कि चिकित्सा करते रहना चाहिए। नाड़ीकी परीक्षा केवल एक बार करनेसे बहुत बार अच्छीतरह ज्ञात नहीं होता। इस लिये स्थिरचित्त होकर एक २ बार नाड़ीकी परीक्षा कर छोड़ देवे, इस प्रकार तीन बार कर रोगका तत्वनिरूपण करना चाहिए।

वात-आदि दोषोंके प्रकोपसे नाड़ीकी गति जिस तरहकी होती है,

यह ऊपर कह चुके हैं, अब विशेष २ रोगोंमें नाड़ीकी गति जिस प्रकार की होती है, इसके विषयमें कहना बाकी है, सो सुनो—

**ज्वरके प्रकोपमें** नाड़ी उष्ण ( गरम ) व वेगसे चलती है। **वातज्वरमें**—नाड़ी शीतल व सर्प, जोंक आदिकी तरह वक्र व चपल चलती है। **पित्त ज्वरमें**—नाड़ी कठिन होती है तथा ऐसी तेजीसे चलती है, जैसे चमड़ीको फाड़कर उसके ऊपरसे चल रही हो। **कफ ज्वरमें**—नाड़ी शीतल व स्निग्ध होती है तथा स्थिरभावसे मन्द २ गमन करती है। **वात पित्त ज्वरमें**—नाड़ी वक्र, थोड़ी चपल व कठिन होती है। **वातश्लेष्मज्वरमें**—नाड़ी सूक्ष्म, शीतल व मन्द वेगसे चलता है। **अजीर्ण रोगमें**—नाड़ी कठिन होती है और दोनों तरफसे मन्द २ गमन करती है। **अग्निमान्द्य रोगमें**—नाड़ी शीतल और हंसके समान चलती है। **दीप्ताग्नि** पुरुषकी नाड़ी—बलवान् व लघु अर्थात् मध्यमभावसे चलती है। **ग्रहणी रोगमें**—पैरकी नाड़ी हंसकी तरह और हाथकी नाड़ी मेंढ़ककी तरह गमन करती है। **संग्रह-ग्रहणी रोगमें**—भेद ( दस्त ) होनेके बाद नाड़ी शान्तवेग होती है, **अतिसार रोगमें**—दस्त आनेके बाद निर्वीर्य ( मन्दगति ) होती है, **विसूचिका रोगमें**—दस्तके बाद नाड़ी मेंढ़ककी तरह उछलती चालसे चलती है और **आमातिसार रोगमें**—दस्तके बाद नाड़ी स्थूल व जड़वस्तुके समान निश्चल होजाती है। **प्रमेह रोगमें**—नाड़ी ग्रन्थियोंकी तरह अर्थात् बीच २ में गाँठ सा मालूम देती है, यदि उस रोगीको आमदोष हो, तो नाड़ी हर समय गरम रहती है। **गुल्म ( वायु गोला ) रोगमें**-नाड़ी चंचल होती है और कबूतरकी तरह प्रबलवेगसे घुर २ कर गमन करती है। **उन्माद रोगमें भी**—नाड़ीकी चाल इसी तरहकी होती है।

ज्वर आदि रोगोंमें नाड़ीकी गति जिस तरहकी होती है, यह संक्षेप से ऊपर कह चुके हैं, बुद्धिमान् वैद्य इसका अनुसरण कर और और रोगोंमें भी नाड़ीकी गति कैसी होनी चाहिए यह निर्णय कर सकते हैं,

अर्थात् ऊपर कहे रोगोंमें व इनको उत्पन्न करने वाले दोषोंके साथ जिस किसी भी अनुक्त दोष व रोगका सादृश्य हो, उस रोगमें भी नाड़ीकी अवस्था वैसे ही होगी जान सकेंगे।

स्थलचर, जलचर व आकाशमें उड़ने वाले जिन जीवोंकी स्थलमें जलमें व आकाशमें जिसकी जो गति निर्दिष्ट की गई है, यह चाल ही नाड़ी परीक्षाका उपमान स्थल समझना चाहिए। इसीसे नाड़ी परीक्षा सावधान एकाग्रचित्त होकर की जानी चाहिए।

केवल पढ़ना व पढ़ानेसे नाड़ीज्ञान नहीं ज्ञान होता। अतएव योगाभ्यासकी तरह एकान्तचित्त होकर नाड़ी परीक्षाका अभ्यास करना चाहिए।

बारम्बार नाड़ी स्पर्श रूप अभ्याससे ही नाड़ी परीक्षा द्वारा रोग का ज्ञान होसकता है, और बिना अभ्यासके बृहस्पतिके समान बुद्धिमान् होने पर भी नाड़ी ज्ञानके विषयमें सफलता नहीं होसकती।

संक्षेपतः नाड़ीपरीक्षाके विषयमें कह चुके हैं, अब प्रसंगवश नेत्र, जिह्वा व मुख ( आस्य ) परीक्षाके विषयमें उपदेश करते हैं, क्योंकि नेत्र आदि प्रत्यक्ष इन्द्रियोंकी अवस्थाके अनुसार भी बहुत समय वात आदि दोषोंका निर्णय आसानीसे होजाता है।

**नेत्रपरीक्षा**—वायुके प्रकोपमें नेत्र रूखे, धूसर (धुँयेकी रंगत) व अरुणवर्ण तथा स्तब्ध दृष्टि होती है। **पित्तके** प्रकोपमें नेत्र लाल, हरित ( हरे ), व हल्दीके समान पीले रंगके होते हैं। **कफकी** अधिकतामें नेत्र स्निग्ध, जलपूर्ण, पाण्डुवर्ण, ज्योतिहीन व बलवान् होते हैं। **दो दोषोंके प्रकोपमें**—नेत्र दो दोषोंके मिश्रित लक्षण वाले होते हैं और दोषत्रय ( सन्निपात ) में नेत्र तन्द्राकुल, मोहयुक्त, श्याम व रक्त वर्ण, कोटरगत, अतिरूखे, कुछ मुँदे हुये, घोरतारक व विलुप्त कृष्णतारक तथा क्षण २ भरमें बन्द होते हुए व क्षण २ भरमें विविध वर्ण वाले होजाते हैं।

**जिह्वा परीक्षा-वायुकी अधिकतामें**-जिह्वा गूलरके पत्तेके समान खुरदरी तथा रूक्ष व फटी हुई होती है। **पित्तकी अधिकतामें**-रक्त, श्याम व पीतवर्ण होती है। **कफके प्रकोपमें**-जिह्वा लिप्त ( लिपी हुई सी ), गीली व श्वेतवर्ण होती है **दो दोषोंके प्रकोपमें**--दो दोषों के लक्षणयुक्त होती है। और **त्रिदोषमें** -जिह्वा जले हुए के समान काली और काँटेदार होती है। **आस्य ( मुख ) परीक्षा--वायुकी वृद्धिसे**-मुखका स्वाद कषेला व विरस होता है तथा मुखमें थूक जमता है। **पित्तकी अधिकतामें**--मुखका स्वाद तिक्त ( कड़वा ) और **कफ प्रकोपमें**-मीठा स्वाद होता है। **दो दोषोंके प्रकोपमें** दो दोषोंके समान और **त्रिदोषमें** तीनों दोषोंके समान स्वाद होता है।

ऊपर संक्षेपसे नेत्र आदि इन्द्रियोंकी परीक्षा बतादी गई है, मल मूत्र आदिकी परीक्षा भी इसी आधार पर की जा सकती है। सिर्फ मूत्र परीक्षा प्रमेह रोगमें विशेष प्रक्रियाओंसे भी कीजाती है, यह आगे चल कर प्रमेह रोगके वर्णनमें कहेंगे। ध्यान पूर्वक इनके द्वारा परीक्षा करनेसे यथा सम्भव वात-पित्त आदि दोषोंका तथा बहुतसे रोगोंका विशद निर्णय किया जा सकता है, पर केवल पुस्तकमें लिखित वर्णन पढ़नेसे ही इनका ज्ञान होना असम्भव है। अत एव शास्त्रकारोंके उपदेशके अनुसार पढनेके अतिरिक्त कार्यतः अभ्यास करना भी आवश्यक है

प्रश्न—अब पूछना चाहता हूँ, कि यदि वात, पित्त व कफ ही समस्त रोगोंके कारण हैं, तो क्या वात आदि दोषोंके प्रशम करनेसे ही सब रोग प्रशमित हो जाते हैं ?

उत्तर-केवल वायु, पित्त व कफके प्रशम करनेसे ही सब जगह रोग निवृत्त हो जावे, ऐसा नहीं होता, जैसे कुम्हार घड़ा बनाता है, यदि कुम्हारको मार दिया जाय, तो क्या उसके बनाये हुए घड़ेका नाश हो जावेगा ? कभी नहीं। इस लिए वात आदि दोष व उनसे उत्पन्न व्याधि दोनोंके उपशमके लिए, दोष-प्रत्यनीक ( दोषोंको सम

करने वाली ) और व्याधि प्रत्यनीक ( रोग-शामक ) चिकित्सा अवलम्बन की जाती है। जहाँ पर कार्यके प्रति कारणका नित्यत्व संबन्ध हो, वहाँ पर केवल कारण ( दोष ) के नाशसे कार्य ( रोग ) का भी नाश होजाता है। जैसे-दीपकमें तेल और बत्ती जब तक रहेगी, वह तब तक जलता रहेगा, तेल और बत्ती न रहने पर दीपक नहीं जल सकता। इसी तरह जहाँ पर रोगके प्रति वात-आदि दोषोंका नियत कारणत्व होता है, वहाँ पर ही केवल वात आदि दोषोंके प्रशम करनेसे उनसे उत्पन्न ज्वरादि रोगोंकी भी शान्ति हो जाती है। जैसे आक्षेप ( दौरे ) आदि रोगोंमें जब तक वायुका प्रकोप रहता है, तब तक ही दौरा रहता है, और वायुके शान्त होजाने पर आक्षेप आदिकी भी शान्ति होजाती है, पर ज्वर, अतिसार, प्लीहा, यकृत व गुल्म आदि रोगोंमें उस २ रोगके उत्पादक वात-आदि दोषोंके शान्त होनेसे ही इन रोगोंकी शान्ति नहीं होती। ऐसे स्थल पर वात-आदि दोषोंके प्रशम करनेके साथ २ रस, रक्त आदि दूष्योंका भी प्रशम करना होता है तथा आकृतिमान् रोगके होने पर उसकी आकृतिका भी नाश करना होता है।

प्रश्न-वायु, पित्त व कफका प्रशम किससे होता है।

उत्तर-**वात प्रशमन**—देवदारु, कूठ, हल्दी, वरनेकी छाल, मेंढासिंगी, खरैटी, नागबला, कटसरैय्या, पियाबाँसा; कौंच, शल्लकी, पाढ़ल, अर्जुन ( कोह ), अरणि, गिलोय, एरण्ड, अस्थिसंहार ( हड़जोड़ ) सुफेद आँक, आँक, शतावर, पुनर्नवा, गजपीपल, बथुआ, लालकचनार, भारंगी, कपासके बीज, सांठ ( सुफेद पुनर्नवा ), लालचन्दन, वेर, यव (जौ), कुलथी, सरिवन ( शालपर्णी ), पाठा, बिदारिकन्द, अनन्तमूल, बड़ी कटेली, कटेली, गोखरू, वेलकी छाल, सोनापाठा की छाल आदि ओषधियोंसे वायुका प्रकोप शान्त होता है।

**पित्तप्रशमन**—सुफेद चन्दन, लाल चन्दन, नेत्रबाला, मजीठ, क्षीरकाकोली, शालपर्णी, शतावर, नागरमोथा, मृणाल ( कमल की

डण्ठल ) कल्हार, कमल; नालोफर, केला, कमलगट्टा, दूब, मुर्वा (चूर्णहार ) काकोली, क्षीरकाकोली, गिलोय, काकड़ासिंगी, वंशलोचन, पद्माख, जीवन्ती ( जयत ), मुलेटी, बट, स्पृक्का ( असवरग ), गूलर, पीपल, पिलखन, आम्रातक (अम्बाड़ा ), अर्जुन, आम, जामनकी छाल, केवड़ा, तेजपात, कुटकी, कदम्ब, बेर, लोध्र, भिलावाँ, ढाक, मेंढासिंगी, कुश, काँस, सर, दाभ (दर्भ), आदि द्रव्योंसे पित्तका प्रकोप नष्ट होता है।

**कफप्रशमन**—काला अगर, अगर, लाल चन्दन, कूठ, हल्दी, शैलज ( छानछरीला ) सोया, सरल धूप, रास्ना, करंजुवा, जाईएरंड, मूँग, खश, शालपर्णी, अनन्तमूल, गिलोय, मेंढासिंगी, करौंदा, गोखरू, पियावांसा, शतावर, तालमखाना, पीपल, पीपलामूल, चव, चीता, सोंठ कालीमिर्च, गजपीपल, रेणुक ( सम्हालूके बीज ) इलायची, अजवायन, इन्द्रजौ, पाठा ( जलजमनी ), जीरा, सरसों, बकायनके फल, हींग, भारङ्गी, मूर्वा, अतीस, बच, वायविड़ंग, कुटकी, बड़ी करेली, छोटी करेली, मुलेटी, चीतेकी जड़, धतूरा, थूहर, त्रिफला, नागरमोथा, हरड़, देवदारु, नागकेशर, सब तरहकी तुलसी, कसौंदी, चिरचिटा, नागदौन ( बरियारा ), जायफल, सम्हालू, मूसाकर्णी, कुचला, अमलतास, मैनफल, केवड़ेके फूल, लाल लोध, सतौनेकी छाल, नीम की छाल, कटूसरैया, चिरायता, पटोलपत्र व करेला ( कारवेल्ल ) आदि औषधियाँ कफप्रकोपको नष्ट करती है।

वायु, पित्त व कफके प्रशमन करनेवाले द्रव्योंका संक्षेपसे उल्लेख कर दिया है, जगत भरकी सब चीजोंका विस्तार पूर्वक उल्लेख करना असम्भव है। बुद्धिमान् चिकित्सक रोगकी अवस्था व रोगीका अग्निबल आदि विचार कर इन सब द्रव्योंको तथा इनके अतिरिक्त समान गुणद्रव्योंकी कल्पना कर कषाय ( क्वाथ ) व कल्क आदि बनाकर तथा इन द्रव्योंसे घी, तेल, मोदक, व अवलेह आदि बनाकर, वात, पित्त आदि दोष तथा इनसे उत्पन्न विविध प्रकारके रोगोंको शान्त करनेमें समर्थ हो सकते हैं।

जिन २ द्रव्योंसे वायु आदि दोषोंका प्रकोप होता है, वे पहिले कह आये हैं, और जिन २ द्रव्योंसे वात-आदि दोषोंका प्रशम होता है, वे भी कह दिये हैं, अब जिस २ रससे वायुका प्रशम व प्रकोप होता है, कहता हूँ, सुनो-

मधुर, अम्ल, लवण, कटु ( चरपरा ) कषाय व तिक्त ये छः रस द्रव्यको आश्रय कर रहते हैं । इनमेंसे मधुर, अम्ल व लवण रससे वायुका प्रशम होता है, पर इनसे कफका प्रकोप होता है । इसी तरह कटु, तिक्त व कषाय रससे कफका प्रशम होता है, पर वायुको ये प्रकुपित करते हैं अर्थात् जिनसे वायुकी शान्ति होती है उनसे कफकी वृद्धि होती है, और जिनसे कफ कम होता है, उनसे वायुकी वृद्धि होती है । इसी लिए इस प्रकारके द्रव्य वातश्लेष्म जनित रोगोंमें अहितकर होते हैं । क्योंकि-वायुको शान्त करनेसे कफका प्रकोप बढ़ जाता है, और कफकी शान्ति करने पर वायु बढ़ जाता है । इस लिए वातश्लेष्म रोगोंमें अति विचार पूर्वक औषधि प्रयोग करना चाहिए । जिन द्रव्योंमें स्वभावसे ही वात व कफके प्रशमकी शक्ति हो वे ही द्रव्य युक्तिपूर्वक ऐसे स्थानमें प्रयोग करना आवश्यक होता है । किस २ रससे वायु व कफका प्रकोप व प्रशम होता है ऊपर कह चुके हैं, अब किन २ रसोंसे पित्तका प्रकोप व शान्ति होती है, यह कहते हैं, सुनो-तिक्त, कषाय, व मधुर रससे पित्तका प्रशम होता है और अम्ल, लवण व कटु रससे पित्तका प्रकोप होता है, पर यहाँ पर यह बात भी ध्यानमें रखनी चाहिये, कि-जिन रसोंसे वायुका उपशम होता है, यदि उन रसोंमें रूक्षता, लघुता व शैत्यगुण हो, तो वे वायुका प्रशमन नहीं कर सकते, क्योंकि-वायु रूक्ष, लघु व शीतल पदार्थ है, इसीसे रूक्षता आदि गुण वाले पदार्थोंसे उसका उपशम नहीं होता, बल्कि उल्टे समानगुण द्रव्योंको पाकर बढ़ता है । इसी तरह पर जिन रसोंसे पित्त का प्रकोप शान्त होता है, यदि उन रसोंमें तीक्ष्ण, उष्ण व लघुत्व गुण हो, तो वे उसका प्रकोप शान्त करनेमें असमर्थ होते हैं, क्योंकि-पित्त

तीक्ष्ण, उष्ण व लघु पदार्थ है, अत एव समान गुण पदार्थोंसे उसका प्रकोप शान्त नहीं होता, बल्कि बढ़ता है, तथा जिन रसोंसे कफका नाश होता है, यदि उन रसविशिष्ट द्रव्योंमें स्निग्धता, गुरुता व शीतलता गुण हो तो उनसे कफ शान्त नहीं होता, क्योंकि-कफ स्निग्ध, गुरु व शीतल पदार्थ है अत एव समान गुण द्रव्योंसे उसका उपशमन होकर वृद्धि होती है। इस लिए दोष-प्रशमनके लिये केवल रस ( अमुक द्रव्यमें अमुक रस है इस लिये वह अमुक दोषको शान्त कर सकेगा ) का ज्ञान होनेसे ही काम नहीं चलता, किन्तु उसके शैत्य उष्ण आदि स्वाभाविक तथा संयोगज गुणोंसे भी अभिज्ञ होना आवश्यक होता है। अत एव यहाँ पर कुछ संक्षेपसे वर्णन किया जाता है।

गुण—गुरु, लघु, स्निग्ध, रूक्ष, तीक्ष्ण, श्लक्ष्ण, स्थिर, सर, पिच्छिल, विशद, शीत, उष्ण, मृदु, कर्कश, स्थूल, सूक्ष्म, द्रव, शुष्क, आशु व मन्द ये बीस गुण शास्त्रकारोंने स्थिर किये हैं। गुरुद्रव्य—वातनाशक, पोषक ( पुष्टिकारक ), श्लेष्म जनक और देरमें हजम होता है। लघुद्रव्य—सुपथ्य, कफनाशक व शीघ्र परिपाक होता है। स्निग्धद्रव्य—वातनाशक, कफकारक, वृष्य व बलदायक होते हैं। रूक्ष द्रव्य—अत्यन्त वात वर्द्धक व कफनाशक होता है। तीक्ष्णद्रव्य—पित्तकारक, लेखन ( कृश करने वाला ), व कफ-वातनाशक होता है। श्लक्ष्ण द्रव्य—तेल आदि चिकनी चीजोंके विना और कठिन होने पर भी यदि कोई द्रव्य चिकना हो, तो उसमें श्लक्ष्ण गुण है, जानना चाहिये। स्थिर द्रव्य—वायु व मलको स्तब्ध करने वाला होता है। सरद्रव्य—सारक अर्थात् इससे वायु व मलका निःसरण होता है। पिच्छिल-द्रव्य—तन्तुल ( लेसदार ), बलकारक टूटी जगह जोड़ने वाला, कफकारक व गुरु होता है। विशदद्रव्य—क्लेद नाशक व घाव भरने वाला होता है। शीतलद्रव्य—आनन्दजनक, स्राव ( बहाव ) आदिका रोकने वाला और मूर्छा, प्यास, पसीना व दाहको नाश करता है।

उष्णद्रव्य—शीतगुणके विपरीत अर्थात् असुखजनक, रक्त आदिके बहावको न रोकने वाला, मूर्छा आदि करने वाला व घाव आदिको पकाने वाला होता है। मृदुद्रव्य—कोमल होता है। कर्कशद्रव्य—परुष अर्थात् खुरदरा होता है। स्थूलद्रव्यः—शरीरको मोटा करने वाले वा स्रोतोंका अवरोध करने वाला होता है। सूक्ष्मद्रव्य—जो शरीरके बारीक २ छेदोंमें प्रवेश कर जावे। द्रवद्रव्य—क्लेदजनक व व्यापन स्वभाव होता है। शुष्कद्रव्यः—द्रव गुणके विपरीत अर्थात् क्लेद नाशक व स्थिरस्वभाव होता है। आशुद्रव्य—आशुकारी अर्थात् जलमें पानी फेंकनेसे वह जैसे बहुत जल्दी फैल जाता है, उसी प्रकार आशु गुण वाली चीजें शरीरमें शीघ्र कार्य करती हैं। मन्दद्रव्य—सब कार्योंमें शिथिल होता है, इसको अल्प भी कहा जाता है।

वीर्य—द्रव्योंका वीर्य दो प्रकारका होता है, यथा—शीतवीर्य व उष्णवीर्य। शीतवीर्यद्रव्य—वातश्लेष्म जनित रोगोंको उत्पन्न करते हैं और पित्तको बिलकुल कम कर देते हैं। उष्णवीर्यद्रव्य—वायु व कफका नाश करते हैं, पित्तको बढ़ाते और बुढ़ापा लाते हैं वीर्यके बारेमें दूसरा मत—उष्णवीर्य—भ्रम, पिपासा, ग्लानि, पसीना व दाह उत्पन्न करता है, शीघ्र पकाता है और वायु व कफका प्रशम करता है। शीतवीर्यद्रव्य—सुखजनक, जीवनका हितकारक, मल आदिका स्तम्भक व रक्त पित्तको हितकर होता है।

विपाक—भोजन किये हुए मधुर आदि रस वाले द्रव्योंका जठराग्नि के द्वारा परिपाक होने पर, उनसे जो एक दूसरा रस उत्पन्न होता है, उसको विपाक कहते हैं। सब रसोंका यह विपाक तीन प्रकारका होता है, जैसे—मधुर व लवण रसका विपाक मधुर, अम्लरसका विपाक अम्ल और कटु, तिक्त कषाय रसका विपाक प्रायः कटु (चरपरा) होता है। मधुरविपाक— कफकर व वातपित्तनाशक होता है।

अम्लविपाक—पित्तवर्द्धक व वातश्लेष्म जनित रोगनाशक होता है। कटुविपाक—वातवर्द्धक व कफपित्तनाशक होता है।

**प्रभाव**—द्रव्यका अमीमांस्य व अचिन्त्य किसी विशेष शक्तिका नाम प्रभाव कहते हैं। जैसे-रुद्रदेवी बूटीकी जड़ मस्तकमें बाँधनेसे ज्वर उतर आता है। काकजंघाकी जड़ बाँधनेसे नींद आती है।

विरुद्ध गुण विशिष्ट द्रव्योंके संयोगमें जो प्रबल होता है वही दुर्बलको जय करता है। जैसे-विपाक रसको, वीर्य-विपाक व रस दोनोंको और प्रभाव-वीर्य विपाक व रस इन तीनोंको जय करता है।

वात-आदि दोषोंके प्रकोपक और प्रशमक रस आदिके गुण ऊपर कह चुके हैं, अब प्रसङ्गवश कुछ विशेष २ क्रियाओंको करने वाले द्रव्योंके विषयमें कहते हैं, सुनो—

जमालगोटा, निशोथ, आँक (मन्दार), एरण्ड, एरण्डतैल (कस्टर् औयल्), भिलावाँ दन्ती, चीता, करंजवा, अमलतास, कुटकी, स्वर्णक्षीरी (सत्यानासी) ये **भेदक (दस्तावर)** द्रव्य हैं इनमेंसे भी जमालगोटा अति विरेचक द्रव्य है।

किसमिस खम्भारि, फालसा, हरड़, बहेड़ा, व बेर ये **सारक (रेचक)** द्रव्य हैं।

प्रियंगु (फूल प्रियंगु) अनन्तमूल, आमकी गुठली, सोनापाठा, लोध, मोचरस, वाराहक्रान्ता, धायकेफूल, भारंगी व कमल केशर ये सब **मलस्तम्भक** (कब्ज करने वाले) द्रव्य हैं।

वांदा, गोखरू, मौलसरीके फूल, हुलहुल, पत्थर चट्टा, सर, ईख, कुश, कांसकी जड़, खश, दाभकी जड़, गिलोय व आँककी जड़ ये सब द्रव्य **मूत्ररेचक** (पेशाब लाने वाले) हैं।

आम, जामुन, पिलखन, वच, आम्नातक (अम्बाड़ा), गूलर, पीपल, भिलावाँ, खदिर (खैर) ये सब **मूत्ररोधक** (पेशाब रोकने वाले) द्रव्य हैं।

कमल, कुमुद आदि पानीमें पैदा होने वाले फूल और मुलेठी प्रियंगु व धायके फूल ये सब **मूत्रावशोधक** (पेशाब साफ करने वाले) द्रव्य हैं।

मधु ( शहद ), कचनार ( सुफेद व लाल ), कदम्ब, कन्दूरी ( बिम्बिफल ), आँक व चिरचिटा ये **वमनकारक** ( कै लाने वाले ) द्रव्य हैं।

आम, जामुनके पत्ते, निम्बू, खट्टे फल, दाड़िम, यव, खस, मुलेटी व धानकी खीलें ये **वमननिवारक** ( कै रोकने वाले ) द्रव्य हैं।

मालकंगनि, बावचि, कालीमिर्च, पीपल, वायविडंग, सहजना, सरसों, चिरचिटेके बीज, सुफेद कोयल, नीली कोयल, ये **शिरो-विरेचक** अर्थात् इनकी नास सूँघनेसे मस्तकका श्लेष्मा निःसारित होता ( निकलता ) है।

कचूर, कूठ, बेरकी गुठली, कटेली, बड़ीकटेली, बाँदा, हरड़, पीपल, धमासा, व काकड़ासिंगि ये **हिक्कानिवारक** ( हिचकीको दूर करने वाले ) द्रव्य हैं।

शहद, मुलेटी, केशर ( जाफरान ), मोचरस, चूल्हेकी मिट्टी, लोध, गेरुमिट्टी, प्रियंगु, शर्करा व खील ये **रक्तरोधक** ( रक्त रोकने वाले ) द्रव्य हैं।

पीपल, पीपलामूल, चव, चीता, सोंठ, अम्लवेत, कालीमिर्च, अजवायन, भिलावेका गोंद व हींग ये **अग्निदीपक** द्रव्य हैं।

इन्द्रायण, कौंचके बीज, शतावर, माषपर्णी, क्षीरकाकोलि, असगन्ध, शालपर्णी, कुटकी, खरेंटी व नागबला ये **बलकारक** द्रव्य हैं।

आम, आम्नातक, मन्दार, करञ्ज, चौपतिया, अम्लवेत, बेर अनार व निम्बु ये **रुचिजनक** पदार्थ हैं।

असंख्य द्रव्योंमेंसे कुछ सर्वदा व्यवहारोपयोगी द्रव्योंका उल्लेख कर दिया है, बहुत समय इन्हींमेंसे युक्तिपूर्वक व्यवहार करनेसे अधिक उपकार होते देखा गया है।

प्रश्न-आपने आरम्भमें ही उपदेश दिया है, कि-जिस क्रियासे रोग की शान्ति होती है, उसको चिकित्सा कहते हैं, तब जिज्ञासा करता हूँ, कि-वह क्रिया कौनसी है ?

उत्तर-यह क्रिया कार्यभेदसे भिन्न २ प्रकारकी होती है, यथा—हेतुविपरीत, व्याधिविपरीत व हेतुव्याधिविपरीत आदि। जिस हेतुसे रोगकी उत्पत्ति हुई हो, उस हेतुके विपरीत क्रिया व रोगके विपरीत क्रिया तथा हेतु व रोग इन दोनोंके विपरीत क्रियाका नाम ही चिकित्सा है। यहाँ पर दो एक उदाहरणों द्वारा यह स्पष्ट किया जाता है, सुनो-जैसी ठण्डी हवाके लगनेसे सर्दी होगई हो, तो शीतल वायुका स्पर्श दूर करनेके लिये गरम कपड़ोंसे शरीरको ढाँकते हैं अथवा आग आदिका सेक देकर सर्दीको दूर करते हैं, इसी तरह पर गरम हवाके लगने पर, गर्मी दूर करनेके लिए ठण्डे मकान आदिके अन्दर या छायामें बैठते हैं, अथवा पंखे आदिसे हवा की जाती है, अर्थात्-शीत उष्ण आदि हेतुओंसे उत्पन्न असुख उन हेतुओंसे विपरीत क्रिया द्वारा दूर किया जाता है। यह तो हुआ सिर्फ हेतुसे विपरीत क्रियाका उदाहरण अब हेतु, रोग वा हेतुव्याधिविपरीत क्रियाओंको पृथक् २ समझा देते हैं, सुनो-**हेतुविपरीतक्रिया**-जैसे जो रोग उष्ण ( गरम ) का सेवन करनेसे हुआ हो, उसमें शीतल क्रिया और शीतके कारण हुए रोगोंमें उष्ण क्रिया करना। अधिक भोजन जनित रोगमें लंघन (भोजन न करना ) व लघुभोजन करना और अनिद्रा ( नींद न आने ) से उत्पन्न रोगमें नींद लाना, इसी तरह सब जगह ही हेतुविपरीत क्रिया-कर रोग शान्त करते हैं। **व्याधि विपरीत क्रिया**-यथा-अतिसार ( दस्त ) रोगमें स्तम्भन अर्थात् मलको रोकनेकी औषधियाँ आदिके प्रयोगसे अतिसार रोगका निवारण करते हैं, और वमन रोगमें अधः प्रवर्त्तक व वात-आदि दोषोंकी अनुलोमक औषधि व पथ्य आदिसे वमन निवारण करते हैं। **हेतुव्याधिविपरीतक्रिया**—से—वात-जनित शोथ रोगमें वायु व शोथ इन दोनोंके निवारणके लिये "दश-मूल" का काढा प्रयोग करते हैं, क्योंकि-दशमूल वायुका नाश करता है और शोथका भी निवारण करता है। अत एव हेतुविपरीत-व्याधि विपरीत व हेतुव्याधि इन दोनोंके विपरीत क्रियाका नाम चिकित्सा है।

प्रश्न-अब जिज्ञासा है, कि रोगकी चिकित्सामें हेतु, व्याधि व हेतु-व्याधिके विपरीत चिकित्सा करते हैं, यह सब ठीक है, पर यह बहुत दिनसे लौकिक कहावत है, कि-"विषस्य विषमौषधम्" अर्थात् विषज रोगोंकी विष ही औषधि है। यदि यह बात सत्य है, तो उपरोक्त चिकित्सा सूत्रका इससे व्यभिचार ( खण्डन ) होजाता है ?

उत्तर—हम तुम्हारे इस प्रश्नसे अति प्रसन्न हुए हैं, इसका उत्तर सुनो-आयुर्वेद शास्त्रोंमें विषजनित रोगोंकी विष ही औषधि मानी गई है, यह बात बिल्कुल सत्य है, जैसे-अग्निसे जले हुए स्थानको "आग पर सेकना" या उष्णगुण वाला "प्रलेप" देना, तथा वमन रोगमें वमन कारक "मैनफल" का प्रयोग इत्यादि समान धर्मी चिकित्सा करनेका भी उपदेश है। परन्तु शास्त्रका इससे यह उद्देश्य है, कि-समान धर्मी होने पर भी यदि उसमें कोई "अवान्तरवैधर्म्य" हो, कि जिस अवान्तर-वैधर्म्यसे वह हेतु, व्याधि व हेतु-व्याधि इन दोनोंके विपरीत क्रिया करनेमें समर्थ हो, तो ऐसा होने पर समानधर्मी द्रव्य भी प्रयोग किया जा सकता है। क्योंकि-"स्थावर विष" ( मीठा तेलिया आदि ) भेदक होते हैं, परन्तु जङ्गमविष ( सर्प आदिका ) वामक ( वमन कारक ) होते हैं। यद्यपि विषत्व क्रिया दोनोंकी समान होती है, तो भी प्रभाव के भेदसे वे परस्पर विपरीत कार्य करते हैं। इसी तरह पर अग्निसे जले हुए स्थानमें जो अग्निसे सेकना व उष्ण प्रलेप देनेकी व्यवस्था है, उसका भी यही कारण है-कि-यदि उस स्थान पर उष्ण क्रिया न करके शीतल क्रिया की जावे, तो शैत्यके संयोगसे अग्निके जलने से दूषित हुआ रक्त उस स्थानमें गाढ़ा होकर वह पचन क्रिया प्रारम्भ कर देता है, और उष्ण क्रिया करनेसे वह दुष्ट रक्त गाढ़ा नहीं होने पाता तथा उष्णके संयोगसे वह द्रव ( पतला ) होकर इधर उधर फैल कर साफ़ होजाता है, जिससे पचन क्रिया नहीं होने पाती। अतिसार रोगमें जो दूध देनेकी व्यवस्था है और वमन रोगमें मयनफल प्रयोग करनेका विधान है, वहाँ पर भी यह जानना

चाहिए, कि-साधारण अतिसार व साधारण वमन रोगके लिए यह विधि नहीं है। किन्तु अधिक पित्त जनित अतिसार रोगमें ही विरेचनके लिए दूध और अधिक कफ जनित वमन रोगमें वमन कारक मैनफल प्रयोग करनेसे इनके द्वारा कारणभूत पित्त व कफके निकल जानेसे शीघ्र ही रोगकी शान्ति होजाती है। पित्तहर क्रियाओंमें विरेचन और श्लेष्महर क्रियाओंमें वमन ही सर्वोत्तम होता है। उक्त दोनों स्थानोंमें यदि प्रवृद्ध पित्त व कफका शीघ्र निर्हरण न किया जाय, तो उस प्रवृद्ध पित्त व कफके द्वारा विविध प्रकारके उपद्रवोंके होनेकी सम्भावना होती है। अत एव समानधर्मी होने पर भी कार्यतः वे विपरीत ही होते हैं। अब विचार कर देखो, कि-पूर्वोक्त चिकित्सा सूत्रका व्यभिचार हुआ अथवा नहीं?

# ❀ चिकित्सा-प्रकरण ❀

## ज्वर ( बुखार )

प्रश्न-गुरुवर! रोग विषयक व चिकित्सा विषयक उपदेश मैं अच्छी तरहसे जान गया हूँ। अब दयाकर मुझे उपदेश कीजिये-कि वात-आदि दोष रोगोंको किस प्रकार उत्पन्न करते हैं, और इनसे उत्पन्न उन रोगोंका स्वरूप ( लक्षण ) व चिकित्सा क्या है?

उत्तर-हम यहाँ पर सबसे पहिले ज्वरके विषयमें उपदेश करते हैं-बादको क्रमशः वात-आदिसे उत्पन्न समस्त रोगोंका वर्णन होगा, क्योंकि ज्वर सब रोगोंमें प्रधान है, और ज्वर होने पर उसके लक्षण स्वरूप सब रोग ( कास आदि ) हो जाते हैं, और सब ही रोगोंकी विच्छेद-अवस्थामें ज्वर होकर रोगीको विनाश कर देता है तथा और रोगोंकी अपेक्षा अक्सर ज्वर ही अधिक हुआ करता है। इस लिए यहाँ पर पहिले ज्वरकी सम्प्राप्ति (उत्पत्ति) स्वरूप व लक्षण लिखते हैं।

**ज्वरकी सम्प्राप्ति**—विरुद्ध आहार विहार आदिसे वात आदि दोष कुपित होकर ( बिगड़ कर ) आमाशयमें जाकर वहाँके आमरस× को दूषित कर और कोष्ठकी अग्निको मन्द ( कमजोर ) कर व कोष्ठसे बाहर डालकर ज्वरको उत्पन्न करते हैं । कोष्ठकी अग्नि ( पित्तकी उष्मा बाहर होनेसे ही ( रक्तमें मिलनेसे ) बाहर शरीरमें ताप ( गरमायस ) मालूम देती है । यह ज्वर जो इस तरह पर वात-पित्त आदि दोषोंसे आरम्भ होता है, उसको दोषज और अभिघात ( बाहरसे चोट-फटाक लगना व काम क्रोध आदि हेतुओं ) से आरम्भ होकर पुनः वात आदि दोषोंसे संयुक्त होता है, उसको आगन्तुज कहते हैं । इस तरह पर दोष और अभिघात इन दो कारणोंसे उत्पन्न हुआ ज्वर आठ प्रकारका होता है, यथा—वातज, पित्तज, कफज, वातपित्तज, वातकफज, कफपित्तज, सान्निपातिक ( त्रिदोषज ) व आगन्तुज ।

**ज्वरका पूर्वरूप**—जिस रोगमें सन्ताप ( दाह, जलन ) पसीने का रुकना व सारे शरीरमें दर्द होना यह तीनों लक्षण एक ही बार प्रकाशित हों, उसको ही ज्वर कहते हैं । परन्तु इन और सब लक्षणोंमें सन्ताप ही ज्वरका प्रधान लक्षण है । क्योंकि—ज्वरके और २ लक्षणोंमें कभी २ इनका व्यभिचार भी होजाता है अर्थात् नहीं होते । जैसे—पित्त-ज्वरमें पसीना रुकता नहीं है, बल्कि निकलता है ।

नीचे वात-आदि दोषोंके भेदसे उत्पन्न ज्वरोंके पृथक् २ लक्षण वर्णन किये जाते हैं । सुनो—

**वातज्वरके लक्षण**—इस ज्वरमें कंप होता है, जंभाई आती है, गला और होंठ ( ओष्ठ ) सूखते हैं, नींद अच्छी नहीं आती, छींक

---

× भुक्त ( खाये हुए ) आहारके परिपाक होने पर उससे पहिले पहल जो रस उत्पन्न होता है, उस रसको आम-रस व अपक रस कहते हैं । यह आमरस ही यथाक्रमसे शरीरपोषक रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा व शुक्र रूपमें परिणत होता है ।

रुक जाती है, शरीर रूखा होजाता है, समस्त शरीरमें और विशेष करके हृदय व मस्तकमें बड़ा दर्द होता है। रोगी अधिक बकवास करता है, मल कठिन ( टट्टी सख्त ) होता है, अफारा व पेटमें शूल की तरह दर्द होता है, वातज्वरमें साधारणतया ये लक्षण होते हैं। इस ज्वरके चढ़नेके समयका कोई निश्चय नहीं होता, और-शारीरिक उत्ताप आदि भी समान नहीं होता, किसी समय उत्ताप आदि बढ जाते हैं और किसी समय कम होजाते हैं अर्थात् एक समान नहीं रहते

**पित्तज्वरके लक्षण**—इसमें ज्वरका वेग अधिक होता है, अतिसारकी तरह मल पतला आता है, मलका रंग पीला या नीला होता है, वमन ( कै ) होती है, कण्ठ, मुख, ओष्ठ व नाकमें क्षत ( घाव होता है, पसीना निकलता है, रोगी बकवास करता है, मुखका स्वाद तिक्त ( कडुवा ) होता है, मूर्छा ( बेहोशी ), दाह और प्यास होती है, मल, मूत्र व नेत्र पीले रंगके होते हैं तथा शिरमें चक्कर आता है, पित्त-ज्वर में साधारणतः ये लक्षण प्रकाश होते हैं।

**कफ ज्वरके लक्षण**—इसमें ज्वरका वेग मन्द (हलका), आलस्य, मुँहका स्वाद मधुर, मल, मूत्र व नेत्र शुक्ल वर्णके, शरीर स्तब्ध ( जकड़ा हुआ सा ), अधिक उष्णता नहीं होती, शरीरका ढीलापन व भारीपन भोजनमें अनिच्छा, वमन, अपरिपाक, शीत लगना, रोमांच, अधिक नींद आना, नाकसे पतला पानीसा कफ गिरना, खाँसी व अरुचि होना, साधारणतः कफ ज्वरमें ये लक्षण होते हैं।

**वातपित्त ज्वरके लक्षण**—इसमें प्यास, मूर्छा शरीरका घूमना दाह, नींद न आना, शिरमें दर्द, गलेका सूखना, मुखका सूखना, वमन, रोमांच, अरुचि, अंधेरी आना, अंगुलीके पोरवोंमें टूटनेके समान दर्द व जंभाई, आना, साधारणतःवातपित्त ज्वरमें ये लक्षण उपस्थित होते हैं।

**वात कफ ज्वरके लक्षण**--इस ज्वरमें पर्व स्थान ( पोरवों ) में में टूटनेके समान दर्द, अधिक नींद आना, शिरमें दर्द, मुख व नाक से पानी गिरना, खाँसी, अधिक पसीना आना, और ज्वरका मध्य-

वेग अर्थात् न अधिक और न कम, साधारणतः वात कफ ज्वरमें यह लक्षण होते हैं।

**पित्तकफ ज्वरके लक्षण**-इस ज्वरमें मुँह कफसे लिपा हुआ व पित्तके कारण कड़वे स्वाद लिए होता है, उसमें पीला मायल रंग, तन्द्रा ( ऊँघ ), मूर्छा, कास, अरुचि व तृष्णा होती है। साधारणतः पित्तकफ ज्वरमें ये लक्षण होते हैं।

**सन्निपात ज्वरके लक्षण**-इस ज्वरमें कभी दाह और कभी शीत, अस्थि ( हड्डी ), सन्धि ( जोड़ ) व मस्तकमें दर्द होता है, दोनों नेत्र अश्रुपूर्ण, आविल ( मैले ), रक्तवर्ण, विस्फारित ( फैले हुए ) व अतिकुटिल होते हैं, दोनों कानोंमें विविध प्रकारके शब्द व दर्द होता है, गला शूकों ( जौ आदिके काटों ) से घिरा जैसे मालूम होता है, जिह्वा कोयलेके समान काली रंगत व गौकी जिह्वाके समान खुरदरी होती है, तथा तन्द्रा, मूर्छा, बकवास करना, कास, श्वास, अरुचि व भ्रम होता है। सब अंग शिथिल, मुखके भीतरसे कफके साथ रक्त व पित्तका थोड़ा २ निकलना, शिरका इधर उधर फेंकना, तृष्णा, अनिद्रा, हृदयमें वेदना, बहुत समयके बाद मल, मूत्र व पसीनेका थोड़ा २ उतरना, शरीरका कुछ दुबला होना, गलेमें निरन्तर किसी अव्यक्त ( घर २ जैसे ) शब्द होना, शरीरमें नीले व लाल रंगके मण्डलाकार चिह्नोंकी उत्पत्ति, बहुत पूछने पर थोड़ा कहना, मुख नाक आदि-स्थानोंमें क्षत ( घाव ), पेटमें भार मालूम होना और वात-आदि दोषों का विलम्बसे पकना, साधारणतः सन्निपात ज्वरमें ये लक्षण होते हैं।

**अभिन्यास ज्वरके लक्षण**-वात आदि दोष प्रकुपित होकर वक्षस्थलीय स्रोतोंमें जाकर अभिन्यास नामक एक अतिभयानक सन्निपातको उत्पन्न कर देते हैं। इसमें रोगी निश्चेष्ट और दर्शन, श्रवण व घ्राण( सूँघनेकी शक्ति ) से रहित होता है; वह किसीको पहिचान नहीं सकता, किसीकी बातको सुन नहीं सकता, हर समय शिरको इधर उधर फेंकना, कुंथन व जल्दी २ करवट बदलना, कुछ भी खाना नहीं

चाहता और जबरदस्ती कुछ खिला देनेसे उसको निगल नहीं सकता, वह सारे शरीरमें निरन्तर सुईसे बींधनेके समान दर्द अनुभव करता है, बातें नहीं कर सकता और यदि कहता है, तो बहुत धीमा और थोड़ा। यह रोग अत्यन्त भयंकर होता है, इस लिए इससे कोई ही बचता है। यह अभिन्यास ज्वर सन्निपातकी एक अवस्थाविशेष है।

सन्निपात ज्वर साधारणतः सात, दश व बारह दिनमें अति भयानक होकर या तो अपने आप ही शान्त होजाता है अथवा रोगीका जीवनदीप निर्वाण तक कर देता है। किसी २ के मतमें या कभी २ सात व चौदह दिन, नौ व अठारह दिन, ग्यारह व बाईस दिन तथा किसी २ के मतमें बीस व चौबीस दिन ही रोगीको रोगमुक्ति व जीवनाशंकाकी सीमा है। किसी २ का मत है-कि-४१ दिन तक भी सन्निपात ज्वरकी सीमा है।

वात-आदि दोषज नये ज्वरोंके लक्षण तुम्हें सुना दिये है, अब जो वात आदि दोष धातुस्थ ( रस, रक्त आदि धातुओंमें स्थित ) होकर विषम ज्वरोंको उत्पन्न करते हैं, उनका वर्णन करता हूँ, सुनो—

**विषमज्वर** *—विधिपूर्वक चिकित्सा न करनेसे केवल ज्वरनाशक कोईसी उग्रवीर्य औषधिके प्रयोगसे हठात् ( एकाएक ) ज्वर रोका जाय, तो उस ज्वरके उत्पन्न करने वाले वात-आदि दोष अच्छी तरहसे परिपक्व व प्रशमित न होकर, बल्कि क्षीणदशामें शरीरमें स्थित रहते हैं और पुनर्वार आहार विहारके थोड़ेसा भी अनियम होजानेसे

---

* मुक्तानुवन्धित्व अर्थात् छोड़ २ कर फिर आजाना ही विषम ज्वर का प्रधान लक्षण है। ऐसे ज्वरके होनेका समय व त्यागके समयका तथा बढ़ने घटने और शीत उष्ण आदि कोई भी समान नहीं होता। कभी दिन में ज्वर आता है, कभी रात्रिमें और कभी दिनमें ज्वर छूट जाता है व कभी रात्रिमें उतरता है, इस प्रकारकी विषमताके कारण ही इस ज्वरको विषमज्वर नामसे कहते हैं।

वे लब्धबल होकर ( बल पाकर ) रस, रक्त आदि किसी भी धातुका आश्रय कर विषम ज्वरोंको उत्पन्न कर देते हैं।

साधारणतः विषमज्वर पाँच प्रकारके होते हैं, जैसे-सन्तत, सतत अन्येद्युष्क, तृतीयक व चतुर्थक। वात-आदि दोष आहार आदिके अनियमसे पुनर्वार लब्ध बल होकर रस धातुको आश्रयकर 'संततज्वर' रक्त धातुको आश्रय कर "सततज्वर" मांसधातुको आश्रय कर "अन्येद्युष्क ज्वर" मेद धातुको आश्रय कर "तृतीयक ज्वर" और अस्थि व मज्जा धातुको आश्रय कर "चतुर्थक" नामक विषम-ज्वरको उत्पन्न करते हैं। जो ज्वर सात दिन, दश दिन व बारह दिन तक निरन्तर बना रहे, दिनमें एक बार भी न उतरे, उसको सन्तत-ज्वर कहते हैं, जो ज्वर दिन व रातमें दो बार चढ़, उसको सततज्वर जो दिन रातमें एक बार हो उसको अन्येद्युष्कज्वर, जो तीसरे दिन अर्थात् बीचमेंका एक दिन छोड़ कर चढ़े, उसको तृतीयक ज्वर कहते हैं और जो चौथे दिन अर्थात् बीचमें दो दिन छोड़ कर हो उसको चतुर्थक ज्वर कहते हैं। इसके अतिरिक्त और भी कितनेक प्रकारके विषमज्वर हैं, यथा-वातबलासक नामक एक प्रकारका ज्वर है, वह प्रतिदिन मन्द २ भाव ( सिमसिमितौर ) से होता है। उसमें रोगी श्लेष्मबहुल ( अधिक कफ ) जड़प्राय, रूक्षदेह व अवसन्न होजाता है एक और प्रकारका प्रलेपक नामका ज्वर है इसमें हर समय रोगीका शरीर पसीनेसे लिप्त ( चिपचिपा ) रहता है। ऐसा ज्वर प्रायः यक्ष्मा ( तपेदिक ) रोगमें होता है।

प्रश्न-यदि मुक्तानुबन्धित्व अर्थात् बारंबार चढना व मुक्तावस्था प्राप्त होना ही विषम ज्वरोंका लक्षण है, तब सन्तत ज्वरको किस तरह से विषमज्वर कहा जा सकता है? क्योंकि-उसमें, तो मुक्तानुबन्धित्व नहीं होता, बल्कि अविच्छेद रूपसे सात दिन, दश दिन व बारह दिन तक वह लगातार बना रहता है?

प्रश्न-इसमें मुक्तानुबन्धित्व न होनेसे ही कोई २ विद्वान् इसको

विषमज्वरोंमें स्वीकार नहीं करते। परन्तु महर्षि चरकने कहा है, कि-वह विषमज्वर ही है, क्योंकि-बारह दिनमें उसके प्रशम होने पर भी वह पुनर्वार हो आता है, इस पर भी उसका उपशमकाल (मुक्तिकाल) बहुत थोड़ा है।

प्रश्न-और एक बात जानना चाहता हूँ-कि-तृतीयक ज्वर एक दिनके अन्तरसे और चतुर्थक ज्वर दो दिनके अन्तरसे होता है। इसी तरह पर अपस्मार ( मृगी ) रोग भी देखा गया है, कि-यह दश दिन पन्द्रह दिन एक मास, दो मासके अन्तरसे होता है, इसका क्या कारण है ? यदि इनमें वात-आदि दोषोंका प्रकोप नियतरूपसे होता है, तब रोगका आक्रमण भी नियतरूपसे ही होना चाहिए, और यदि विराम कालमें दोषोंका प्रशम हो जाता है, तब रोगका भी प्रशम हो जाना चाहिए। फिर रोगकी पुनः उत्पत्ति न होने पर भी ऐसा क्यों होता होगा ? और इन सब रोगोंके विराम कालमें भी दोषोंका प्रकोप रहता है या नहीं ?

उत्तर-इस प्रश्नका उत्तर हम एक उदाहरण देकर स्पष्ट कर देते हैं, सुनो-जैसे जमीन पर मौके २ सिर विविध प्रकारके बीज बिखरे रहते हैं, उनमेंसे बहुतसे बीज तो वर्षाऋतुमें बारिस होने पर उग जाते हैं, और बहुतसे वैसेके वैसे पड़े रहते हैं, जो वर्षा ऋतुमें अंकुरित न होकर शरद् ऋतुमें अंकुरित होते हैं। इसका कारण-केवल मिट्टी व जल आदि ही नहीं होते, बल्कि समयका भी कारणत्व होता है। अत एव उपयुक्त समय उपस्थित होने पर ही अंकुरकी उत्पत्ति होती है। इन रोगोंकी उत्पत्ति भी इसी तरह समयापेक्षिणी हुआ करती है। इन रोगोंमें वात आदि दोषोंका प्रकोप नियतरूपसे रहता है और जब २ उनसे रोग-रूपमें परिणत होनेके उपयुक्त समयका संयोग होता है, तब उनसे रोग प्रकट होजाता है।

प्रश्न-ज्वरकी उत्पत्तिका विवरण और विशेष २ ज्वरोंके विशेष २ लक्षण समझ लिए हैं। अब जानना चाहता हूँ, कि-ज्वरकी चिकित्सा

किस विधिसे करते हैं? अनुग्रह कर इस विषयका विशेष उपदेश देकर कृतार्थ कीजिये?

उत्तर-पहिले सब प्रकारके ज्वरोंकी तरुणावस्थाकी साधारण चिकित्सा कहता हूँ, तदनन्तर वात आदि विशेष ज्वरोंकी विशेष २ चिकित्सा वर्णन करूँगा।

तरुणज्वर ( नये बुखार )में पहिले पहल लंघन कराना उचित है। क्योंकि-तुम्हें पहिले ही बता दिया गया है, कि-कुपित हुए वात-आदि दोष आमरसके साथ संयुक्त होकर अग्निको मन्द व बहिर्निक्षिप्त कर ज्वरको उत्पन्न करते हैं। अत एव ज्वर होने पर अग्नि मन्द होजाती है। अग्निके मन्द होनेके कारण भुक्त ( खाया हुआ ) आहार परिपाक नहीं होता, इसीसे नवज्वरमें लंघन ( फाका ) करना अत्यन्त आवश्यक है। लंघन गुण ये हैं-लंघनसे आमसंयुक्त दोषका परिपाक होता है, कोष्ठकी अग्नि अपने स्थानमें आजाती व बढ़ जाती है, भोजनमें इच्छा और रुचि उत्पन्न होती है, शरीर हलका होजाता है और ज्वर भी लघु व शान्तवेग होजाता है।

नवज्वरमें दिनमें सोना, स्नान करना, तेल आदिकी मालिस करना, मैथुन व क्रोध करना, खुले स्थानकी वायु शरीरमें लगाना, परिश्रम व कषाय ( कषेले रस वाली चीजें अथवा काढ़े ), सेवन न करना चाहिये। पंखा झलनेकी आवश्यकता होने पर शरीरमें गरम कपड़े उढ़ा कर पंखे आदिसे हवा करनी चाहिये, पर विशेष ध्यान रखना चाहिये कि-किसी तरह शरीरमें ठंडी वायुके झोंके न लगने पावें।

नव-ज्वरमें वात-आदि दोषोंका प्रकोप बहुत कम हो, तो लंघन कराना, और दोषोंका प्रकोप मध्यम हो, तो लंघन व पाचन, और दोषोंका प्रकोप बहुत अधिक हो, तो लंघन पाचनके अतिरिक्त वमन-विरेचन आदि शोधन क्रियायें भी करनी चाहियें। शोधन क्रियासे सारे दोष ( मलिन पदार्थ ) एक ही समय शरीरसे निकल जाते हैं। परन्तु सब ही स्थानों पर शोधन क्रिया नहीं करनी चाहिये। क्योंकि

वमन, विरेचन करानेके पहिले रोगीकी अवस्था व बलाबलका विचार करना आवश्यक होता है। बालक, वृद्ध, दुर्बल व गर्भवती स्त्री ये सब शोधनके योग्य नहीं होते, अर्थात् इनको वमन विरेचन करानेसे असमर्थ होनेके कारक उपकारके बदले अपकार होता है।

हम पहिले ही बता चुके हैं, कि-तरुण ज्वरमें कषाय ( काढ़ा ) न देना चाहिये। क्योंकि-ज्वरकी तरुण अवस्थामें अग्नि अत्यन्त दुर्बल और रसदुष्टि भी बहुत प्रबल होती है। इसीसे इस अवस्थामें कषाय देनेसे वह परिपाक नहीं होता। उसके अपरिपाकसे रसकी दुष्टि और भी बढ़ जाती है। अत एव कषायके प्रयोग करनेसे उपकारके बदले अपकार ही होता है। ज्वरकी तरुणावस्थामें जिससे अग्निका बल व रसका परिपाक हो, ऐसी औषधिका प्रयोग करना चाहिये।

प्रश्न-ज्वरकी तरुण अवस्था कितने दिन तक रहती है?

उत्तर-जितने दिन तक आमरसका परिपाक न हो, उतने दिन तक ही तरुणावस्था ( सामावस्था ) कही जाती है। रसका परिपाक साधारणतः सात दिनमें होजाता है, इसीसे ज्वरकी तरुणावस्था सात दिन तक कही जाती है। परन्तु यह रसकी न्यूनाधिक दुष्टि पर निर्भर करता है, अर्थात् यदि रसकी दुष्टि कम हुई, तो रसका परिपाक सात दिनमें होजाता है तथा रसकी दुष्टि अधिक होने पर रस-परिपाकमें १०। १२ दिन लग जाते हैं। इसीसे रसदुष्टिके प्रति दृष्टि रख कर कषाय आदि मुख्य औषधियाँ प्रयोग करना चाहिये।

प्रश्न-रसदुष्टिके लक्षण क्या हैं? और उसका परिपाक किस उपायसे होता है?

उत्तर-**रस दुष्टिके लक्षण**-मुखसे लार गिरना, वमन, हृदयकी अशुद्धि ( शरीरका भारीपन ), अरुचि, तन्द्रा, आलस्य, अपरिपाक, मुखकी विरसता; अधिकपेशाव आना, शरीरकी जड़ता, क्षुधा न होना और ज्वरका प्रबल वेग होता है।

रसदुष्टिके लक्षण कह दिये हैं, अब उसके परिपाकका उपाय

कहता हूँ, सुनो-लंघन रसके परिपाकका प्रधान उपाय है। लंघनसे अग्निकी वृद्धि होती है और रसका शीघ्र २ परिपाक होता है। इस लंघन कहनेसे निर्जल उपवास न समझना चाहिये, बल्कि मुख्य आहारको छोड़ कर शक्ति व रुचिके अनुसार खील, बतासा, मिश्री, साबूदाना, अरारोट व बार्ली आदि लघु ( हलका ) पथ्य थोड़ी मात्रामें देनेसे उपकार ही होता है, अपकार नहीं। यदि इस तरह करनेसे भी रसकी दुष्टि कम न हो, तो सोंठ व पीपलके साथ खीलोंकी पेया बना कर पिलाना चाहिये। **पेया बनानेकी विधि**—खीलोंको पानीमें पका कर उसमें थोड़ीसी सोंठ व पीपलका चूर्ण डाल कर उतार देना चाहिये। तदनन्तर उसको कपड़ेसे छान कर उसमें थोड़ासा मिश्री मिला कर पिलाना चाहिये। यह खीलोंकी पेया शीघ्र परिपाक होजाती है तथा इसकी ज्वरनाशक शक्ति भी अधिक है।

रोगीको प्यास लगने पर साधारणतः औटाया हुआ पानी शीतल कर सेवन कराना चाहिये। परन्तु यदि वायु वा कफका प्रकोप अधिक हो, तो औटाया हुआ जल ईषदुष्ण ( शील गरम ) रहने पर पिलाना आवश्यक है। यदि ज्वरका वेग अधिक हो, और प्यास भी अधिक लग रही हो, तो रोगीको निम्नोक्त षडङ्ग पानीय बना कर पिलाना चाहिये। **षडङ्ग पानीयकी विधि**—नागरमोथा, पित्तपापड़ा, खश, लालचन्दन, नेत्रबाला व सोंठ ये छै चीजें मिला कर दो तोले भर ( प्रत्येक चीज ४-४ माशे ) लेकर ४ सेर पानीमें मामूली जौ कूट कर पकाना २ सेर पानी बाकी रहने पर उतार कर छानके कोरी हाँडीमें रख कर ठंडा होने पर थोड़ा २ करके पिलाना चाहिये। इस षडङ्ग पानीयसे प्यास बुझ जाती है और ज्वरका वेग भी शान्त होजाता है।

यहाँ पर विशेष वक्तव्य यह है—कि यद्यपि एक सप्ताह तक अर्थात् रस परिपाक न होने पर्यन्त कषाय प्रयोग करनेकी विधि नहीं है। किन्तु महर्षि चरकने स्वरस, फाण्ट आदिका प्रयोग करनेका उपदेश

किया है। इस लिये तरुणज्वरमें कषाय न देकर उन्हीं औषधियोंका स्वरस फाण्ट आदि बना कर दिये जा सकते हैं।

प्रश्न—कषाय किसको कहते हैं? और स्वरस फाण्ट आदि किसको कहते हैं?

उत्तर—कषायका अर्थ क्वाथ है, यह दो प्रकारका होता है—जिससे रसका परिपाक हो, उसको पाचन कषाय, और जिससे दोषोंकी समता हो, उसको शमन-कषाय कहते हैं। किन्तु प्रचलित देश भाषा में इन दोनों प्रकारके कषायोंका नाम काढा या क्वाथ कहा जाता है। कषाय बनाना हो, तो उसमें जितने द्रव्य लिखे हों, वे सब द्रव्य साधारणतः दो तोला होना चाहिए। जैसे यदि दो द्रव्योंको क्वाथ बनाना हो, तो प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला, और तीन द्रव्योंका बनाना हो, तो प्रत्येक द्रव्य ८-८ माषा तथा चार द्रव्योंका कषाय बनाना है, तो प्रत्येक द्रव्य ६-६ माषा लेना चाहिए, अर्थात् जितने द्रव्योंका कषाय बनाना हो, उन सबका मिलित परिमाण २ तोला होना चाहिए। इस २ तोले द्रव्यको मोटा २ जौ कूट करके आध सेर (आयुर्वेद शास्त्रके अनुसार ६४ तोलेका १ सेर होता है) पानीमें पकाकर चौथाई (आध पाव) बाकी रहने पर उतार छानकर व्यवहार करना चाहिए। इसीको कषाय, क्वाथ व पाचन कहते हैं।

**स्वरस**—किसी भी ताजे गीले द्रव्यको बारीक कूट कर कपड़ेमें रखकर निचोड़ने पर उसमेंसे जो रस निकलता है, उसको स्वरस कहते हैं। यदि किसी द्रव्यसे इस साधारण-विधिसे रस न निकल सके, तो उस द्रव्यका आध सेर चूर्ण एक सेर जलमें एक रात दिन भिजोकर रखनेसे उसको कपड़ेमें निचोड़ कर जो रस निकलता है, उसको भी स्वरसकी जगह ग्रहण किया जा सकता है।

**कल्क**—कच्चा गीला द्रव्य या जल मिश्रित सूखे द्रव्यको सिलबट्टे से बारीक पीसनेसे तैय्यार होता है।

**फाण्ट**—किसी मिट्टी या काँच आदि के बर्त्तनमें ८ तोला मोटा

जो कूट किये द्रव्यको रखकर उसमें ऊपरसे आध सेर उबलता हुआ गरम पानी डालकर ढक्कन लगाकर १२ घण्टे तक उसी तरह भिगोकर रखनेके अनन्तर कपडछन कर जो रस निकलता है, उसको फाण्ट कहते हैं।

हिम व शीतकषाय—मोटे कुटे हुए ८ तोले द्रव्यको ४८ तोला पानीमें समस्त रात्री पर्यन्त ओस वाली खुली जगह पर भिगो रख कर दूसरे दिन प्रातःकाळ इसको छानकर जो रस निकलता है उसको शीत या हिम कषाय कहते हैं।

कषायकी अपेक्षा स्वरस, स्वरसकी अपेक्षा कल्क, कल्क अपेक्षा फाण्ट और फाण्ट अपेक्षा शीत कषाय लघु होता है। रोगीके अग्निबल का विचार कर कषाय आदि की व्यवस्था करना चाहिए।

प्रश्न—जब कि-तरुण ज्वरमें ही आमदुष्टि प्रबल रहती है, तब यदि उस तरुण ज्वरमें आमरसके पाकके लिए पाचन कषाय प्रयोग नहीं किये जाते, तब ज्वरकी किस अवस्थामें वे प्रयोग किये जाते हैं?

उत्तर—तरुण ज्वरमें अग्नि अति दुर्बल होती है, इसीसे कषाय प्रयोग नहीं किये जाते। परन्तु जिन द्रव्योंका कषाय प्रयोग करना हो, उनका कषाय न बनाकर पानीय व स्वरस आदि देनेसे वे निर्दोष होते हैं। इस लिए रोगीका अग्निबल विचार कर पाचन कषायमें कहे हुए द्रव्योंका स्वरस, कल्क, फाण्ट व शीत कषाय बनाकर थोड़ी २ मात्रामें दिनमें २।३ बार दिया जा सकता है इसी तरह एक सप्ताह व्यतीत होने पर भी यदि रसका अच्छी तरहसे परिपाक न हुआ हो, तब उस समय पाचन कषाय प्रयोग करना चाहिए। पित्तज्वरमें एक सप्ताहके भीतर भी पाचन कषाय प्रयोग किया जा सकता है। इस प्रकारकी चिकित्सा से जब तक रसका अच्छी तरहसे परिपाक न हो जावे, तब तक वात-आदि दोष व ज्वरके प्रशमके लिए शमनकषाय प्रयोग करना चाहिए परन्तु यहाँ पर यह विशेष बात भी ध्यानमें रखनी चाहिए कि-यदि रोग शीघ्र विपज्जनक हो, तब समय असमय आदिका कुछभी विचार

न कर जो कोई पाचन या औषधि उस समयके उपयोगी हो, उसकी व्यवस्था कर देनी चाहिए।

प्रश्न—अच्छा अब जिज्ञासा है, कि-क्या आरम्भसे लेकर अन्त तक ज्वरकी कषाय पाचन द्वारा ही चिकित्सा की जाती है?

उत्तर—नहीं यह बात नहीं है, कि-केवल पाचन आदि से ही ज्वरकी चिकित्सा की जाती हो, बल्कि रस घटित औषधियों द्वारा भी ज्वरकी चिकित्सा की जाती है। शास्त्रोंमें लिखा है कि-समस्त चिकित्सा शास्त्रके मर्मका ज्ञान होने पर भी रस-चिकित्साने अनभिज्ञ रहनेसे धर्महीन पुरोहितोंकी तरह चिकित्सकको उपहासास्पद होना पड़ता है। क्योंकि-पाचन चिकित्साकी तरह रस-चिकित्सामें रसकी पक्व, अपक्वता, वात-आदि दोषोंका भेद, रोग, रोगी और देश काल का विशेष विचार नहीं करना पड़ता, बल्कि सब रोगोंकी सब अवस्थाओंमें ही रसौषधि प्रयोग की जा सकती है।

प्रश्न—गुरुवर! तब तो सब चिकित्साओंमें रस चिकित्सा ही प्रधान मालूम होती है? अतः आप मुझे इस चिकित्साका ही उपदेश क्यों नहीं देते?

उत्तर—हम तुम्हें पाचन-चिकित्सा व रस-चिकित्सा दोनोंका ही उपदेश करेंगे, क्योंकि-केवल पाचन व केवल रस चिकित्साके करनेसे जितने समयमें जितना फल मिलता है, इन दोनोंको मिला कर चिकित्सा करनेसे अर्थात्-पाचन आदि प्रयोगोंके २।३ घण्टे बाद व पहिले उस अवस्थाके उचित रसघटित औषधियोंके सेवन करानेसे उससे कम समयमें बहुत अच्छा फल प्राप्त किया जा सकता है, दूसरी बात-पाचन चिकित्सामें बहुतसे नियमोंके बन्धनमें पड़ना पड़ता है, यह बात ठीक है, परन्तु जिस तरह पर काष्ठ औषधियोंका विविध प्रक्रियाओं ( कषाय, कल्क आदि विधियों ) से प्रयोग कर सहजमें ही अभीष्टफल प्राप्त किया जा सकता है, रस-घटित औषधियोंसे ऐसा नहीं होता। काष्ठ औषधियाँ कषाय बनाकर प्रयोग की जाती हैं, चूर्ण

बनाकर प्रयोग की जाती हैं, प्रलेप आदि के रूपमें प्रयोग की जाती हैं, अरिष्ट आसव व मोदक आदि बनाकर प्रयोग की जाती हैं और काष्ठ औषधियोंसे घी, तेल आदि स्नेह पकाकर वह स्नेह प्रयोग किया जा सकता है। इसी लिये चरक, सुश्रुत व वाग्भट्ट आदि महर्षि-गणोंने काष्ठ औषधियोंको अवलम्बन कर सब रोगोंकी चिकित्साका उपदेश दिया है। इस लिये हम भी पाचन चिकित्साको ही प्रधान करके तुम्हें सब रोगोंकी चिकित्साका उपदेश करेंगे, अर्थात् पहिले पाचन आदि का वर्णन कर तदनन्तर रसादि औषधियोंका उपदेश देंगे।

प्रश्न—रस किसको कहते हैं ?

उत्तर—रस शब्दका अर्थ पारद है, परन्तु यहाँ पर रस शब्दसे पारद न समझना चाहिए, बलिक पारद व गन्धक आदि जितने रस व उपरस और सोना, चाँदी, लोहा, अभ्रक व वङ्ग आदि जितने धातु व उपधातु हैं, इन सबको समझना चाहिए। इन सब रस आदि पदार्थोंसे जो चिकित्सा की जाती है, उसको ही रस चिकित्सा कहते हैं।

प्रश्न—एक सप्ताहके अनन्तर रस पाकके लिए कौन २ से कषाय प्रयोग करना चाहिए ?

उत्तर-( १ )धान्य पटोल कषाय—धनियाँ १ तोला व सूखा पटोलपत्र १ तोलेको आध सेर पानीमें पकाकर आध सेर शेष रहने पर उतार छान कर, इस कषायको पीनेसे सब ज्वरोंमें ही आम दोषके परिपाकके लिए व्यवहार किया जाता है। यह कफनाशक, वायु व पित्तका अनुलोमक अर्थात् अधोनिःसारक ( नीचेकी तरफ ढकेलने वाला ), आमदोषका पाचक व कफनाशक है।

( २ ) पंचमूली कषाय—वात ज्वरमें आमदोषके पाचनके लिए बेलकी छाल, सोनापाठाकी छाल, खंभारीकी छाल, पाढल व अरणि की छाल सब मिलित २ तोलेको आध सेर पानीमें पकाकर आधपाव शेष रहने पर उतार छानकर इस क्वाथको प्रयोग करना चाहिए।

( ३ ) मुस्तकादि कषाय -नागरमोथा, कुटकी व इन्द्रजौ इनका कषाय पूर्वोक्त विधिसे पकाकर १ तोला शहद मिलाकर सेवन कराने से पित्तज्वरमें आमदोषका परिपाक होता है।

( ४ ) पिप्पल्यादि कषाय-पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ, कालीमिर्च, छोटी इलायची, अजवायन, इन्द्रजौ, पाठा, रेणुक, जीरा, भारंगी, बकायनके फल, हींग, कुटकी, सरसों, वायविडंग, अतीस वा मूर्वाकी जड़ कफ ज्वरमें रस पाकके लिए इन औषधियोंका कषाय प्रयोग करना चाहिए।

द्विदोषज और त्रिदोषज ज्वरोंमें इन कषायोंको दोषानुसार मिलाकर प्रयोग करना चाहिए ( जैसे-वातपैत्तिक ज्वरमें पंचमूली व मुस्तादि कषायमें कई कुछ द्रव्योंको मिलाकर देना )। अग्निबलका विचार करके समस्त पाचन कषायोंको दिनमें २। ३ व ४ बार तक देना चाहिए।

यहाँ पर प्रसंगवश एक और विचारणीय बात है-कोष्ठमें यदि पक्व-मल विबद्ध ( रुका हुआ ) हो, तो समय असमयका विचार न करके विरेचन ( जुल्लाव ) प्रयोग करना चाहिए। विरेचनके लिए-आधी छटाँक शुद्ध एरण्डतैल गरम पानीमें डालकर पिलाना चाहिए अथवा निशोथका चूर्ण आधा तोला वा १ तोला समान भाग चीनी मिलाकर गरम पानीके साथ देना चाहिए। विरेचनकी बहुत सी औषधियाँ हैं, परन्तु उन सबमेंसे एरण्डका तेल व निशोथ ये दोनों निर्दोष विरेचन की औषधियाँ हैं। रोगीके कोष्ठका विचार कर विरेचन द्रव्य की मात्रा निश्चित करना चाहिए। क्योंकि मृदुकोष्ठ व्यक्तिको बहुत थोड़ी मात्रासे ही अधिक विरेचन होजाते हैं, और इसी तरह पर क्रूर-कोष्ठ व्यक्तिको अधिक मात्रामें देनेसे भी यत् सामान्य दस्त उतरता है अथवा कभी २ उतरता भी नहीं। इसलिए विरेचन द्रव्यकी मात्रा बहुत विचारके साथ स्थिर करनी चाहिये।

प्रश्न-रसपाकके लक्षण क्या हैं ?

उत्तर-थोड़ा २ करके क्षुधा होना, शरीरका कुछ हलकापन, ज्वरका

वेग हलका पड़ना और वायु, पित्त, कफ व मलका निकलना ये रस-पाकके लक्षण हैं।

प्रश्न—रसके अच्छी तरहसे परिपाक होनेके अनन्तर वात आदि दोषोंकी समता और ज्वरके प्रशमके लिये कौन २ से शमनकषाय प्रयोग किये जाते हैं?

उत्तर—वात आदि प्रत्येक ज्वरमें दोषोंके प्रशमके लिए जो जो शमन-कषाय प्रयोग करने चाहियें और जिस २ विधिसे उन ज्वरोंकी चिकित्सा करना चाहिए, वह सब पृथक् २ कहते हैं, सुनो—

## वातज्वर की चिकित्सा

वातज्वरमें यदि हाथ पाँव व मस्तकमें दर्द हो, तो **पिप्पल्यादि कषाय**—पीपल, अनन्तमूल, मुनक्कादाख, गिलोय व रेणुक ( सम्हालू के बीज ) कषाय बनानेकी विधिसे इनका काढ़ा बनाकर ४ माशा गुड़ मिलाकर पिलाना चाहिए, अथवा **शतपुष्पादिकषाय**—सोयेके बीज, वच, कूट, देवदारु, रेणुक, धनिया, खश व नागरमोथा इन सब चीजों के काढ़ेमें २ माशा खांड व २ माशा शहद मिलाकर पिलाना चाहिए।

यदि ज्वरका वेग अधिक हो और हाथ, पैर कमर व मस्तकमें अधिक वेदना हो तथा ज्वर आनेके समय अधिक कम्प हो, तो, **पञ्च-मूल्यादि कषाय**—बेल, सोनापाठा, खम्भारी पाढल व अरणीकी छाल तथा खरेटी, रायसन, कुलथी व कूठ इन नौ द्रव्योंका क्वाथ बना कर उसमें शहद मिलाकर पिलाना चाहिए।

**कम्पके निवारणके लिए**—हाथ व पैरके तलवे, बगल व पस-लियोंमें कपड़ेकी पोटली व लोगड़ गरम कर सेकना चाहिए, अथवा एक बोतलमें गरम पानी भर कर उसका मुँह मजबूत डाटसे बन्द कर इससे सेकना चाहिये।

वातज्वरमें यदि पित्तका अनुबन्ध हो—अर्थात् हाथ पैर व आँखोंमें जलन, वमन व दिल मिचलाना होता हो, तब **"किरातादि कषाय"**-

चिरायता, नागरमोथा, गिलोय, नेत्रवाला, बड़ीकटेली, छोटीकटेली, गोखरू, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी व सोंठ इनका काढा शहद मिला कर सेवन कराना चाहिये।

यदि कफका अनुबन्ध हो-अर्थात् सर्दी, खाँसी व तन्द्रा आदि लक्षण दिखाई दें; तब "रास्नादि कषाय"-रायसन, बाँदा, देवदार, सरलधूप व पलुवा इनका कषाय पुराना गुड़ मिला कर सेवन कराना चाहिये।

वातज्वरमें यदि पित्त व कफ इन दोनोंका अनुबन्ध हो, तब इस "रास्नादि कषाय" में ४ माशा खांड व ४ माशा शहद मिलाकर सेवन कराना चाहिये।

वातज्वरमें मलबद्धता ( कब्ज ) हो, तब "आरग्वधादिकषाय"-अमलतास, पीपलामूल, नागरमोथा, कुटकी व हरड़ इनका क्वाथ सेवन कराना लाभ दायक है। इसके सेवनसे आमदोष व उदरशूल ( पेटका दर्द ) आदि उपद्रव निवारित होते हैं और अग्नि प्रदीप्त होती है।

केवल सामान्य वातज्वरमें शतावर व गिलोयका रस समान भाग लेकर उसमें थोड़ासा पुराना गुड़ मिला कर उपयुक्त मात्रामें सेवन करनेसे वातज्वर शीघ्र ही आरोग्य होजाता है।

## पित्तज्वर चिकित्सा।

पित्तज्वरमें "पर्पटादि कषाय"-पित्तपापड़ा, लालचन्दन, नेत्रवाला, व सोंठ इनका क्वाथ अधिक उपयोगी है।

यदि पित्तज्वरमें वमन, प्यास व शरीरमें दाह हो, तब "ह्रीबेरादि कषाय"-नेत्रवाला लालचन्दन, खश, नागरमोथा व पित्तपापड़ा इनका काढा बना कर उसके शीतल होजाने पर उसमें शहद मिला कर पिलाना चाहिये।

पटोलपत्र व यव ( जौ ) समान भाग लेकर काढा बनाना, इस काढ़ेमें अधिक परिमाणमें शहद मिला कर सेवन करानेसे भी तीव्र पित्तज्वर और उपसर्ग दाह व तृष्णा आदि प्रशमित होते हैं।

पित्तज्वरमें यदि पतले दस्त आते हों तो-आमके व जामुनके कच्चे पत्ते, बड़के अंकुर व खश इनका फाण्ट बना, शहद मिला कर सेवन करानेसे विशेष उपकार होता है।

यदि पित्तज्वरमें मुखका सूखना, वमन व दिलका मिचलाना, अरुचि, कास, श्वास, अन्तर्दाह, प्रलाप, मूर्छा, प्यास व गात्रघूर्णन (चक्कर आना) हो, तब-"द्राक्षादि कषाय"-मुनक्का, लालचन्दन, कमल की जड़, नागरमोथा, कुटकी, गिलोय, आमले, नेत्रवाला, खश, लोध, इन्द्रजौ, पित्तपापड़ा, फालसा, फूलप्रियंगु, धमासा, अडूसा, मुलेठी, तेंदु, चिरायता व धनिया इनका काढा बना कर देना चाहिये।

यहाँ पर विशेष ध्यान देने योग्य एक बात यह है-कि-यदि रोगी ज्वरसे अति सन्तप्त हो अर्थात् मस्तक अधिक गरम, मस्तकमें खूनके बढ़ जानेसे भारीपन व आँखें लाल हों और रोगी बकवास कर रहा हो, तब ऐसे समयमें डाक्टर लोग शिरके बालोंको मुंडा कर उसके ऊपर शीतल जलकी पट्टी व बरफका प्रयोग कर देते हैं, हम भी इस मतके विरोधी नहीं हैं। क्योंकि-पित्तज्वरसे रोगी अधिक सन्तप्त हो, तो आयुर्वेद शास्त्रमें रोगीको शीतल क्रिया करनेका विधान है, किन्तु कफ का सम्बन्ध रहने पर ऐसा करना निषिद्ध है, ऐसे स्थान पर शीतल जलका प्रयोग करना क्यों वर्जित है? यह एक दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट किये देते हैं-तुमने कभी कुम्हारको घड़े आदि मिट्टीके बर्तनोंको पकाते हुए देखा होगा, वह जब इन बर्त्तनोंको पकाता है, तब उस समय "पेड़"के चारों तरफ कर्दम (कीचड़) आदिसे उसको अच्छी तरहसे लेप देता है। उसका ऐसा करनेका मतलब यह है-कि-"पेड़" के भीतरकी अग्नि शीतल कर्दम आदिको पार कर बाहर न आसके, किन्तु इस शीतलता की आड़से भीतर ही रह कर वह अपनी क्रियाको भीतरके स्तरमें पूर्ण रूपसे कर सके। इसीसे इस क्रिया द्वारा घड़े आदि पदार्थ अच्छी तरह से परिपक्व होते हैं। इसी तरह पर पित्तज्वरमें भी यदि कफका सम्बन्ध रहे और बाहरसे शीतल जल आदिका प्रयोग कर भीतरी पित्तकी

ऊष्माको बाहर न निकलने देकर भीतर ही रह कर उसको अपना कार्य करते रहने दिया जाय, तो इस अवस्थामें शीतल जल आदिके प्रयोगसे पित्तकी ऊष्माका ह्रास न होकर वृद्धि ही होगी। इसी लिये ऐसे स्थान पर जिससे पित्तके अविरोधी कफका ह्रास हो ऐसे लेप आदिका प्रयोग करना उचित होता है।

## कफ-ज्वरकी चिकित्सा।

कफ ज्वरमें "सप्तच्छदादि कषाय"-सतोना, नीमकी छाल, व तेन्दुकी छालका क्वाथ बनाकर पीनेसे कफका प्रकोप व कफ ज्वर को शान्ति होती है।

"कटुत्रिकादिकषाय"-सोंठ, मिर्च. पीपल, नागकेशर, हल्दी, कुटकी व इन्द्र जौका काढा बनाकर सेवन करनेसे कफज्वरका शमन होता है।

कफ ज्वरमें यदि श्लेष्मा; खाँसी, शरीरमें दर्द व अग्निमान्द्य प्रभृति उपद्रव हों, तो-"निदिग्धिकादि कषाय"-कटेली, गिलोय, सोंठ, पीपलका काढा प्रयोग करना चाहिए, यह बहुत उपयोगी प्रयोग है।

अतिप्रबल कफ ज्वरमें "पिप्पल्यादि कषाय" अधिक लाभ दायक है। इसके सेवनसे आमदोषका परिपाक होता है, अग्निप्रदीप्त होती है और सर्दी कास व वेदना आदि सब उपसर्ग आराम हो जाते हैं। यह प्रयोग पहिले कफ ज्वरमें रसपाकके लिए लिखा गया है।

कफ ज्वरमें यदि जंघाओंमें कमजोरी व श्रवणशक्ति कमजोर हो गई हो, तो "सिन्धुवार पत्र कषाय"-सम्हालूके पत्तोंका काढा बनाकर पीछेसे पीपलका चूर्ण डाल कर सेवन करना चाहिए।

कफ ज्वरमें यदि प्रबल खाँसी हो, तो "वासादि कषाय"-अडूसेकी छाल, कटेली व गिलोय इनका काढा शहद मिलाकर सेवन कराना चाहिए।

कफ ज्वरमें कास, श्वास व हिक्की हो, तो-पीपलके चूर्णको शहद

में मिलाकर चटाना चाहिए। यह चटनी छोटे बच्चोंके लिये विशेष लाभदायक है।

## वात-पित्तज्वर चिकित्सा।

इस ज्वरमें "किरातादि कषाय"-चिरायता, गिलोय, मुनक्का, आमला, पीपल, सोंठ व कचूर इनका काढा गुड़ मिलाकर सेवन कराने से पित्तका प्रशम व ज्वरका नाश होता है।

वातपित्तज्वर में "मुस्तादिकषाय"-नागरमोथा, पित्तपापड़ा, नीलोफर, चिरायता, खश व लाल चन्दनका काढा सेवन कराना चाहिए। यह अति प्रभावशाली औषधि है।

"पंचभद्र-कषाय"-गिलोय, नागरमोथा, पित्तपापड़ा, चिरायता व सोंठ इन पाँच द्रव्योंका काढा सेवन करनेसे वातपित्त ज्वरमें उपकार होता है।

"रास्नादि कषाय"रायसन, अडूसेकी छाल, हरड़, बहेड़ा, आमला व अमलतास इनका काढा सेवन करानेसे वातपित्तका प्रशम, कोष्ठकी शुद्धि व ज्वरकी शान्ति होती है।

## पित्त श्लेष्म ज्वर चिकित्सा।

यदि पित्त-कफ ज्वरमें अरुचि व वमन आदि उपद्रव हों, तो- "पटोलादि कषाय"—पटोल पत्र, लाल चन्दन, मूर्वाकी जड़, कुटकी, पाठा व गिलोयका काढा सेवन कराना चाहिए।

यदि पित्त कफ ज्वरमें दाह, तृष्णा, अरुचि, कास, वमन व पार्श्व वेदना हो, तो "कण्टकार्यादि कषाय"-कटेल, गिलोय, भारंगी, सोंठ, इन्द्र जौ, धमासा, चिरायता, लाल चन्दन, नागरमोथा, पटोल-पत्र व कुटकी इनका काढा सेवन करानेसे विशेष उपकार होता है।

पित्तकफ ज्वरमें यदि वमन, मिचलाहट, प्यास, दाह व अरुचि हो, तो-"अमृताष्टक कषाय"-गिलोय, इन्द्र जौ, नीमकी छाल,

पटोलपत्र, कुटकी, सोंठ, लाल चन्दन व नागरमोथा इनका काढा प्रयोग करना चाहिए।

यदि इस ज्वरमें रक्तपित्तका प्रकोप व कामला ( कमल वायु ) आदि उपद्रव हों, तो पत्र, पुष्प, फल, जड़ व पत्ते समेत अडूसेका स्वरस निकाल कर शहद मिलाके सेवन करानेसे विशेष लाभ होता है।

## वात-श्लेष्म ज्वर चिकित्सा।

एक दोषज ज्वरोंकी अपेक्षा द्विदोषज ज्वर कष्टसाध्य वा कठिन होते हैं। द्विदोषज ज्वरोंमें भी वातश्लेष्म ज्वर अति कठिन साध्य होता है। इसके लक्षण प्रबल होने पर रोगी विकार ( सरसाम ) में आ जाता है और उसको वातश्लेष्म विकार कहा जाता है। सब द्विदोषज व त्रिदोषज ज्वरोंके ही प्रबल लक्षण युक्त होने पर साधारणतः उन्हें बोल चालमें वायुमें आना व सरसाम नामसे कहा जाता है। इन ज्वर विकारोंमेंसे वातश्लेष्म विकार व सन्निपात ज्वर विकार, अति भयानक होते हैं।

वात-कफ ज्वरमें यदि पर्वस्थान ( अंगुलियोंके जोड़ों ) में टूटने का सा दर्द, शिरोवेदना, कास व अरुचि हो, तो—**'निंबादि कषाय'**-नीमकी छाल, गिलोय, सोंठ, देवदारु, कायफल, कुटकी व बच इनका काढा शहद मिला कर सेवन कराना चाहिए।

इस ज्वरमें यदि अपच, अतिनिद्रा, पार्श्ववेदना और कास व श्वास हो, तो—**"दशमूल कषाय"**—बेल, सोंठ, खम्भारी, पाढल व अरणिकी छाल, शालपर्णी, पृष्टपर्णी, बड़ी कटेली, छोटी कटेली, व गोखरू इनका काढा पीपलका चूर्ण व शहद मिलाकर सेवन करानेसे विशेष लाभ होता है। यह इस स्वभावमें अन्य रोगोंमें भी अति उत्कृष्ट व प्रत्यक्षफलप्रद औषधि है।

यदि वातकफ ज्वरमें हिक्का, शोष, गलेका बैठना, कास, श्वास व मुखप्रसेक ( मुखसे लार गिरना ) आदि लक्षण हों तो—"दार्व्यादि

कषाय"–देवदारु, पित्तपापड़ा भारङ्गी, नागरमोथा, वच, धनिया, कायफल, हरड़ सोंठ व करञ्जवाका काढा हींग व शहद मिला कर सेवन कराना चाहिए।

वात-श्लेष्म ज्वरमें–"पंचकोल कषाय"–पीपल, पीपलामूल, चव, चीता व सोंठ इनका काढा भी विशेष लाभदायक होता है।

इस ज्वरमें रूक्षस्वेद-प्रयोग करना चाहिये। स्वेदसे शरीरके सारे स्रोत अर्थात् रस, रक्त आदिका गमन मार्ग कोमल होता है और कोष्ठकी अग्नि अपने स्थानमें आजाती है तथा वायु व कफकी स्तब्धता विनष्ट होजाती है और ज्वर भी शान्त होजाता है।

रूक्षस्वेद अनेक प्रकारका होता है, जैसे-गरम २ बालुका स्वेद, हाथोंके तलवे गरम कर सेकना, कपड़ेकी पोटली व रबड़ गरम करके उससे सेकना, बाष्पस्वेद ( भपारेका सेक ), गरम पानीमें फुलालैनका टुकड़ा भिगो कर तथा उसको अच्छी तरहसे निचोड़ कर उससे सेकना और बोतलमें गरम पानी भर कर उससे सेकना आदि।

वातकफ ज्वरमें बालुका स्वेद सबसे उत्तम लाभदायक स्वेद है।

**वालुका स्वेद देनेकी विधि**–एक ठिकरेमें बालुको रखके उसको आग पर अच्छी तरह भून कर गरम कर लेना चाहिये, फिर एक कपड़ेके टुकड़ेमें एरण्डके वा आँकके अथवा पानके पत्ते बिछा कर उनके ऊपर यह गरमागरम बालु डाल कर कपड़ेकी पोटली बाँध कर इस पोटलीको काँजीमें भिगो कर उससे सारे शरीर या जहाँ २ दर्द हो सेकना चाहिये। अण्डकोष, हृदय व आँखके ऊपर साधारणतः किसी तरहका भी स्वेद न देना चाहिये। इस सेकसे शरीरकी स्तब्धता, शीत, वेदना व शरीरका भारीपन दूर होने पर स्वेद देना बन्द कर देना चाहिये। वातिक, श्लैष्मिक, वात-श्लैष्मिक, सन्निपात व आमज्वरमें शरीरकी स्तब्धता व वेदनाके निवारणके लिये स्वेदका प्रयोग करना विशेष हितकर है।

**विशेष चिकित्सा विधि**–वातश्लेष्म ज्वरकी प्रबल अवस्थामें

अर्थात् गलेमें कफके रुकने पर, जबान रुक जाने पर, रोगीके तन्द्रामें अचेतन रहने पर वक्षस्थल ( छाती ) व दोनों पार्श्वोंमें गेहूँकी भूसी ( चोकर ) की पुटलिस पका कर बाँधना चाहिये अथवा पुराना घी आँच पर गरम करके उसमें आँकके पत्ते अथवा पानके पत्ते डुबो कर उससे छाती व दोनों पार्श्वोंमें सेक देना चाहिये। ऐसी अवस्थामें स्वेद देनेमें कुछ भी भय न करना चाहिये क्योंकि-छातीमें एकत्र हुए कफके अग्निके सन्तापसे तरल होकर बाहर न निकाल देनेसे उससे श्वास रुक कर शीघ्र ही भयानक विपत्ति होनेकी सम्भावना रहती है। यदि इस कामके लिये अधिक दिनका पुराना घी न मिल सके, तो कमसे कम एक वर्षका पुराना होने पर भी काम चल सकता है। वातश्लेष्म-विकार व सन्निपात-विकारकी प्रबल अवस्थामें स्वेद ही सबसे उत्तम औषधि है। अत एव ऐसी अवस्थामें विचारपूर्वक विविध प्रकारके स्वेदोंकी कल्पना कर व्यवस्था करना चाहिये।

## त्रिदोष वा सन्निपात ज्वरकी चिकित्सा।

सन्निपात ज्वरकी प्रथम अवस्थामें लंघन, बालुका स्वेद, नस्य, निष्ठीवन, अवलेह व अंजन प्रयोग करना चाहिए। नीचे लंघन आदि का विवरण लिखा जाता है, सुनो—

**लंघन**—जब तक आरोग्यताके लक्षण न दीखें, तब तक लंघन कराना हितकर होता है, क्योंकि-जब तक दोषोंकी शक्ति होती है, तब तक ही लंघन सहन हो सकता है, दोषोंके क्षय होने पर फिर उपवास सह्य नहीं होता।

**स्वेद**—स्वेद करनेके विना साधारणतः सन्निपात ज्वर प्रशमित नहीं होता। अत एव इस ज्वरमें बारम्बार स्वेद प्रयोग करना चाहिए सन्निपातमें रोगीका शरीर जलके समान तरल होता है, इसीसे अग्नि क्रियाके विना और कोई क्रिया उस तरलताको शोषण नहीं कर सकती यद्यपि सन्निपात ज्वरकी सविष व निर्विष बहुतसी औषधियाँ हैं,

तथापि स्वेद द्वारा अग्नि-क्रियाके विना सन्निपात क्षेत्रमें वे औषधियाँ किसी तरह भी अपना २ प्रभाव दिखानेमें समर्थ नहीं हो सकतीं। विविध प्रकारका प्रतीकार-उपाय करने पर भी यदि रोगी सचेत न हो, तो उसके पैरके तलवे व ललाटमें आंच पर लोहेकी सलाईको लाल होनेके पर्यन्त गरम कर उससे दग्ध करनेसे रोगी सचेत हो जाता है। पूर्वकालमें स्वेद प्रदान की बहुत सी विधियाँ प्रचलित थीं, उनके प्रयोग से जो विशेष लाभ होता था, उससे अब भी बहुतसी घरकी बुढ़ियाँ अबतक भी परिचित होंगी। उस समय स्वेदका प्रयोग करनेसे सहज में ही सम्पूर्ण कफ नष्ट होजाता था रसका परिपाक होता था, अग्नि अपने स्थानमें आजाती थी शरीर हलका हो जाता था और ज्वरका वेग भी कम हो जाता था। स्वेदसे रोगीके एकबार ज्वरसे मुक्त होने पर वह पुनर्बार इस समयकी तरह ज्वरसे आक्रान्त नहीं होता था। उस समय ज्वर छूटनेके बाद जिस प्रकार अग्निकी दीप्ति, आहारमें रुचि और दिन २ शरीरकी पुष्टि होती थी, आजकल ज्वरमुक्त रोगीका उससे सौवाँ भाग भी नहीं होता। इस लिए ऐसी अवस्थामें स्वेद अवश्य प्रयोग करना चाहिए।

**नस्य**-सेंधानमक, सहजनेके बीज, सुफेद सरसों व कूठ इन सब द्रव्योंको समान भाग लेकर बकरीके मूत्रमें पीसकर इसका नस्य लेने से रोगीकी तन्द्रा दूर हो जाती है। **दूसरा प्रयोग**-महुवेके फलोंकी मींग, सेंधानमक, बच, काली मिर्च व पीपल समान भाग लेकर इनको जलसे पीसकर नस्य लेनेसे रोगी तन्द्रासे उठकर सचेत हो जाता है। **तीसरा प्रयोग**-पीपल, पीपलामूल, सेंधानमक व महुवेके फलोंकी मींग इन प्रत्येकका चूर्ण समान भाग और सबके बराबर काली मिर्च का चूर्ण नीम गरम पानीसे पीसकर नस्य देनेसे रोगीको चैतन्य लाभ हो जाता है और उसकी तन्द्रा प्रलाप व मस्तकका भारीपन निवारित होता है। **चौथा प्रयोग**-लहसुन व कालीमिर्च समान भाग महीन पीसकर कपड़ेकी पोटलीमें बाँध कर उसके रसका नस्य देनेसे कफ

विनष्ट होकर चैतन्य हो जाता है। **पंचम प्रयोग**—काली मुरगीके अंडेका तरल भाग सेवन करनेके अथवा नस्य लेनेसे या आँखोंमें आँजनेसे सन्निपात ज्वरमें विशेष लाभ होता है। **षष्ठ प्रयोग**—सेंधानमक सौंचलनमक व विड्नमकको निम्बुके रसमें व अद्रकके रसमें पीसकर और आँच पर गरम कर इसका नस्य लेनेसे अत्यंत गाढा कफ भी तरल होकर निकल जाता है और मस्तक व हृदयका भार तथा पसलियोंका दर्द आराम हो जाता है।

**निष्ठीवन**—सेंधानमक व त्रिकटु ( सोंठ, मिर्च, पीपल )को अद्रकके रसमें पीस कर उसको वारम्वार आकण्ठ ( गले तक ) मुखमें रखे और पुनः पुनः निष्ठीवन करे ( थूके )। इस क्रियासे रोगीके हृदय, पार्श्व, मस्तक व गलेसे चिपका हुआ व शुष्क हुआ कफ भी तरल होकर निकल आता है। इससे शरीर हलका हो जाता है और पसलियोंका दर्द, ज्वर, मूर्छा, निद्रा, कास, गलेका रुकना, मुख व आँखोंका भारीपन, शरीरकी जड़ता व वमनभाव ( मतलाई ) शान्त हो जाता है। दोषका बलावल विचार कर दिनमें दो वार, तीन वार व चार वार तक भी यह निष्ठीवन क्रिया कराई जा सकती है। यह सन्निपातकी सबसे उत्तम औषधि है।

**अवलेह ( चटनी )** ( अष्टाङ्गावलेह )-कायफल, कुठ, काकडासिंगी, सोंठ, पीपल, मिर्च, धमासा व कालाजीरा इन आठ द्रव्यों का चूर्ण समान भाग लेकर शहदमें मिला कर चटनी बनाकर रखना चाहिए। इसके चटानेसे दारुण सन्निपात, हिक्का, श्वास, कास व कण्ठरोधका निवारण होता है। ऊर्द्धगत कफके हरणके लिए स्वेद आदि उष्ण क्रियायें करना आवश्यक होने पर इसको शहदमें न चटा कर अद्रकके रसके साथ चटाना चाहिए, क्योंकि-उष्ण क्रियायें और शहद परस्पर विरोधी होते हैं।

**अञ्जन**—शिरसके बीज, पीपल, मिरच, सेंधानमक, लहसुन, मनशिल व वच इन सब द्रव्योंको गोमूत्रमें पीसकर अंजन करानेसे तन्द्रा प्रशमित होती है।

सन्निपात ज्वरमें कास, श्वास, पार्श्ववेदना, कण्ठ व हृदयमें वेदना व तन्द्रा होने पर श्लेष्मज्वरमें कहा हुआ 'दशमूलका काढा' प्रयोग करना चाहिए।

सन्निपात ज्वर यदि वात कफका प्रकोप अधिक हो, तो "चतुर्दशाङ्ग पाचन"–पूर्वोक्त दशमूलकी दशों चीजें और चिरायता, नागरमोथा, गिलोय व सोंठ इन चौदह द्रव्योंका काढा बनाकर पिलाना चाहिए।

यदि विरेचन कराना आवश्यक हो, तो इस काढ़ेके साथ निशोथ का चूर्ण ३-६ माशा तक मिलाकर प्रयोग करना चाहिए।

यदि सन्निपात ज्वर अति प्रबल हो और उसमें कास, श्वास, छातीमें दर्द, हिक्का व वमन आदि उपद्रव हों, तो "अष्टादशांग पाचन"–दशमूलकी दशचीजें और कचूर काकड़ासिंगी, कूठ, धमासा, भारंगी, इन्द्रजौ, पटोलपत्र व कुटकी इन १८ चीजोंका काढ़ा बना कर पीनेको देना चाहिये। यह सब कषाय वात कफ ज्वरमें भी प्रयोग किये जा सकते हैं।

सन्निपात ज्वरमें अभिन्यासका लक्षण उपस्थित होने पर "कारव्यादि पाचन"–कालाजीरा, कूठ, एरण्डकी जड़, त्रायमाण, सोंठ, गिलोय, दशमूल (पहिले कही हुई बेल आदि दश चीजें), कचूर, काकड़ासिंगी, धमासा, भारंगी व पुनर्नवा इन सब द्रव्योंको २ तोला परिमाणमें लेकर तथा आधसेर गोमूत्रमें पका कर आधपाव बाकी रहने पर उतार छान कर रखना चाहिये। इस काढ़ेको २-३ घण्टेके अनन्तर आधी २ छटांक मात्रामें सेवन कराना चाहिये। इससे सब स्रोतोंकी शुद्धि व अभिन्यास ज्वरका प्रशम होता है।

अभिन्यास ज्वरमें "शृङ्ग्यादि कषाय"–भी विशेष उपकारी होता है, यथा–काकड़ासिंगी, भारंगी, हरड़, कालाजीरा, पीपल, चिरायता, पित्तपापड़ा, देवदारु, बच, कूठ, धमासा, कायफल, सोंठ, नागरमोथा, धनिया, कुटकी, इन्द्रजौ, पाठा, रेणुक, गजपीपल, चिरचिटेकी जड़,

पीपलामूल, चीतेकी जड़, इन्द्रायणकी जड़, अमलतास, नीमकी छाल, कचूर, बावचीके बीज, वायविडंग, हल्दी, दारुहल्दी, अजवायन व अजमोद इनके काढ़ेमें हींग व अदरकका रस मिला कर २-३ घण्टेके अन्तरसे आधी २ छटांक मात्रामें सेवन करानेसे उत्कट अभिन्यास-ज्वर, सन्निपातज्वर और तन्द्रा, मोह, कर्णशूल, हिक्का, श्वास व अन्यान्य सब उपद्रव प्रशमित होते हैं। औषधि सेवनके अतिरिक्त अभिन्यास ज्वरमें पूर्वोक्त स्वेद आदि भी अवस्थाके अनुसार सेवन कराना चाहिये।

सन्निपात ज्वरमें व वातश्लेष्मा ज्वरमें कम्प, वमन, शिरःपीड़ा, अधिक प्यास, प्रलाप, अस्थिरता, आक्षेप, वक्षःस्थलमें असह्य वेदना, श्वास प्रश्वासमें कष्ट, अधिककास, गाढ़ कफका निकलना, कभी २ कफके साथ थोड़ा २ खूनका निकलना, मुखकी आकृति मलिन, गण्ड-स्थल ( गाल ) लाल व कृष्णवर्ण, जिह्वा शुष्क कंटकित ( काँटेदार ) व मलसे लिपी हुई, होंठ फटे हुए, आहार करने पर गलेमें तकलीफ मालूम करना, उदरामय ( पेटके विकार ), अनिद्रा, चेहरेका लाल व हरा रंग, शरीरमें छोटी २ फुन्सियाँ निकलना और उजेलेमें आँखोंका चौंधिया जाना इन लक्षणोंके उपस्थित होजाने पर रोग अतिकष्ट साध्य जानना चाहिये। डाक्टर लोग इसको न्यूमोनिया कहते हैं। इस रोगमें छातीमें कफ संचित होजाता है, जिससे फुस्फुसयन्त्र ( फेफड़े ) विकृत होजाते हैं तथा सूखे बेर पानीमें भिगोये रखनेसे उनसे जिस प्रकार फेनसा होता है, उसके समान पतला कफ निकलता है। कफके संचित होनेसे फुस्फुस क्लिन्न ( क्लेदयुक्त ) होकर क्रमशः सड़ जाते हैं। फुस्फुसोंके पकजाने पर दूधकी मलाई व पूय ( पीप ) की तरहका कफ निकलता है। यह अवस्था अति शीघ्र विपज्जनक और असाध्य समझना चाहिये।

इस अवस्थामें गेहूँके चोकरकी पुल्टिश विशेष उपकारक होती है। ऐसी अवस्थामें उग्र चिकित्सा कभी भी न करनी चाहिये। जिस

प्रकार मुखसे कफ निकलता रहे प्रतिक्षण औषधि आदिके प्रयोगसे ऐसी तजवीज करना चाहिये। पूर्वोक्त दशमूल, चतुर्दशाङ्ग, अष्टादशाङ्ग कषाय २–३ घण्टेके अन्तरसे सेवन कराना लाभदायक होता है। मकरध्वज २ रत्ती लेकर उसको शहदमें मिला कर तथा उसमें तुलसीका रस व पानके पत्तोंका रस मिला कर सेवन कराना चाहिये। भोजनके लिये मांसाहारी होने पर कबूतर व मुर्गीका यूष देना चाहिये। यह आहार व औषधि दोनोंका काम करते हैं। यदि खाँसी प्रबल हो, तो कास रोगोक्त औषधियाँ प्रयोग करना चाहिये। अधिक पसीना आकर रोगी दुर्बल और नाड़ी क्षीण होजावे तो कुलथीको भून कर उसका चूर्ण व सोंठका चूर्ण अथवा अबीर शरीरमें मलना चाहिये। इससे पसीना आना बन्द होजाता है।

प्रबल विकारकी दशामें कभी २ रोगीका शरीर शीतल, नाड़ीक्षीण व रोगी संज्ञाहीन होजाता है। ऐसे मौके पर "मकरध्वज १ रत्ती, कपूर १ रत्ती व कस्तूरी १ रत्ती शहदमें मिला कर २ तोला पानके रस या अद्रकके रसके साथ सेवन कराना चाहिये। इस औषधिसे कुछ उपकार मालूम होने पर २। ३ घण्टेके अन्तरसे दिनमें ३। ४ वार प्रयोग करना चाहिये। आयुर्वेद शास्त्रमें घोरतर विकारके समय "मृतसंजीवनी सुरा" व "मृगमदासव" आदि विशेष २ सुरा व आसवोंके प्रयोग करनेका उपदेश है, किन्तु आजकल इनके बनानेमें गवर्नमेण्ट विशेष आपत्ति करती है, इस लिये इनके बदले नं० १ व २ की ब्राण्डी ८।१० बूँद मात्रामें थोड़ासा पानी मिला कर २। १ घण्टेके अन्तरसे खिलाना चाहिये।

बलाधान ( ताकत ) के लिये-मांसाहारी होने पर कबूतर, मुर्गी, तीतर व बटेर आदि पक्षियोंके मांसका यूप ( सोरवा ) तजवीज करना चाहिये। विकारके रोगीको कभी भूल कर भी कच्चा ( विना औटाया हुआ ) पानी पीनेको न देना चाहिये। अभिन्यासका लक्षण उपस्थित होजाने पर अर्थात् रोगीकी दर्शन श्रवण व वाक्शक्तिके क्रमशः लोप

होजाने पर नाड़ीके रुक जाने पर तथा संज्ञाहीन होजाने पर "सूचिका भरणरस" घोरनृसिंह रस व चक्री प्रभृति रस प्रयोग प्रकरणमें लिखित औषधियाँ प्रयोग करना चाहिए। ताड़के पत्ते व धतूरेके पत्ते आगमें गरम कर रोगीके शरीरमें उनका सेक देना चाहिये।

सन्निपात ज्वरकी विशेष अवस्थामें किसी २ रोगीके कर्णमूल ( कानकी जड़ ) में शोथ होजाता है, और बहुत समय वह शोथ ही प्राणनाशक होजाता है। इस पर भी यदि ज्वरकी प्रथम अवस्थामें शोथ हो, तो वह साध्य होता है, मध्य अवस्थामें कष्टसाध्य तथा शेष अवस्थामें असाध्य होता है।

**कर्णमूल शोथकी चिकित्सा**—इसमें सबसे पहिले जोंक लगा कर दुष्ट ( खराब ) रक्तको निकाल देना चाहिये। तदनन्तर गेरू मिट्टी, सौंचर नमक, सोंठ, वच व राई समान भाग लेकर काँजीमें पीस कर उसको गरम कर शोथ पर लेप करना चाहिये।

कुलथीके बीज, कायफल, सोंठ व कालाजीरा समान भाग लेकर इनका चूर्ण थूहरके पत्तोंको आँच पर सेक कर उनमेंसे निकाले हुए रसमें पीस कर पुनः आग पर गरम कर शोथके ऊपर लगाना चाहिये। यदि इसके लगानेसे शोथ आराम न हो, तो थोहरके पत्ते पीस कर उनकी लुगदीमें घी मिला कर आँच पर गरम की हुई इसकी पुटलिस कई बार लगाना चाहिए। इसके लगानेसे शोथ पक जाता है। शोथके पक जाने पर नश्तर लगा कर पीप निकाल देनी चाहिए। तदनन्तर क्षत चिकित्साके अनुसार उपाय करना चाहिए।

नवज्वरमें जिस क्रमको अवलम्बन कर कषाय चिकित्सा करना चाहिए और नवज्वरकी जिस २ अवस्थामें जो २ कषाय प्रयोग करने चाहियें, इसका उपदेश ऊपर विशदरूपसे दिया गया है। इस क्रमको अवलम्बन कर विचारपूर्वक चिकित्सा करनेसे तथा आरम्भसे ही इस तरहकी सावधानी रखनेसे इन कषाय आदिसे कल्पित काष्ठादि औषधियोंसे ही सारे नये बुखार सहजमें ही आराम किये जा सकते

हैं, परन्तु आरम्भसे ही सावधानी न रखकर रोगके प्रबल हो जानेपर कषाय चिकित्साके अतिरिक्त स्वतन्त्र वा मिलित रूपसे रस चिकित्सा की विशेष आवश्यकता होती है। अत एव निम्नमें रस चिकित्साके विषयमें वर्णन किया जाता है, सुनो—

## तरुण व मध्यज्वरमें रस—प्रयोग।

**अग्निकुमार रस**—यह तरुण ज्वरकी सबसे उत्तम औषधि है। आमदोषके परिपाकके लिए यह औषधि प्रयोग की जाती है। विशेष२ अनुपानोंके साथ प्रयोग करनेसे यह औषधि और भी बहुतसे रोगोंमें प्रयोग कीजाती है, जैसे—आमज्वरमें सोंठका चूर्ण व मधुके साथ, शोथ रोगमें दशमूलके कषायके साथ, कफज्वरमें अद्रकका रस व सम्हालूके पत्तोंके रसके साथ, पीनस व प्रतिश्याय रोगमें अद्रकके रसके साथ, अग्निमान्द्य रोगमें लौंगका चूर्ण व मधुके साथ, शोथ रोगमें दशमूल के कषायके साथ, ग्रहणी रोगमें सोंठका चूर्ण व मधुके साथ, आमातिसार रोगमें धनिया व सोंठके क्वाथके साथ, पक्वातिसारमें कूड़ेका क्वाथ व शहदके साथ, सन्निपात ज्वरकी प्रथम अवस्थामें पीपलका चूर्ण व अद्रकके रसके साथ, कासरोगमें कटेली व अडूसेके रसके साथ श्वास रोगमें सरसोंका तेल व पुराने गुड़के साथ प्रयोग करनेसे विशेष लाभ होता है। इसी प्रकार अन्यान्य रोगोंमें भी यह औषधि अनुपान-विशेषके साथ प्रयोग करनेसे उन-२ रोगोंको दूर करनेमें समर्थ होती है। इससे अग्निकी वृद्धि होती है, इसीसे इसका नाम अग्निकुमार रखा गया है।

**हिंगुलेश्वर रस**—ज्वरमें यदि वायुका प्रकोप अधिक हो अर्थात् हाथ, पैर मस्तक व कमरमें दर्द आदि वायुके लक्षण प्रबल हों, तो शहदके साथ मिलाकर १–२ रत्ती मात्रामें दिनमें एक या दोबार सेवन कराना चाहिए।

**स्वच्छन्दभैरव**—यदि ज्वरमें पित्त कफका प्रकोप अधिक हो, तो

अद्रकका रस चीनी व सेंधानमकके साथ प्रयोग करना चाहिए, किंतु यदि पित्त या कफके साथ कुछ वायुके लक्षण भी हों, तो प्रातःकाल एक वटी स्वच्छन्दभैरव और सायंकालके समय १ गोली "हिंगुलेश्वर" व्यवस्था करना चाहिए।

**नवज्वरारि रस**—ज्वरमें यदि वात आदि सब दोषोंके लक्षण कुछ २ प्रकाशित हों, तो अद्रकके रसके साथ प्रतिदिन १-२ वटी यह औषधि प्रयोग करना चाहिए. इससे ज्वर आरोग्य होता है इसके अतिरिक्त यह औषधि विशेष २ अनुपानके साथ जीर्ण ज्वर व अजीर्ण रोगमें भी प्रयोग की जा सकती है।

**तरुण ज्वरारि रस**—नवज्वरमें यदि विरेचन कराना आवश्यक हो, तो ज्वरके पाँचवें, छठे व सातवें दिन चीनीके पानीके साथ तरुण ज्वरारि १ वटो ( आवश्यक होने पर २ तक ) सेवन कराना चाहिए। इससे विरेचन होकर ज्वर मुक्त हो जाता है।

**श्रीमृत्युंजय रस**—इसको वात आदि सब ज्वरोंमें व्यवहार कर सकते हैं। साधारणतः इसका अनुपान शहद है। किन्तु अनुपान विशेषसे इसके द्वारा विशेष २ काम लिये जा सकते हैं, जैसे—अद्रकके रसके साथ प्रबल सन्निपात ज्वरमें, जम्बीरी निम्बुके रसके साथ अजीर्ण ज्वरमें, काले जीरेका चूर्ण व पुराने गुड़के साथ विषम ज्वरोंमें प्रयोग किया जाता है। ज्वरमें यदि कफ अधिक न हो, तो कच्चे नारियलका पानी व चीनीके साथ प्रयोग करनेसे वातपित्त-जनित दाह व प्यासका निवारण करता है।

**नवज्वरांकुश रस**—नवज्वरमें यदि रस व मलकी विबद्धता हो तो चीनीके पानीके साथ यह औषधि दिनमें एक व दो बार प्रयोग करना चाहिए।

**चण्डेश्वर रस**—नवज्वरके भयानक होने पर अद्रकके रसके साथ यह औषधि दिनमें १-२ बार प्रयोग करना चाहिए।

**प्रतापमार्तण्डरस**—यह भी प्रबल नवज्वरमें प्रयोग किया जाता है। इसके सेवन करानेसे ज्वर शीघ्र ही शान्त हो जाता है। अद्रकके रस या कच्ची हल्दीके रसमें १–२ वटी तक प्रयोग करनेसे विशेष लाभ होता है।

**शीतारि रस**—यह वातश्लेष्म ज्वर व शीतज्वरकी उत्तम औषधि है। अनुपान गरम जल आदि।

**शीतभञ्जीरस**—महाघोर नवज्वरमें शीतभञ्जीरस प्रयोग करना चाहिए। अनुपान–गन्नेका रस। इसके सेवन करानेसे अति शीघ्र ही ज्वर शान्त हो जाता है।

**ज्वरहर वटी**—ज्वरके विच्छेद ( छूटने ) के समय दो या तीन घण्टेके अन्तरसे एक २ वटी करके चीनीके सर्बतके साथ मिलाकर सेवन करनेसे ज्वरका वेग शीघ्र ही शान्त हो जाता है।

**श्रीज्वरमुरारि रस**—यदि विरेचन कराना आवश्यक हो, तो १–२ वटी जलके साथ व अद्रकके रसके साथ सेवन कराना चाहिए जमालगोटेके योगसे बनी हुई सब औषधियाँ रोगीका बलाबल व कोष्ठ का विचार रखकर प्रयोग करनी चाहिए, क्योंकि–इससे मृदु कोष्ठ पुरुषको थोड़ी मात्रामें प्रयोग करनेसे ही उसको अधिक दस्त आजाने से वह अति दुर्बल व विपन्न हो जाता है।

**ज्वर मातङ्ग केशरी रस**—ज्वरके साथ अग्निमान्द्य, आमाजीर्ण, पाण्डु, कामला प्रभृति उपद्रव हों, तो यह औषधि प्रयोग करनी चाहिए। यह नवीन व पुरातन सब प्रकारके ज्वरोंमें प्रयोग की जाती है अनुपान–गरम जल आदि।

**ज्वरभैरव रस**—यह नवज्वर जीर्णज्वर व विषम आदि सब प्रकारके ज्वरोंमें प्रयोग किया जाता है। अनुपान–पानका रस आदि।

**चन्द्रशेखर रस**—यह पित्तकफ ज्वरकी अति उत्तम औषधि है। अनुपान–पानका रस आदि।

**सौभाग्य वटी**—यदि रोगी नवज्वरसे अधिक विकल हो, तो

ऐसी दशामें इस औषधिके प्रयोग करनेसे विशेष लाभ होता है। अनुपान-अद्रकका रस ईषदुष्णजल ( थोड़ासा कोसा कर ) के साथ सेवन करना चाहिए।

## घोर सन्निपात ज्वरमें रस प्रयोग।

**कफ केतु रस**—सन्निपात ज्वरमें कण्ठरोध, मस्तकमें वेदना व कफ अधिक हो, तो अद्रकके रसके साथ दिनमें एकबार या दो बार इस रसको प्रयोग करना चाहिए।

**स्वल्पकस्तूरिभैरव व बृहत् कस्तूरिभैरव**—ज्वरमें कफ की अधिकता होने पर ये रस प्रयोग करने चाहियें। सन्निपातके अतिरिक्त अन्य ज्वरोंमें भी कफके प्रशम तथा बलाधानके लिए ये दोनों औषधियाँ प्रयोग की जाती हैं।

**श्लेष्मकालानलरस**—इसके सेवन करानेसे कफोल्वण सन्निपात ज्वरका विनाश होता है। अनुपान-अद्रकका रस आदि।

**त्रैलोक्य चिन्तामणि रस**—यह भी सन्निपात ज्वरकी श्रेष्ठ औषधि है। इस औषधिके सेवन करानेके अनन्तर कच्चे नारियलका पानी आदि शीतल अनुपान सेवन कराना चाहिए।

**श्रीवेतालरस**—इसके सेवन करानेसे साध्य व असाध्य सन्निपात ज्वर तक तथा उसके मूर्छा आदि उपद्रव प्रशमित होते हैं। अनुपान-अद्रकका रस आदि।

**ब्रह्मरन्ध्र रस**—मस्तकके ब्रह्मरन्ध्रमें छुरीसे चीरा लगाकर उसके भीतर इस औषधिको लगा देनेसे सन्निपात ज्वर विकारके अचैतन्य आदि उपद्रव प्रशमित हो जाते हैं। औषधि प्रयोगके अनन्तर गन्नेका रस आदि शीतल पदार्थ सेवन कराने चाहियें।

**चक्रीरस**—इसके सेवन करानेसे भी सन्निपात ज्वर व उसके सब उपद्रव नाश हो जाते हैं।

**सन्निपात भैरवरस**—इसके सेवनसे घोर सन्निपात ज्वरका नाश होता है। अनुपान-गन्नेका रस आदि।

**सूचिकाभरण रस**—सन्निपात ज्वरकी शेष अवस्थामें यह औषधी प्रयोग करनी चाहिए, नाड़ी छूट जाने पर भी इसके सेवन कराने से नाड़ी पुनर्बार अपने स्थानमें आजाती है। अनुपान—पानका रस आदि

**घोर नृसिंह रस**—(अघोर नृसिंह रस)—यह भी अति प्रबल सन्निपात ज्वरमें प्रयोग करना चाहिए। औषधि सेवन करनेके अनन्तर गन्ने का रस आदि शीतल द्रव्य सेवन कराना चाहिए। नवज्वरकी जिस २ अवस्थामें जो २ रसघटित औषधियाँ प्रयोग की जाती हैं, यह ऊपर बता दिया है। विचार पूर्वक इन सब औषधियोंके प्रयोग करते रहनेसे ईश्वर-कृपासे कार्यक्षेत्रमें तुम्हें अवश्य ही सफलता व यश प्राप्त होगा। अब निम्नमें विषम व जीर्णज्वरोंकी कषाय व रस चिकित्साका क्रमशः उपदेश करते हैं, सुनो—

## विषमज्वर व जीर्णज्वर चिकित्सा।

विषम ज्वर किसको कहते हैं, यह पहिले ही बता आये हैं, तथा जीर्ण व पुरातन ज्वर किसको कहते हैं, यह बात भी प्रसिद्ध है। चिकित्साके दोषसे हो या आरम्भसे ही दोषकी दुष्टिकी विचित्रता हो या रोगीकी बदपरेजीसे हो, नवज्वरके ही कुछ दिन तक स्थायी रहने से वही नवज्वर जीर्णज्वरमें परिणत होजाता है। नवज्वर जिस तरह शीघ्र विपज्जनक होता है, विषम व जीर्णज्वर वैसे नहीं होते हैं। किन्तु ये क्रमशः रोगीको जीर्णशीर्ण बना कर अन्तमें प्लीहा, यकृत्, शोथ, उदरामय, अरुचि व जठर प्रभृति उपद्रव उपस्थित होकर रोगीका प्राणान्तक कर देते हैं। इसीसे इस ज्वरकी चिकित्सा विशेष मनोयोग पूर्वक करना चाहिए, उपेक्षा करना किसी तरह भी उचित नहीं।

**विषमज्वरके लिए चमत्कारी प्रयोग**—यदि प्रति दिन ज्वर मन्द २ वेगसे होता हो, और हाथ पैर व नेत्रोंमें जलन होती हो, रंगों व मस्तकमें दर्द हो, अरुचि क्रमशः बढ़ रही हो, तो—पित्तपापड़ा, हारसिंगारके पत्ते व गिलोय इन तीन द्रव्योंका अथवा—गिलोय, पित्तपापड़ा,

गोरखमुंडी, नकछिकनी व पटोलपत्र इनका पुटपक स्वरस + रातको ओसमें रख कर प्रातःकाल शहद मिला कर प्रातःकाल व सायंकाल आधी २ छटांक मात्रामें सेवन करनेसे अति चमत्कृत लाभ होता है। इस तरकीबसे एक दिनका तैय्यार किया हुआ स्वरस दो तीन दिन तक वर्ता जा सकता है, किन्तु प्रतिरात्रिको उसको ओस पर अवश्य रखना चाहिये।

केवल हारसिंगारका रस कुछ दिन तक शहद मिला कर सेवन करानेसे विषम व जीर्ण ज्वरोंमें उपकार होता है।

इस जाड़ी बूटीकी जड़, छाल, पत्ता, फूल व फलोंका पूर्वोक्त विधिसे पुटपक स्वरस तैय्यार कर सेवन करानेसे भी विषम व जीर्णज्वरोंमें विशेष लाभ होता है।

लहसुनका सिलवट्टेसे पीस कर उसको तिलोंके तेलके साथ मिला कर प्रतिदिन उपयुक्त मात्रामें सेवन करानेसे उग्र विषमज्वर व वातोपद्रवकी शान्ति होती है।

काले जीरेका चूर्ण आधतोला व पुरानागुड़ आधतोला एकत्र मिला कर सेवन करानेसे भी विषमज्वर अग्निमान्द्य व वायुके सब उपद्रव शान्त होजाते हैं।

गूगल, नीमके पत्ते, वच, कूठ, हरड़, सुफेद सरसों, यव ( जौ ) व घृत इन सबको बारीक कूट कर धूप तैय्यार कर रखना। इस "अष्टाङ्ग" का धूप ( अपारा ) देनेसे अर्थात् इनकी शरीर पर धूनी देनेसे विषमज्वरका निवारण होता है।

---

+ सब चीजोंको सिलवट्टेसे पीस कर उसकी लुगदी बना कर हरे एरण्ड, केला आदिके पत्तोंमें लपेट कर और रस्सीसे मजबूत बाँध कर बाहरसे चिकनी मट्टीका लेप चढ़ा कर जलसे कोयलेके समान लाल हो जाय तब निकालना ठंडा होने पर रस निचोड़ कर व्यवहार करना।

बकरीका चमड़ा, बच, कूठ, गूगल, नीमके पत्ते व नागरमोथा इन सब द्रव्योंकी धूनी देनेसे भी विषमज्वर नष्ट होता है।

गुग्गल, गन्धतृण, बच, राल, नीमके पत्ते, आँकके फूल, अगर व देवदारु इनकी धूनीसे सब प्रकारका जीर्ण ज्वर प्रशमित होता है।

सुफेद जयन्ती ( जयत ) की जड़ मस्तकमें बाँध कर रखनेसे पुरातन ज्वरकी शान्ति होती है। काकमाची ( मकोय ) की जड़ कानमें बाँधनेसे रात्रिज्वरका निवारण होता है। कालेभांगरेकी जड़के सात टुकड़ करके अद्रकके रसके साथ सेवन करानेसे पुराने ज्वरका निवारण होता है।

करेलेके पत्ते वा सरवाल ( सारवोट ) के पत्तोंको हाथोंसे मल कर किसी कपड़ेकी पोटलीमें बाँध कर रखना। ज्वरके चढ़नेकी बारीके दिन इस पोटलीको सूँघते रहनेसे ज्वर चढ़ना बन्द होजायेगा।

## विषमज्वर व जीर्णज्वरमें कषाय प्रयोग।

"सन्तत ज्वरमें" **कलिङ्गादि पाचन**—इन्द्रजौ, पटोलपत्र व कुटकी का काढ़ा बना कर सेवन कराना चाहिए।

"सततज्वर" में **पटोलादिपाचन**-पटोलपत्र, अनन्तमूल, नागरमोथा, पाठा व कुटकीका काढ़ा प्रयोग करना चाहिये। यह सतत ज्वर नाशक है।

"अन्येद्युष्क ज्वरमें" **निम्बादिपाचन**—नीमकीछाल, पटोलपत्र, हरड़, आमला, बहेड़ा, मुनक्कादाख, नागरमोथा व इन्द्रजौका काढ़ा सेवन कराना चाहिए।

"तृतीयकज्वरमें" **चन्दनादिपाचन**—लालचन्दन, गिलोय, सोंठ व चिरायता इनका काढ़ा तजवीज करना चाहिए। यह तृतीयकज्वरकी श्रेष्ठ औषधि है।

"चतुर्थकज्वर" में **मुस्तादिपाचन**—नागरमोथा, गिलोय व आमले का प्रयोग करना चाहिये। यह चतुर्थक ( चौथिया ) ज्वरका नाश करता है।

"शीतपूर्व ज्वर" (जिस ज्वरमें पहिले जाड़ा लग कर फिर दाह हो) में **भद्रादिपाचन**–कायफल, धनिया, सोंठ, गिलोय, नागरमोथा, पद्माख, लालचन्दन, चिरायता, पटोलपत्र, अडूसा, कूठ, कुटकी, इन्द्र जौ, नीमकी छाल, भारंगी व पित्तपापड़ा इनका काढ़ा प्रातःकालके समय सेवन कराना चाहिए।

"दाहपूर्वकज्वर" (जिस ज्वरमें पहिले दाह होकर पश्चात् शीत हो) **विभीतकादिपाचन**–बहेड़ा, अमलतास, कुटकी, निशोथ व हरड़ इनका काढ़ा प्रयोग करनेसे दाह, प्यास व ज्वरका नाश करता है।

जीर्णज्वरमें यदि कफ व वायुकी प्रबलता हो अर्थात् अरुचि, खाँसी श्वास, शरीरमें दर्द, अग्निमान्द्य, अर्दित व पीनस आदि उपद्रव हों, तो **"निदिग्धिकादि-पाचन"**–कटेली, सोंठ, व गिलोय इनका काढा बनाकर उसमें दो माशा पीपलका चूर्ण डालकर सेवन कराना चाहिए। परन्तु उसमें यदि पित्तका अनुबन्ध हो, तो पीपलके चूर्णके बदले शहद मिलाकर सेवन करना चाहिए। यदि ज्वर रात्रिमे बढ़ता हो, तो सायं-कालके समय इस कषायको सेवन कराना चाहिए।

पुरातन ज्वरमें यदि यकृत्, प्लीहा, शोथ, अग्निमान्द्य व अरुचि आदि उपद्रव हों, तो **"बृहद् भार्ग्यादि पाचन"**–भारंगी, हरड़, कुटकी, कूठ, नागरमोथा, पित्तपापड़ा, पीपल, गिलोय व सोंठ और पूर्वोक्त दशमूल पाचनकी दश चीजें इनका काढा बनाकर सेवन कराना चाहिए।

यदि जीर्णज्वर दीर्घकालजात व धातुस्थ हो और उसमें त्रिदोष के प्रकोप लक्षण भी कुछ २ हों, तो **दार्व्यादि पाचन**–कटसरैय्या, देवदारु, इंद्रजौ, मंजीठ, अनन्तमूल, पाठा, कचूर, सोंठ, खश, चिरायता, गजपीपल, त्रायमाण, पद्माख, हड़जोड़ी, धनिया, सोंठ नागरमोथा, सरल काष्ठ ( धूप ), सहजनेकी छाल, नेत्रबाला, बड़ी कटेली, हरड़, कटेली, पित्तपापड़ा, कुशकी जड़, कुटकी, अनन्तमूल, गिलोय व कूठ इनका काढा बनाकर शहद मिलाके सेवन कराना चाहिए। **बृहद्**

**भार्ग्यादि व दार्व्यादि पाचन**—सब प्रकारके ज्वरोंकी सबसे उत्तम औषधि है। इनसे धातुस्थज्वर, सब प्रकारके विषमज्वर (एकाहिक, द्वितीयक आदि) और त्रिदोषज ज्वर, क्षयज्वर, कामज्वर व शोथज्वर आदि निर्मूल हो जाते हैं।

**"सुदर्शनचूर्ण"**—भी सब प्रकारके विषम व जीर्णज्वरोंकी महौषधि है, यथा—हरड़, बहेड़ा, आमला, हल्दी, दारुहल्दी, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, कचूर, सोंठ, मिर्चकाली, पीपल, पीपलामूल, मूर्वा, गिलोय, धमासा, कुटकी, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, त्रायमाण, नेत्रवाला, नीमकी छाल, पुहकरमूल, मुलेठी, कुड़ेकी छाल, अजवायन, इन्द्रजौ, भारंगी, सहजनेके बीज, फिटकरीकी खील, वच, दालचीनी, पद्माख, चन्दन, अतीस, खरेटी, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, वायविडंग, तगर, चीतेकी छाल, देवदार, चव्य, पटोलपत्र, विदारीकन्द, लौंग, वंशलोचन, सुफेदकमल, मुलेठी, पत्रज, जवत्री, तालीशपत्र ये सब औषधियाँ समान भाग और चिरायता इन सब औषधियोंसे आधा डालकर बारीक कपड़छन चूर्ण बनाकर रखना। इसका नाम सुदर्शन चूर्ण है मात्रा—१-४ माशा तक। अनुपान—जल।

विषम व जीर्णज्वरकी कषाय-चिकित्सा संक्षेपसे ऊपर कह दी है; विचारपूर्वक इनका प्रयोग करनेसे इन काष्ठादि औषधियोंसे ही सब तरहके विषम व जीर्णज्वरोंके उपशम करनेमें समर्थ हो सकते हो। अब नीचे इन ज्वरोंकी रस चिकित्सा कहते हैं, सुनो—

## विषम व जीर्ण ज्वरों में रस प्रयोग।

**ज्वरांकुशरस**—इसके सेवन करनेसे विषम ज्वर शान्त होता है। यह सब तरहके पुराने ज्वरोंमें व्यवहार किया जा सकता है। अनुपान—अद्रकका रस व शहद। ज्वरके साथ अतिसार होने पर पीपल का रस व शहदके साथ।

**ज्वरान्तक रस**—यह विषम ज्वरोंकी सर्वोत्तम औषधि है। इसके

सेवन करनेसे तृतीयक व चतुर्थक आदि सब प्रकारके विषम व पुरातन ज्वर प्रशमित होते हैं। अनुपान-पानका रस व शहद आदि।

**ज्वराशनिरस**—इसके सेवन करानेसे कास, श्वास, यकृत्, प्लीहा आदि उपद्रवसहित विषम व जीर्णज्वरका उपशम होता है।

**चन्दनादि लौह**—पित्ताधिक जीर्णज्वर अर्थात् जीर्णज्वरमें नेत्र हाथ पैर आदि में जलन आदि पैत्तिक उपद्रव रहने पर इस चन्दनादि लौहसे विशेष लाभ होता है। यह विशेष २ अनुपानके साथ सब प्रकारके विषमज्वरोंमें व्यवहार किया जा सकता है। अनुपान-गिलोय का रस, पित्तपापड़ेका रस, व शहद आदि। वृद्धवैद्यगण इस औषधि के सेवन करानेके अनन्तर २।४ नागरमोथेकी जड़ोंके चबानेका विधान बता गये हैं।

**ऐकाहिकारिरस**—इसको तृतीयक ( तिजारी ) ज्वरमें प्रयोग कराना चाहिए। अनुपान-अतीसका क्वाथ आदि।

**चतुर्थकारिरस**—यह चतुर्थक अर्थात् दो दिनके अनन्तर आने वाले ज्वरमें प्रयोग करना चाहिए। अनुपान-चंपाकी छालका रस आदि।

**ज्वरकुंजर पारीन्द्र रस**—यह विषम व जीर्ण ज्वरोंकी प्रसिद्ध औषधि है। इस महौषधिके सेवन करानेसे सब प्रकारके जीर्ण व विषमज्वर तथा श्वास, कास, शोथ, पाण्डु, कामला, ग्रहणी व प्रमेह आदि उपद्रव, सूर्यके उदय होने पर अंधेरेके नष्ट होजानेके समान नष्ट हो जाता है उपद्रवोंके प्रतिदृष्टि रखकर अनुपान तजवीज करना चाहिए

**श्रीजयमंगल रस**—इसके समान सर्वविध ज्वर नाशक शक्ति सम्पन्न औषधि और दूसरी नहीं है। ऐसा कोई ज्वर नहीं तथा ऐसा कोई उपद्रव नहीं है जो इस जयमंगलके सेवन करानेसे नष्ट न हो जाय। पुराने ज्वरोंके लिए यह ब्रह्मास्त्र समझना चाहिए। अनुपान-उपद्रवके अनुसार व्यवस्था करना चाहिए।

**ज्वरारिरस**—इसके सेवन करानेसे शीघ्र ही ज्वरका उपशम होता

है। यह भी सब प्रकारके ज्वरोंको नाश करता है। अनुपान-अद्रकका रस या पानका रस अथवा केवल जल।

**विषमज्वरान्तक लौह**—तिल्लीआदि उपद्रव वाले ज्वरमें इससे विशेष लाभ होता है। यह जीर्ण और विषम ज्वरकी अति प्रसिद्ध औषधि है। अनुपान-अद्रकका रस, पानका रस, पीपलका चूर्ण व शहद आदि।

**पुटपक्व विषमज्वरान्तक लौह**—विषम व जीर्णज्वरमें यदि उदररोग व अजीर्ण, अग्निमान्द्य, कास, श्वास, शोथ व प्लीहा आदि उपद्रव हों, तो इस महौषधिके प्रयोग करनेसे विशेष उपकार होता है। सब प्रकारके पुराने ज्वरोंमें ही यह औषधि प्रयोग कीजाती है। अनुपान-पानका रस, तुलसीके पत्तोंका रस तथा पीपलका चूर्ण, सेंधा नमक, हींग आदि।

**सर्वज्वरहर लौह व बृहत् सर्वज्वरहरलौह**—यह सुप्रसिद्ध औषधि है। चिकित्सकगण सब प्रकारके ज्वरोंमें हमेशा इन दोनों औषधियोंकी निःसंकोच व्यवस्था करते हैं, ज्वरकी अवस्थाके अनुसार अनुपान व्यवस्था करना चाहिए।

**श्लेष्मशैलेन्द्ररस**—पुरातन ज्वरमें यदि कफका प्रकोप अधिक हो, तो इस औषधिको सेवन कराना चाहिए। इसके व्यवहारसे और २ कफजन्य रोग भी प्रशमित होते हैं। अनुपान-उष्णजल आदि।

**लक्ष्मीविलासरस**--विचारपूर्वक विशेष २ अनुपानोंके साथ प्रयोग करनेसे इस लक्ष्मीविलाससे सब प्रकारके रोग व सब प्रकारके उपद्रवोंकी शान्ति होजाती है। वात-श्लेष्म रोगोंमें इससे विशेष लाभ होता है। इसके अतिरिक्त यह बलपुष्टिकारक व रतिशक्तिवर्द्धक भी है।

**मकरध्वज ( चन्द्रोदय )**--विशेष २ अनुपानोंके साथ व्यवहार करनेसे सब प्रकारके रोगोंको नष्ट करता है। जब किसी औषधिसे कुछ फल न दिखाई दे, उस समय यह मकरध्वज महौषधि ही एक-

मात्र अवलम्बन होता है। इसके गुण शास्त्रोंमें विस्तारपूर्वक वर्णन किये गये हैं, विस्तारके भयसे यहाँ पर उद्धृत नहीं किये गये।

विषम व जीर्णज्वरकी रस चिकित्सा संक्षेपसे ऊपर वर्णन कर चुके हैं। विचारपूर्वक व्यवस्था करनेसे इन सब रस-घटित औषधियोंसे ही तुम सब प्रकारके विषम व जीर्ण ज्वरोंकी चिकित्सा करनेमें समर्थ होसकते हो।

यहाँ पर एक विशेषध्यान देने योग्य बात कह देता हूँ, सुनो-पूर्वोक्त पाचन आदि व रस घटित औषधियोंके सेवन करानेसे तथा लघुभोजन आदि द्वारा जिसके शरीरमें रूक्षता होगई हो और रूक्षताके कारण जिसका ज्वर बहिर्मार्गको आश्रय कर अटक गया हो और वह किसी औषधिके प्रयोग करनेसे भी प्रशमित न होरहा हो, उसके लिए **अङ्गारक तैल, बृहदंगारक तैल, महा लाक्षादि तैल व किरातादि तैल** रोगीके शरीरमें मालिशके लिये व्यवहार करना चाहिए। इन तैलोंकी मालिशसे बहिर्मार्गगतज्वर शीघ्र प्रशमित होकर शरीर स्वस्थ व बलवर्ण आदि सम्पन्न होता है। उपरोक्त अवस्थामें **क्षीरषट्पलघृत**, के सेवन करानेसे भी इन पुराने ज्वरोंकी निवृत्ति हो जाती है।

हम ऊपर यथावत् साम, निराम, विषम व जीर्णज्वर आदि सब प्रकारके ज्वरोंके विषयमें उपदेश कर चुके हैं, अब इससे आगे ज्वरमें जो यकृत ( जिगर ) और प्लीहा ( तिल्ली ) आदि उपद्रव उत्पन्न होकर रोगसङ्कर रूप धारण कर देते हैं, उनकी चिकित्सा आदि कहते हैं, सुनो—

## यकृत् व प्लीहा चिकित्सा।

विषम व जीर्ण ज्वरके बहुत दिन तक रहनेसे प्रायः प्लीहा व यकृत् आदि यन्त्र क्रमशः इतने बढ जाते हैं, कि-उस समय उनकी विशेष चिकित्सा न करनेसे केवल मूल रोगकी चिकित्सासे ही उनका उप-

शम नहीं होता। इसी लिए यहाँ पर यकृत् व प्लीहाकी चिकित्सा स्वतन्त्र रूपसे कहते हैं, सुनो—

पेट ( उदर ) के ऊपरके हिस्सेमें बाँई तरफ तिल्ली और दाहिनी तरफ जिगर रहता है। ये यन्त्र जब प्रकृतिमें रहते हैं, उस समय पेटके ऊपरसे हाथ लगाकर नहीं मालूम किये जा सकते। जब विकृत होकर बढ जाते हैं और नीचेकी तरफ लमक जाते हैं, तब ये हाथसे स्पर्श कर मालूम किये जा सकते हैं। प्लीहा व यकृत्के विकृत होकर बढ जाने पर प्रायः नाड़ी गरम रहती है, मन्द २ ( धीमा ) ज्वर होता है, यह ज्वर दिनमें कभी बढ जाता है और कभी कम हो जाता है और किसी २ के जाड़ा ( कम्प ) लगकर प्रबल ज्वर हो जाता है। जिगर व तिल्ली जितने२ अधिक बढते हैं, उतने ही उनके अवस्थिति स्थान में दर्द, अकडन व जलन अधिक होती है। इसके अतिरिक्त मलबद्धता ( कब्ज ) पेशाबका लाल रङ्ग व कम होना, शरीरका अवसाद (ढीला-पन ), दुर्बलता व मुखका फीका रङ्ग, मुखकी विरसता, नेत्र, अंगुलि के नख व ओष्ठ आदि स्थानोंमें नीरक्तता ( खूनकी कमीसे सुफेद पड़ना ), तथा खाँसी, श्वास, वमन, मिचलाहट, प्यास, अंधेरी आना और मूर्छित होजाना ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं। जिगर व तिल्ली रोगके ये **अतिदुर्लक्षण हैं**, यथा—नाक, दाँतोंके मसूड़ोंसे रक्त गिरना, रक्तवमन, रक्तके दस्त, ज्वर रोग, मसूड़ोंमें घाव, पैर व आँखों में शोथ या सर्वाङ्गमें शोथ, पाण्डु व कामला इन सब लक्षणोंके उप-स्थित होने पर रोगीके आरोग्य लाभकी बहुत कम आशा रहती है।

आयुर्वेद-शास्त्रमें तिल्ली व जिगरकी एक ही चिकित्सा कही गई है, इसलिए एक साथ ही दोनोंकी चिकित्साका उपदेश करते हैं, सुनो

**चिकित्सा सूत्र**—प्लीहा व यकृत् रोगमें ऐसी औषधि वा पथ्य आदि व्यवस्था करना चाहिये जिससे प्रतिदिन दस्त साफ होता रहे।

इस रोगके लिये निम्नलिखित चुटकले विशेष लाभदायक हैं,

यथा-ताड़की जटाकी भस्म न्यूनाधिक ४ माशा मात्रामें पुराने गुड़के साथ सेवन करानेसे प्लीहा व यकृत्की शान्ति होती है।

थोड़ी २ हींग केलेमें भरकर प्रतिदिन सेवन करानेसे प्लीहा रोग नष्ट हो जाता है।

समुद्रमेंके घोंघोंका भस्म ३।४ रत्ती अथवा पीपलका चूर्ण १-२ माशा तक दूधके साथ सेवन करानेसे विशेष लाभ होता है।

कोष्ठ शुद्धिके लिए हरड़का चूर्ण व पुराना गुड़ या हरड़का चूर्ण व विट्लवण समान भाग लेकर उपयुक्त मात्रामें सेवन कराना चाहिए।

**अर्कलवण**--यह तिल्ली व जिगरके लिए सबसे उत्तम औषधि है। अर्कलवण बनानेकी विधि-पीले पके हुए आँकके पत्ते व सेंधा नमक का चूर्ण एक हाँडीमें रख कर उसके मुखको सकोरेसे अच्छी तरह बन्द कर हाँडीके नीचे आँच जलावें। जब हाँडी बाहरसे जलते कोयले के समान लाल होजाय, तब उसको आँचसे उतार कर ठंडा होने पर हाँडाका मुख खोल कर वह भस्म लेनी चाहिये। फिर इसको बारीक पीस कर शीशीमें भर कर रखना चाहिये। यह अर्क लवण उपयुक्त मात्रामें जलके साथ सेवन कराना चाहिए।

वायविडंग, दालचीनी, सेंधानमक, वच व जौका सत्तू इन सब द्रव्योंके चूर्णको घीसे मोछ कर इसको ऊपर लिखे अनुसार हाँडीमें बन्द कर अन्तर्धूम दग्ध कर भस्म बनाना। यह भस्म सुफेद रंगकी होगी इस भस्मको उपयुक्त मात्रामें दूधके साथ सेवन करानेसे तिल्ली व जिगर आराम होता है।

लहसुन, पीपल व हरड़ सेवन करानेसे अथवा ताजे गोमूत्रका सेवन करानेसे भी तिल्ली व जिगर आराम होते हैं।

अजवायन, चीता, जवाखार, पीपलामूल, पीपल व दन्ती इनका चूर्ण समान भाग लेकर गरम जल व दहीकी लस्सीके साथ सेवन करानेसे प्लीहा व यकृत् शान्त होता है।

हींग, सोंठ, पीपल, मिरच, कूठ जवाखार व सेंधानमक इनका

समान भाग चूर्ण लेकर कागजी, गलगल वा नारंगीके रसके साथ मिलाकर २ माशा मात्रामें प्रतिदिन सेवन करानेसे प्लीहा व यकृत् रोग आराम हो जाता है।

इन सब प्रयोगोंसे यदि तिल्ली जिगरको आराम न हो, तो **निदिग्धिकादि पाचन**–कटेली, बड़ी कटेली, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी व गोखरू तथा हरड़ बहेड़ा इन सात द्रव्योंका कषाय ४ माशा जवाखार व ४ माषा पीपलका चूर्ण मिलाकर सेवन कराना चाहिए। यह तिल्ली जिगरकी सबसे उत्तम औषधि है।

तिल्ली जिगरके अधिक बढ़ जाने पर उसमें प्रतिदिन प्रातःकाल व सायंकाल गोमूत्रका स्वेद देना चाहिए।

तिल, अलसी, एरण्डके बीज व राईके बीजोंको गरम पानी या सिर्केमें पीसकर लेप करना चाहिए। कभी २ केवल राईका लेप करने से भी विशेष लाभ होते दिखाई दिया है। इस प्रलेपसे उस स्थानका रंग पके हुए मांसके समान अथवा लाल रङ्गका हो जावेगा तथा थोड़ी सी जलन भी होगी। गोमूत्रका स्वेद व सुफेद राई आदि के प्रलेपसे तिल्ली व जिगर कोमल होकर दिनों दिन कम होने लगेंगे। ये प्रलेप बीच २ में एक २ बार करके लगाना चाहिए।

**माणकादिगुड़िका, बृहन्माणकादिगुड़िका, गुड़ पिप्पली व अभयालवण** प्लीहा व यकृत् रोगकी सर्वश्रेष्ठ औषधियाँ हैं अनुपान-जल। जो तिल्ली जिगर डाक्टरी आदि किसी प्रकारकी भी चिकित्सासे आराम नहीं होते, वह "अभयालवण" व "गुड़पिप्पली" के व्यवहारसे सैकड़ों बार आराम होते देखे हैं।

## रस प्रयोग।

**लोकनाथ रस**–इसके सेवन करानेसे तिल्ली जिगर तथा पाण्डु कामला व अग्निमान्द्य आदि उपद्रव आराम होते हैं। यह लोकनाथ रस इन रोगोंके लिए सबसे उत्तम औषधि है। अनुपान-शहद व पीपलका चूर्ण अथवा पुराना गुड़ व हरड व पुराना गुड़ व भुने हुए जीरेका चूर्ण।

प्लीहान्तकरस-इसके सेवन करानेसे सब उपद्रवोंके साथ जिगर व तिल्ली रोगका निवारण होता है। अनुपान-पहिले लिखेके समान।

यकृदरि लौह-इसके सेवन करनेसे भी कामला, हलीमक, कास, श्वास आदि उपद्रवोंके साथ तिल्ली-जिगर रोग आराम होता है।

इसके अतिरिक्त जीर्ण व विषमज्वरमें कहे हुए "ज्वरांकुश, ज्वराशनिरस, विषमज्वरान्तक लौह, पुटपक्व विषमज्वरान्तक लौह, सर्वज्वरहर लौह, व अमृतमङ्गल आदि औषधियाँ भी तिल्ली जिगर रोगमें अवस्थाके अनुसार प्रयोग की जा सकती हैं।

## पाण्डु, कामला व हलीमक रोगचिकित्सा।

प्रसङ्गवश हम तुम्हें यहाँ पर पाण्डु, कामला व हलीमक रोगके विषयमें भी उपदेश देते हैं, सुनो—

ज्वर बहुत दिनका पुराना होजाने पर जिस तरह पर उसमें प्लीहा व यकृत् उत्पन्न हो जाते हैं, उसी तरह पर इस तिल्ली व जिगरके बहुत दिन तक रहनेसे व पित्तके विकृत हो जानेके कारण उससे पाण्डु, कामला व हलीमक रोग भी उत्पन्न होजाते हैं। इसके अतिरिक्त ज्वर का सम्बन्ध न रहने पर भी और किसी कारणसे ( पित्तवर्द्धक आहार विहारके सेवन करनेसे ) तिल्ली व जिगरके दूषित होनेपर इससे भी पाण्डु, कामला व हलीमक होते देखनेमें आते हैं। **पाण्डु आदिके लक्षण**-पाण्डु रोगमें खाल ( त्वचा ) पाण्डुवर्णकी होजाती है, कामला रोगमें हाथ, पैरके तलवे व नेत्र आदि पीले रङ्गके होते हैं, हलीमक रोगमें सारा शरीर व मलमूत्र आदि पीले रङ्गके होते हैं ( यह हलीमक कामलाकी ही प्रबल अवस्था है )।

**चिकित्सा**-पाण्डु कामला आदि रोगोंमें पुराने गुड़के साथ नित्य प्रति हरड़का चूर्ण सेवन करानेसे विशेष लाभ होता है। गिलोयके पत्तोंको पीस कर मट्ठे के साथ सेवन करानेसे कामला ( कमलवायु ) रोगमें उपकार होता है। कामला रोगीके नेत्रोंमें गुमाके पत्तोंके रसका

अंजन लगानेसे अथवा हल्दी, गेरूमिट्टी व आमलेके चूर्णका अंजन लगानेसे भी कामला रोग नष्ट होजाता है। ग्वार पट्ठे के रसकी नास लेनेसे भी कामला रोगकी शान्ति होजाती है।

**फलत्रिकादि पाचन**—हरड़, बहेड़ा व आमला, गिलोय, अडूसा कुटकी, चिरायता व नीमकी छाल इन आठ द्रव्योंका काढा बनाकर शहद मिलाकर सेवन करानेसे पाण्डु, कामला हलीमक व कुम्भ कामला (कामलाकी अतिप्रवृद्ध अवस्थाको ही कुम्भ कामला कहते हैं) का निवारण होता है।

## रस-प्रयोग।

**नवायसलौह व पुनर्नवादिमण्डूर**—ये दोनों औषधियाँ पांडु कामला व हलीमक रोगीके लिए सर्वोत्तम गुणदायक हैं। अनुपान घी व शहद या पित्तपापड़ेका रस आदि।

यहाँ पर वक्तव्य-ज्वर प्लीहा व यकृत् आदि जिन रोगोंसे पाण्डु, कामला आदि रोग उत्पन्न हुए हों, यदि पाण्डु, कामला आदिके साथ वे रोग विद्यमान हो, तो इन रोगोंके साथ२ उन रोगोंकी भी चिकित्सा करना चाहिए।

## उदर (जठर) रोग।

तिल्ली व जिगरकी विकृतिसे पित्तके दुष्ट होजानेके कारण जैसे पाण्डु कामला आदि रोग हो जाते हैं, उसी तरह तिल्ली व जिगर के अधिक बढ जानेसे उदर रोग भी हो जाता है। पेटमे पानीका इकट्ठा होना व मल आदिके संचयसे भी उदररोग हो जाता है। सब तरहके उदर रोग कुछ साध्य व असाध्य होते हैं।

**चिकित्सा**—तिल्ली व जिगर जनित उदररोगमें तिल्ली जिगरकी चिकित्सा करनी चाहिए। जलोदरमें जैसे ही जल इकट्ठा होने लगे उसी समय अस्त्रचिकित्सा (ट्यूब) से जल बाहर निकाल देना चाहिए और कपड़ेसे पेटको कसके बाँध रखना चाहिए। शोथोदर

रोगमें सब तरह शोथ रोगकी चिकित्सा करना चाहिए। इसमें स्वर्ण-पर्पटी व लौहपर्पटीका सेवन और नमक व जल बिल्कुल वर्जित करके केवल दूधके साथ अन्न सेवन करानेसे विशेष लाभ होता है। शोथोदर रोगमें गोमूत्रका पीना भी हितकर है। जलोदर रोगमें भी केवल दूध व अन्नका सेवन कराना सबसे अच्छा है। मल आदिके संचयके कारण उदर-रोग होनेपर तीक्ष्ण विरेचक औषधियोंसे विरेचन कराना चाहिए।

सब प्रकारके उदर रोगोंमें नित्य विरेचन प्रयोग करना चाहिए। गोमूत्रके साथ व दूधके साथ एरण्डका तेल सेवन कराना चाहिए, अथवा एरण्ड तेलकी पिचकारी देकर विरेचन कराना चाहिए। निशोथकी जडकी छालका चूर्ण आधा तोला व १ तोला मात्रामें समान भाग चीनी मिलाकर सेवन कराना चाहिए।

## रस-प्रयोग।

**जलोदरारि व इच्छाभेदीरस**—उदर रोगकी सबसे उत्तम औषधि है। इनसे विरेचन होकर रोगकी शान्ति हो जाती है। इच्छा-भेदी रसका सेवन कर जितने गण्डूष ( चुल्ली ) चीनीके शर्वतका सेवन कराये जाँय, उतने ही दस्त उतरते हैं। अनुपान-जल, चीनीका शर्वत। पथ्य-दही चावल।

## ज्वरातिसार ( बुखारके साथ दस्त )।

अब यहाँ पर प्रसङ्गवश ज्वरातिसार रोगकी चिकित्सा आदिका वर्णन करते हैं, सुनो—

यदि पित्तज्वरमें पित्तजन्य अतिसार, अथवा अतिसार रोगमें ज्वर होजाय, तो दोष दूष्योंके समभावके कारण इस मिलित रोगद्वयको ज्वरातिसार नामसे कहते हैं।

केवल ज्वर व केवल अतिसारमें जो २ औषधियाँ कही गई हैं, ज्वरातिसारमें उन २ औषधियोंको मिला कर प्रयोग करानेसे कुछ

उपकार नहीं होता। क्योंकि-ये परस्पर विरुद्ध होती हैं अर्थात् प्रायः ज्वरनाशक औषधियाँ दस्तावर और अतिसारकी औषधियाँ धारक (मलको बाँधने वाली) होती हैं, इस लिए ज्वरनाशक औषधिके सेवन करानेसे अतिसारकी वृद्धि और अतिसार—नाशक औषधिके सेवन करानेसे ज्वरकी वृद्धि होना सम्भव है। इस लिए ऐसा विधान अवलम्बन करना उचित होता है, कि-जिससे इन दोनोंमें समान लाभ हो, ऐसी औषधि और पथ्य इस ज्वरातिसार रोगमें प्रयोग करना चाहिए।

प्रश्न-गुरुवर! तब कौनसी औषधि व पथ्य ज्वरातिसार रोगमें प्रयोग की जावें?

उत्तर-ज्वरातिसार रोगीके लिए सबसे पहले लंघन व पाचन औषधियाँ अर्थात् जिससे आमरसका परिपाक हो प्रयोग करना चाहिये। क्योंकि-ज्वर व अतिसार ये दोनों रोग प्रायः आमरसके सम्बन्धसे हुआ करते हैं।

लंघन व पाचन औषधिसे आमरसका परिपाक होनेपर ज्वराति-सारका लाघव होता है। उपयुक्त मात्रामें लंघन (उपवास) कराने के अनन्तर जब रोगीको खूब भूख लगने लगे, तब उसको सिंघाड़ेका आटा, बार्ली, अरारोट व दलिया आदि हलके पथ्य देने चाहिये।

पृष्ठपर्णी, खरेटी, बेलगिरी, सोंठ, नीलोफर व धनिया इन छै द्रव्योंके साथ चावल आदि की पेया बनाकर केवल यह पेया अथवा अनारका रस व कागजी नीबूका रस मिलाकर कुछ खट्टा करके पिलाना चाहिए। यह पेया इस रोगमें आहार और औषधि दोनोंका काम करती है।

**पेया बनाने की विधि**—रोगी तन्दुरस्तीमें क्षुधाके अनुसार जितने परिमाण चावल खा सके, उसके चौथाई भाग चावल लेकर उनको अधकुटा कूटके ११ गुने पानीमें पकाना चाहिए। चावल गल-कर जब बिल्कुल पानीके साथ मिलकर एकजीव होजावें, तब चूल्हेसे उतार देना चाहिए।

ज्वरातिसारकी आमावस्थामें "पाठादि पाचन"–पाठा ( जल-जमनी ), इन्द्रजौ, चिरायता, नागरमोथा, पित्तपापड़ा, गिलोय व सोंठ इनका काढ़ा सेवन कराना चाहिए।

यदि पेटमें दर्द हो और कफके लक्षण अधिक दिखाई दें, तो "धान्यशुण्ठिपाचन"–धनिया व सोंठका काढ़ा बनाकर सेवन करनेको देना चाहिए। ये दोनों समान आमदोषके नाशक व अग्निको दीप्त करते हैं।

यदि पेटमें दर्द, मलपिच्छिल ( चिपचिपा ) व मलकी विबद्धता ( कब्ज ) अथवा मलके साथ रक्त निकलना ये सब उपद्रव हों, तो "ह्रीबेरादि पाचन"–नेत्रवाला, अतीस, नागरमोथा, बेलगिरी, सोंठ व धनिया इन औषधियोंका काढ़ा प्रयोग करना चाहिए। इस अवस्थामें "उशीरादि पाचन" भी लाभदायक होता है।

**उशीरादि–पाचन**–खश, नेत्रवाला, नागरमोथा, धनिया, सोंठ, नाराहक्रान्ता, धायके फूल, लोध व बेलगिरी।

ज्वरातिसारमें यदि वमन व वमनवेग, अरुचि, प्यास व दाह हो, तो "गुडूच्यादि पाचन"–गिलोय, अतीस, धनिया, सोंठ, बेलगिरी, नागरमोथा, नेत्रवाला, पाठा, चिरायता, कुड़ेकी छाल, लाल चन्दन, खश, व पद्माख इनका काढ़ा ठंडा करके सेवन कराना चाहिए

ज्वरातिसार रोगमें "व्योषादिचूर्ण"–व्योष ( सोंठ, मिर्च, पीपल ), इन्द्र जौ, नीमकी छाल, चिरायता, भंगरा, चीतेकी जड़, कुटकी, पाठा, दारुहल्दी व अतीस इन बारह द्रव्योंका प्रत्येकका चूर्ण समान भाग और सब चूर्णके बराबर कुड़ेकी छालका चूर्ण एक साथ अच्छी तरहसे मिलाकर तण्डुलोदक ( चावलोंके धोवन ) के साथ सेवन कराना चाहिए। मात्रा–१–४ माशा तक। इस व्योषादि चूर्णके सेवन करनेसे ज्वरातिसार, अतिसार, ग्रहणी व रक्तातिसार आदि रोगोंका निवारण होता है।

**बृहत् कुटजावलेह**—ज्वरातिसार रोगमें यदि मलके साथ खून गिरे, तो इसके सेवन करानेसे विशेष उपकार होता है। रक्तमिश्रित ज्वरातिसार रोगकी यह परमोत्तम औषधि है। अतिसार व ग्रहणी रोगमें भी यह प्रत्यक्ष फलदायक औषधि है। अनुपान—बकरीका दूध व चावलोंका धोवन। मात्रा—४ माशासे १ तोला तक।

## रस प्रयोग।

**सिद्धप्राणेश्वर**—इसके सेवन करनेसे प्रबल ज्वरातिसार व ग्रहणी आदि रोगोंका निवारण होता है। अनुपान—पानका रस। औषधि सेवनके अनन्तर गरम पानी पीना चाहिए।

**आनन्द भैरव रस**—यह अतिसार रोगकी सबसे उत्तम औषधि है। वृद्ध वैद्य इस औषधिको अतिसार रोगमें भी बड़े आदरके साथ व्यवहार करते हैं। अनुपान—भुने हुए जीरेका चूर्ण व शहद।

**कनकसुन्दर रस**—यह ज्वरातिसारकी प्रसिद्ध औषधि है। अनुपान—चावलोंके धोवनका पानी व शहद। खून भी गिरता हो, तो चौलाईका छिलका व सट्ठीके चावलोंको एक साथ पानीमें पीस कर उसका रस निकाल कर इस रसके साथ सेवन कराना चाहिए।

## अतिसार ( दस्त )।

प्रश्न—गुरुवर! अब जिज्ञासा करता हूँ, कि-ज्वरके सम्बन्धके बिना जो स्वतन्त्र अतिसार रोग हुआ करता है, उसकी उत्पत्तिका कारण क्या है? और उसके लक्षण व चिकित्सा क्या हैं?

उत्तर—आहार विहारके दोषसे अतिसार रोग उत्पन्न होता है अर्थात् अधिक रूक्षद्रव्य सेवन, अतिउष्ण व शीतल द्रव्य भोजन, गुरु पाक भोजन अति स्निग्ध (अधिक घी तेल वाले) द्रव्य, भोजन निरन्तर-भोजन निरन्तर अतितरल (पतले) द्रव्य भोजन अथवा पहिले किये हुये भोजनके जीर्ण होनेके पहिले ही पुनर्वार भोजन करना, असमय व अनियमसे भोजन करना, विरुद्ध भोजन ( जैसे दूध मछली

आदि एक साथ भोजन करना ) या कच्ची चीजें खाना, स्थावर विष ( संखिया आदि ) भोजन, मलमूत्र आदि का वेग रोकना, पेटमें क्रिमियोंका होना, और शीत ग्रीष्म आदि ऋतुओंके विपरीत होने आदि कारणोंसे वात आदि दोष कुपित होकर शरीरके रस रक्त आदि जलीय पदार्थोंको दूषित करके और वे दूषित रस, रक्त आदि पाचक अग्निको मन्द करके अपक्व मलके साथ मिलकर गुह्यमार्ग ( पाखाने के रास्ते ) अधिक मात्रामें निकलते हैं। अति निःसरणके कारण पण्डितोंने इसका नाम अतिसार रक्खा है।

**वातातिसारमें**—मल लालमायल, रूक्ष व फेनयुक्त होता है, मल निकलनेके समय गुदामें अधिक वेदना व शब्द होता है और थोड़ा २ करके बार २ मल निकलता है।

**पित्तातिसार रोगमें**—मल पीला, नीला व लाल रंगका होता है। इसमें दाह, प्यास, मलद्वारमें जलन व गुह्यनाड़ीमें क्षत ( घाव ) हो जाता है।

**कफज अतिसारमें**—मल सुफेद रंगका गाढा, कफ मिश्रित व आमगन्ध युक्त होता है और रोगीके शरीरमें रोमाञ्च होता है।

**त्रिदोषज अतिसारमें**—वात आदि तीनों दोषोंके लक्षण मिलित रहते हैं। अधिकतः इसमें मल सुअरकी चर्बी व मांस धोनेके पानीके समान होता है। यह त्रिदोषज अतिसार अतिकष्टसाध्य होता है।

पैत्तिक अतिसार उत्पन्न होनेपर वा उत्पन्न होनेके पहिले यदि पित्त बढ़ाने वाली चीज अधिक सेवन की जावें, तो **रक्तातिसार रोग** हो जाता है। रक्तातिसारमें अधिक खून गिरता है। पित्त दुष्टिके कारण पित्तातिसार व रक्तातिसारमें गुह्यनाड़ीमें घाव होजाता है। इस अवस्थामें भी ठीक तरह चिकित्सा न करानेसे वह घाव क्रमशः समस्त नाड़ीमें व्याप्त हो जाता है। इससे अधिक मात्रामें रक्त व पीप निकलता है। उपेक्षा करनेसे नाड़ीको मांस पककर मलके साथ बह कर गिर जाता है।

अतिसार प्रवाहिका ( पेचिस ) व संग्रहणी ये एक प्रकृतिके रोग हैं अर्थात् तीनों रोग ही आमाशयसमुत्थ ( आमाशयसे होते हैं ) और अग्निमान्द्य ही इन सब रोगोंका सबसे प्रधान कारण होता है। इनका आमलक्षण व पक्व लक्षण एक प्रकार और चिकित्सा भी एक ही प्रकार की होती है। इस लिये यहाँ पर अतिसारके साथ ही प्रवाहिका व ग्रहणी रोगके लक्षण व चिकित्सा आदि का उपदेश देते हैं।

## प्रवाहिका ( पेचिस, मरोड़ ) रोग।

अतिसार व प्रवाहिका रोगमें भेद यह है, कि-अतिसार रोगमें रस-रक्त आदि विविधद्रव पदार्थोंके साथ मिश्रित होकर मल निकलता है और प्रवाहिका रोगमें केवल कफके साथ मिश्रित मल निकलता है। इस रोगमें अत्यन्त प्रवाहण अर्थात् कुन्थन होता है, इसीलिए विद्वानोंने इसका नाम प्रवाहिका रखा है।

**वातज प्रवाहिकामें**-पेटमें अधिक ऐंठन, खिचाव व मरोड़ आदिकी भाँति दर्द होता है। **पित्तज प्रवाहिकामें**-गुह्यदेशमें अधिक जलन और **कफज प्रवाहिकामें**-अधिक कफ ( आम ) निकलती है तथा **रक्तज प्रवाहिकामें**-रक्त व कफके साथ मिश्रित मल निकलता है।

## ग्रहणी ( भरफूटके दस्त ) रोग।

अतिसार रोगके अधिक दिन तक रहने पर अथवा अतिसारके आराम होने पर अग्निके निर्बल रहते हुए कुपथ्य सेवन करनेसे पाचक अग्निके अधिक दुर्बल होने पर ग्रहणी नामक नाड़ीको अधिक दुर्बल कर देती है ( ग्रहणी नाड़ी पाचक अग्निके आश्रयस्थानको कहते हैं ) ग्रहणी नाड़ीके दूषित होने पर भोजन किया हुआ अन्न अपक्व अवस्थामें अथवा अति दुर्गन्ध युक्त पक्वावस्थामें बारम्बार निकलता है। इस रोगमें कभी मल बंधा हुआ, कभी तरल ( पतला ) होता है और

कभी पेटमें दर्द होता है। ग्रहणी नाड़ीके दुष्ट होने पर यह रोग हुआ करता है, इस लिए विद्वानोंने इसको ग्रहणी नामसे कहा है।

वातज ग्रहणीमें—भोजन किया हुआ आहार अति कष्ट व अम्ल-रस होके पकता है। इसमें शरीर रूखा, कण्ठ व मुख शुष्क, तृष्णा, नजर कमजोर, कानोंमें शब्द और उरु व अंघाओं तथा गर्दनमें निरन्तर दर्द, दस्त व वमन, हृदयमें दर्द, मधुर आदि षड्रस भोजनमें अति लालसा, मनका अवसाद और कास व श्वास ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं। इस रोगमें रोगी कभी पतला, कभी सूखा और कभी फेनयुक्त अपक्व मल शब्दके साथ अति कष्टसे बारंबार व विलंबसे त्याग करता है।

पित्तज ग्रहणी रोगमें—दुर्गन्ध युक्त खट्टे डकार छाती और गलेमें दाह, अरुचि व प्यास होती है। मल बहुत पतला तथा नीला व पीले रंगका होता है। रोगीका शरीर भी पीला पड़ जाता है।

श्लेष्मज ग्रहणी रोगमें—भोजन किया हुआ आहार अतिकष्टसे परिपाक होता है, मुख कफसे लिपा हुआ व मधुर स्वाद लिए होता है। रोगी देखनेमें बहुत दुर्बल नहीं होता, पर फिर भी कुछ दुबला और आलसी होजाता है। इस रोगमें वमनवेग व वमन, अरुचि, कास, निष्ठीवन, मुखसे पानी गिरना, पेटमें सख्ती व भारीपन, विकृत व मधुर उद्गार ( डकार ), शरीरका ढीलापन, स्त्रीमें हर्षाभाव ( स्त्री विषयकी अनिच्छा) और आम व कफयुक्त मलका गिरना ये सब लक्षण होते हैं।

त्रिदोषज ग्रहणीरोगमें वात आदि तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं।

"संग्रह-ग्रहणी" नामका एक और प्रकारका ग्रहणी रोग है, उसमें किसीको एक महीनेके अनन्तर, किसीको १५ दिनके अनन्तर किसीको १० दिनके बाद और किसी २ को नित्यप्रति, शीतल स्निग्ध, अधिक परिमाणमें द्रव व गाढा अपक्वमल दस्तके रास्ते निकलता है अर्थात् टूटा हुआ ( भरफूट ) दस्त होता है। दस्त निकलनेके समय बहुत बड़ा शब्द होता है और कमरमें थोड़ासा दर्द मालूम होता है।

"घटीयन्त्र" नामक और एक प्रकारका ग्रहणी रोग है, उसके

लक्षण-रोगीके लेटने पर दोनों पार्श्वोंमें शूलके समान दर्द और एक घड़ेसे दूसरे घड़ेमें पानी डालने पर जैसा शून्य शब्द होता है, रोगीके पेटमें इस प्रकारका शब्द होता है। यह रोग अति-दुःसाध्य होता है।

अब आगे अतिसार, प्रवाहिका व ग्रहणी रोगकी चिकित्सा क्रम व चिकित्सा कहते हैं, सुनो—

**चिकित्सा क्रम**—ऊपर कहे हुए तीनों रोगोंकी चिकित्सा करनेमें सबसे पहिले आम व पक्व लक्षण जानना आवश्यक होता है। क्योंकि आम-अवस्था व पक्व-अवस्थाका क्रम अवलम्बन करनेके अतिरिक्त इनकी चिकित्सा ही नहीं होसकती। यदि आमपक्व क्रमको त्याग करके चिकित्सा की जाय अर्थात् आमातिसारमें धारक ( बद्धक ) औषधि प्रयोग की जावे, तो दुष्ट मल आदिके अवरोध ( रुकने ) के कारण शोथ, पाण्डु, गुल्म, ज्वर व प्लीहा आदि विविध प्रकारके रोग उपस्थित हो सकते हैं। इस लिए इस अवस्थामें किसी तरह भी धारक औषधि प्रयोग न करना चाहिए। परन्तु यदि अधिक परिमाणमें मल का भेद होना व दोष प्रकोपकी अधिकता देखनेमें आवे, रोगी अति-दुर्बल व क्षीणधातु हो, तो आमावस्थामें भी धारक औषधि प्रयोगकी जाती है। क्योंकि-इस दशामें केवल पाचक औषधि देते रहनेसे अधिक मलके निकलनेके कारण रोगीकी मौत तक होजाती है। इस लिए ऐसी अवस्थामें आम-मल भी रोकना होता है।

**आम लक्षण व पक्व लक्षण**—ऊपर कहे हुए तीनों रोगोंमें मल जब तक अधिक दुर्गन्धित व पिच्छिल रहे और जलमें डालने पर डूब जाय, तब तक आम ( कच्चा ) जानना चाहिए। जब इसके विपरीत लक्षण दिखाई दें अर्थात् मल दुर्गन्ध रहित, अपिच्छिल व जलमें तैरने लगे और कोष्ठ व शरीरमें लघुता ( हलकापन ) हो जाय, तब पक्व समझना चाहिए।

अतिसार, प्रवाहिका व ग्रहणी रोगकी साधारणतः **चिकित्सा इस क्रमसे** अवलम्बन करना चाहिए, कि-यदि रोगी बलवान् हो,

तो इस अवस्थामें लंघन कराना सबसे उत्तम है। लंघनसे अतिप्रवृद्ध दोषका भी परिपाक व प्रशम होजाता है। ये सब रोग आहार आदिके दोषसे होते हैं। इस लिए पथ्य आदिके प्रति दृष्टि रखना विशेष आवश्यक होता है, सुपथ्य ही इन रोगोंकी परम औषधि है। इस लिए अन्यान्य औषधियोंके वर्णनके पहिले सुपथ्यका वर्णन किया जाता है, सुनो—

रोगीको पानी बहुत थोड़ा २ पिलाना चाहिए। यदि अधिक प्यास हो, तो नागरमोथा व नेत्रबालेको पानीमें पका कर तथा कोरी हाँडीमें रखके ठंडा कर थोड़ा २ करके पिलाना चाहिए। क्षुधा शान्तिके लिए सिंघाड़ेका आटा, जौका दलिया या मण्ड अथवा बार्ली व अरारोट आदि लघुपाक द्रव्य भोजन करनेको देना चाहिए। साधारण दूध न देकर बकरीका दूध देना चाहिए। इन सब रोगोंमें तक्र ( मट्ठा ) विशेष लाभदायक होता है। रोग यदि बहुत प्रबल न हो और रोगीको भूख लगी हो, तो पुराने बारीक चावलोंका अन्न, मसूरकी दालका यूष, परवल, बैंगन, गूलर, कच्चा केला, केलेका फूल आदिकी भाजी देना चाहिए। खट्टी चीजोंमेंसे कागजी निम्बू व नारंगी, आमकी पोली व पुरानी इमली दी जासकती है। कच्चा बेलका फल भूभलमें भून कर, बेलका मुरब्बा, अनार, बिहिदाना, कसेरू, सिंघाड़ा और मीठी चीजोंमेंसे थोड़ासा मिश्री व बताशा अतिसार आदि रोगोंमें पथ्य है।

**अतिसारकी विशेष चिकित्सा**—आमातिसारमें आमशूल व मलकी विबद्धताको निवारणके लिए और दोषका परिपाक व अग्निकी दीप्तिके लिए "**धान्यपंचक पाचन**"—धनिया, सोंठ नागरमोथा, नेत्रबाला व बेलगिरि इनका काढ़ा देना चाहिए।

यदि पैत्तिक अतिसार हो, तो ऊपर लिखे काढ़में सोंठ न डालकर अन्य चार चीजोंका काढ़ा देना चाहिए। इस काढ़ेका नाम "**धान्य चतुष्क**" कहते हैं।

आमातिसारमें यदि पेटमें दर्द, स्तब्धता और मलका विबन्ध हो, तो "**कलिङ्गादि पाचन**"—कलिङ्ग ( इन्द्र जौ ), अतीस, हींग, हरड़,

सौंचल नमक व बच इनका काढ़ा प्रयोग करना चाहिए। ये तीनों पाचन अग्निदीप्त करने वाले व पाचक हैं।

ऊपर लिखे पथ्य व पाचन आदिके द्वारा आमदोषकी शान्ति होने पर धारक ( स्तम्भक ) औषधि व्यवस्था करना चाहिए। जैसे-यदि अतिसारमें अधिक पतला मल निकले, तो "कञ्चटादि पाचन"-कञ्चट ( गंगापालक ) के पत्ते, अनारके पत्ते, जामुनके पत्ते, सिंघाड़ेके पत्ते, वेलगिरि, नेत्रवाला, नागरमोथा व सोंठ इनका काढ़ा प्रयोग करना चाहिए। इसके सेवनसे अति वेगवान् अतिसार भी आराम होजाता है।

वातज अतिसारमें 'वचादि कषाय'-बच, अतीस, नागरमोथा व इन्द्रजौ इनका काढ़ा प्रयोग करना चाहिए।

पित्तज अतिसारमें-"कट्फलादि पाचन"-कायफल, अतीस, नागरमोथा, कुड़ेकी छाल व सोंठ इनका काढ़ा व्यवस्था करना चाहिए।

श्लेष्मज अतिसार में "पथ्यादि पाचन"- हरड़, चीतेकी जड़, कुटकी, पाठा, बच, नागरमोथा, इन्द्रजौ व सोंठ इनका क्वाथ अथवा कल्क बनाकर सेवन कराना चाहिए।

पित्तश्लेष्म-अतिसारमें "मुस्तादि पाचन"—नागरमोथा, अतीस, मुर्वाकी जड़, बच व कुड़ेकी छाल इनका क्वाथ शहद मिलाकर सेवन कराना चाहिए।

वातश्लेष्मातिसारमें "चित्रकादि पाचन"-चीतेकी जड़, अतीस, नागरमोथा, खरैंटी, वेलगिरि, सोंठ, कुड़ेकी छाल, इन्द्रजौ व हरड़ इनका काढ़ा व्यवस्था करना चाहिए।

वातपित्तातिसारमें "कलिङ्गादिपाचन"—इन्द्रजौ, बच, नागरमोथा, देवदारु व अतीस इनका क्वाथ अथवा कल्क बनाकर तण्डुलोदक ( चावलोंके धोवन ) के साथ व्यवस्था करना चाहिए।

त्रिदोषज अतिसारमें "समङ्गादि पाचन"—समङ्गा (खरैंटी, किसी २ के मतसे वाराहक्रान्ता), अतीस, नागरमोथा, सोंठ, नेत्रवाला, धायके फूल, इन्द्रजौ व वेलगिरि इनका काढ़ा व्यवस्था करना चाहिए

**सेलखड़ी आदि प्रयोग**—सेलखड़ी ४ तो०, मिश्री ४ तो०, गोंद बबूल ४ तोला, सौंफ २ तोला व दालचीनी २ तोला इन सबका मोटा २ चूर्ण बनाकर रातको किसी मिट्टीके वर्त्तन में १ सेर पानीमें भिगोकर रखना चाहिए। दूसरे दिन प्रातःकाल उसके ऊपरका निथरा हुआ जल थोड़ा २ करके पिलाना चाहिए। इस प्रयोग के व्यवहार करनेसे अतिप्रबल अतिसार भी आराम होजाता है।

आमलोंको पानीमें भिगोकर सिलबट्टेसे बारीक पीसकर नाभिके चारों ओर गोल आलवाल ( क्यारी ) सा बनाकर उसके बीचमें अद्रक का रस भरके रखनेसे नदीवेगके समान भयानक अतिसार भी थम जाता है।

धीमी आँच पर अफीमको भूनकर उसको १-॥-। रत्ती मात्रामें बकरीके दूधके साथ सेवन करानेसे प्रबल अतिसार भी आराम होता है पक्कातिसारमें इसके समान और कोई दूसरी धारक औषधि नहीं है।

**रक्तातिसारचिकित्सा**—रक्तातिसारमें यदि आम, शूल व मलका निबन्ध हो, तो कच्चा बेल भूभलमें भूनकर गुड़के साथ सेवन कराना चाहिए।

शहद, चीनी व लालचन्दन ( घिसा हुआ ) समान भाग लेकर चावलोंके धोवनके साथ सेवन करानेसे रक्तातिसार, रक्तपित्त और दाह, तृष्णा आदि उपद्रव शान्त होते हैं।

चौपतिया ३ माशा, कालीमिर्च २। ३ दाने और जीरा सुफेद १०। १२ दाने लेकर बासी पानीमें पीस कर ३। ४ दिन तक सेवन करानेसे रक्तातिसार व रक्तप्रवाहिका आराम होजाती है।

आम, जामुन व आमलेके हरे पत्ते समान भाग लेकर बारीक कूटके इनका रस मधु व बकरीके दूधके साथ सेवन करानेसे रक्तातिसारका प्रशम होता है।

जंगली चौलाईकी जड़ २ माशा चावलोंके धोवनके साथ पीस कर उसमें थोड़ासा शहद व चीनी मिला कर सेवन करनेसे रक्तातिसार आराम होता है।

छिलके रहित काले तिलोंको बारीक पीस कर उसमें चौथाई भाग चीनी मिला कर बकरीके दूधके साथ पिलानेसे विशेष लाभ होता है।

बड़की जटा चावलोंके धोवनके साथ पीस कर लस्सीके साथ सेवन करानेसे भी रक्तातिसारका निवारण होता है।

अंकोल ( ढेरा ) की जड़ चावलोंके धोवनसे पीस कर आधा तोला व १ तोला परिमाण सेवन करानेसे सब प्रकारका अतिसार व ग्रहणी आराम होजाती है।

बबूलके हरे पत्ते पीस कर सेवन करनेसे भी विशेष उपकार होता है।

३ । ४ विशल्यकर्णी ( आयापान ) के पत्तोंका रस व ककरौंदेके पत्तोंका रस या इनके पत्तोंका क्वाथ सेवन करनेसे भी प्रबल अतिसार व रक्तका गिरना बन्द होजाता है।

शहद १ माशा, चीनी २ माशा, नागकेशर ४ माशा व ताजा मक्खन २ तोला एक साथ मिला कर सेवन करनेसे खूनका गिरना बन्द होजाता है।

रक्तातिसारमें "कुटजदाडिम्बकषाय"—कुड़ेकी छाल व कच्चे अनारका छिलका इन दोनोंका काढ़ा शहद मिलाकर देना चाहिए

रक्तातिसारमें यदि वेदना व आम हो, तो "कुटजादिपाचन"—कुड़ेकी छाल, अनारकी छाल, नागरमोथा, धायके फूल, वेलगिरि, नेत्र-बाला, लोध, लालचन्दन व पाढा इनका काढ़ा बनाकर शहद मिलाके सेवन कराना चाहिए।

**कुटजलेह**—यह रक्तातिसार रोगकी सबसे उत्तम औषधि है। बनानेकी विधि-१ सेर कुड़ेकी छालको ४ सेर पानीमे पकाकर १ सेर बाकी रहने पर उतार कर छान लेना चाहिए। इसके बाद १ जायफल को पत्थरमें घिसकर उसको इस काढ़ेमें मिला देना चाहिए। तदनन्तर इस क्वाथको पुनर्वार कोयलोंकी आँचमें पकाना चाहिए। जब पकते २ गाढ़ा लेहके समान होजाय, तब उतार देना चाहिए। इस लेहको ३

माशासे ६ माशा वा १ तोला तक सेवन करनेको देना चाहिए। इसके सेवन करनेसे असाध्य रक्तातिसार भी आराम होजाता है।

रक्तातिसार, रक्तप्रवाहिका, रक्तार्श ( खूनी बवासीर ), अधोगत रक्तपित्त व रक्तप्रदर रोगमें कुड़ेकी छालके प्रयोगसे विशेष लाभ होता है। इसके समान रक्तरोधक ( खून रोकने वाली ) चमत्कार औषधि बहुत कम देखनेमें आई है।

## प्रवाहिका चिकित्सा।

इस रोगमें पेटमें मरोड़ ( दर्द ) व मलका विबन्ध होने पर कच्चे बेलको भूनकर गुड़, तिलका तेल, पीपल व सोंठके चूर्णके साथ मिला कर सेवन कराना चाहिए।

कच्चे भुने हुए बेलकी गिरी व उसके समान छिलका निकाले हुए तिलका चूर्ण दहीका तोड़ मिलाकर उससे खट्टा करके व तेल घी आदि यथोपयुक्त स्नेह मिलाकर सेवन करानेसे प्रवाहिका रोग आराम होता है।

प्रवाहिकामें मलबद्ध ( कब्ज ) होने पर बहुत पुरानी इमली रातको पानीमें भिगोकर दूसरे दिन प्रातःकाल उसके ऊपरका निथरा हुआ पानी पीना चाहिए।

पुरानी इमली व बम्बईया केला एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे भी विशेषलाभ होता है।

कच्चे इमलीके पत्ते व कैथ बेलके पत्ते कूट कर रस निकाल कर इस रसको सेवन करनेसे भी प्रवाहिकामें लाभ होता है।

प्रवाहिका यदि बहुत प्रबल व कष्टदायक हो और ऊपर लिखित किसी औषधिसे भी उसमें कुछ लाभ न हुआ हो, तो विचार पूर्वक अतिसार रोगमें लिखे हुए पाचन आदि व्यवस्था करना चाहिए।

## ग्रहणी चिकित्सा।

अतिसार रोगके आमावस्था व पक्वावस्थामें जो छोटे २ लिङ्ग

प्रयोग और वात आदि दोषोंके भेदसे जो पाचन तजवीज करना बताया गया है, विचार पूर्वक वे सब प्रयोग व कषाय ग्रहणी रोगमें भी व्यवहार करने चाहियें।

**बृहत् गंगाधर चूर्ण**—यह ग्रहणी रोगकी सबसे उत्तम औषधि है। बेलगिरि, मोचरस, पाठा, धायके फूल, धनिया, वाराहक्रान्ता, सोंठ, नागरमोथा, अतीस, अफीम, लोध, कच्चे अनारके छिलके और कुड़ेकी छाल इन प्रत्येक औषधियोंका चूर्ण समान भाग और कज्जली दो भाग ( एक द्रव्यसे दूनी ) एक साथ मिला कर रखना चाहिए। इसीको बृहत् गङ्गाधर चूर्ण कहते हैं। मात्रा—१-४ माशा तक। अनुपान मट्ठा ( लस्सा ) व चावलोंके धोवनका पानी। इस औषधिके सेवन करनेसे प्रबल ग्रहणी, अतिसार और विविध प्रकारके अन्त्रोंके रोग और ज्वर भी आराम होता है।

किसी औषधिसे उपकार न होने पर "**मुस्तकादि मोदक वा कामेश्वर मोदक**" व्यवस्था करना चाहिए। मात्रा—२-६ माशा तक अनुपान-शीतलजल वा दूध। इन मोदकोंके सेवन करनेसे सबप्रकारकी ग्रहणी, अतिसार और इन रोगोंके सब प्रकारके उपद्रव आराम होजाते हैं।

उपयुक्त मात्रामें अफीम छुहारा या पिण्डखजूरके साथ मिला कर सेवन करानेसे अतिसार, ग्रहणी व रक्तका गिरना आराम होजाता है।

## रस प्रयोग।

**अग्निकुमार रस**—यह सब प्रकारके उदर रोगोंमें व्यवहार किया जाता है। रोगके अनुसार अनुपान व्यवस्था करना चाहिए।

**प्राणेश्वर रस व भुवनेश्वर वटी**—यह प्रवाहिका व अतिसार रोगकी परमोत्तम औषधि है। अनुपान—अनारका रस, अनारके पत्तोंका रस ( रक्तातिसारमें ) ककरोंदेके पत्तोंका रस, आयापानके पत्तों का रस, दूबका रस व बकरीका दूध।

**कर्पूर रस**—अधिक दस्त उतरते हों तो इस औषधिको प्रयोग करना चाहिए। इसके सेवन करानेसे प्रबल अतिसार ज्वरातिसार व

प्रबल ग्रहणी रोग आराम होता है। यह विसूचिका ( हैजा ) रोगके लिए भी उत्तम औषधि है। अनुपान-जल वा ऊपर कहे हुए अनार आदिका रस।

**ग्रहणी कपाट रस**—यह औषधि ग्रहणीकी प्रथम अवस्थामें प्रयोग करनी चाहिए। इससे आमजनित वेदना, प्रवाहिका व ग्रहणी रोग आराम होते हैं। अनुपान-अनारके पत्तोंका रस, नागरमोथेका रस आदि।

**ग्रहणीशार्दूल वटिका**-अति प्रबल ग्रहणी रोगमें यह औषधि व्यवस्था करनी चाहिए। अनुपान-बेलकी गिरीका काढ़ा और ग्रहणी कपाटमें कहे हुए अनुपान विचारपूर्वक प्रयोग करने चाहियें।

**संग्रहग्रहणी कपाटरस**—इसके व्यवहारसे संग्रहग्रहणी वा अग्निमान्द्य आदि रोग आराम होते हैं। अनुपान-वाताधिकमें घी व कालीमिर्चका चूर्ण, पित्ताधिकमें व शहद व पीपलका चूर्ण, कफाधिक में घी व त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल) का चूर्ण या भाँगका रस।

**महागन्धक**—बालकोंके अतिसार ग्रहणी व प्रवाहिका रोगके लिए यह सबसे उत्तम औषधि है। अनुपान-अनारका रस, अनारके पत्तोंका रस वा नागरमोथेका रस आदि।

**श्री नृपतिवल्लभ व बृहन्नृपतिवल्लभ रस**—विविध प्रकारके उपद्रवों सहित प्रबल अतिसार व ग्रहणी रोगमें इन दोनों औषधियोंको व्यवस्था करना चाहिए। इसके व्यवहारसे अतिसार, ग्रहणी व प्रवाहिका व उनके उपद्रव भी आराम होजाते हैं। अनुपान-पहिलेके समान

**दुग्धवटी, लौहपर्पटी, स्वर्णपर्पटी व पंचामृत पर्पटी**—बहुत दिनके पुराने अतिसार इस ग्रहणी रोगमें ये सब औषधियाँ व्यवहार की जाती हैं। शोथ आदि विविध उपद्रव युक्त अतिसार वा ग्रहणी रोगकी ये एक मात्र सर्वश्रेष्ठ औषधियाँ हैं। जब किसी भी औषधिसे कुछ लाभ नहीं होता, तब इनपर ही एकमात्र आधार रहता है।

**दुग्धवटी व पर्पटी सेवनका नियम यह है**— २ रत्तीसे

आरम्भ करके रोगीके अग्निबलके अनुसार क्रमशः १० रत्ती तक मात्रा बढ़ानी चाहिए। १० रत्तीसे अधिक मात्रा व्यवहार करना उचित नहीं है। रोग आराम होते दिखाई देने पर क्रमशः मात्रा कम करते आना चाहिए। प्रतिदिन प्रातःकाल औषधि सेवन कराना चाहिए। अनुपान—बेलके पत्तोंका रस व शहद। पथ्य मिश्री व चीनीके साथ केवल मात्र दूध व हलका अन्न (चावल) औषधि सेवन करनेके दिनोंमें नमक व जल बिल्कुल छोड़ देना चाहिए। प्यास लगने पर पानी के बदले दूध ही पीनेको देना चाहिए। यदि नमक व जल देना नितान्त आवश्यक हो, सेंधानमक कसेरूके रसमें भूनकर और पानी औटाकर थोड़ा २ करके देना चाहिए। कच्चे नारियल (डाब) का पानी भी दिया जा सकता है। शोथ आदि उपद्रव बहुत प्रबल हों, तो नमक व जल न देना ही अच्छा होता है। पर्पटीका सेवनका यही नियम है इसके अतिरिक्त सामान्य विधिसे भी पर्पटी सेवन कराई जा सकती है। उसमें नमक व जल वर्जित नहीं होता, पर फिर भी नमक व जल बहुत कम देना चाहिए। ऊपर लिखितके अनुसार सेवन करानेसे जितने शीघ्र आराम होता है, इससे वैसा नहीं होता।

शोथ आदि उपद्रव सहित ग्रहणी रोगमें "माणमण्ड" अत्युत्तम सुपथ्य है (शोथ रोगकी चिकित्सामें "माणमण्ड" बनानेकी विधि कही जावेगी) यह पथ्य और औषधि दोनोंका काम करता है। पर्पटी आदि औषधियोंको सेवन न करा कर भी यदि नमक व जल छुड़ाकर केवल मात्र "दूध चावल व माणमण्ड" खिलाया जाय, तो भी ग्रहणी व शोथ आदि उपद्रवोंका निवारण होता है।

ग्रहणि रोगमें रोगीके कृश होने पर "ग्रहणीमिहिरतैल" व्यवस्था करना चाहिए। इस तैलको सर्वाङ्गमें विशेष कर पेट पर अच्छी तरहसे मलना चाहिए। ग्रहणि रोगके लिए यह सबसे उत्तम तैल है।

## शोथ (सोजा) रोग।

ग्रहणी आदि रोगोंके पुराना होने पर उनमें शोथ होजाता है। इस

लिए प्रसङ्गवश यहाँ पर शोथकी चिकित्सा आदिका भी उपदेश करता हूँ। यहाँ पर विशेष वक्तव्य यह है-कि-केवल ग्रहणी आदिकी शेष अवस्था में ही शोथ होता हो, यह बात नहीं है, बल्कि ज्वर, प्लीहा, यकृत् व अर्श आदि और २ बहुतसे रोगोंकी शेष, अवस्थामें भी शोथ उपद्रवका आविर्भाव हुआ करता है। दूसरी बात यह, कि-दूसरे रोगों का उपद्रव न होकर स्वयं स्वतन्त्र शोथ रोग भी हुआ करता है। इस लिए शोथकी चिकित्सा करना हो, तो जिस रोगके साथ शोथ हो, उस रोगकी व शोथकी मिलित चिकित्सा करना चाहिए। किसी रोग का सम्बन्ध न रहने पर केवल शोथ रोगकी ही औषधि व्यवस्था करनी चाहिए।

**शोथ चिकित्सा**--शोथ रोगमें वायुके प्रकोपके लक्षण अधिक दिखाई देने पर "शुण्ठ्यादि पाचन"-सोंठ, पुनर्नवा, एरण्डकी जड़ व स्वल्प पञ्चमूल ( शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, बड़ी कटेली, छोटी कटेली व गोखरू ) इनका काढ़ा व्यवहार करना चाहिए।

**दशमूल पाचन**--सब प्रकारके शोथ रोगमें विशेषतः वातज शोथमें बहुत उपकारी होता है, क्योंकि-दशमूल वायु व शोथ दोनोंका नाश करता है।

**पुनर्नवाष्टक**-पुनर्नवा ( सांठ ), नीमकी छाल, पटोलपत्र, सोंठ, कुटकी, गिलोय, देवदारु व हरड़ इनका क्वाथ शोथकी परमोत्तम औषधि है।

**माणमण्ड**--पुराना माणकन्द १ भाग, पुराने चावलोंका चूर्ण २ भाग और जल मिश्रित दूध ४२ भाग एकत्र पकाकर मण्ड तैय्यार होने पर, यह मण्ड शोथ आदि रोगोंमें पथ्य देना चाहिए।

गुड़के साथ समान भाग अद्रक व सोंठ अथवा पीपल व हरड़ १ तोला मात्रामें सेवन करना आरम्भ करके क्रमशः मात्रा बढ़ाते रहने से, इससे शोथ आदि बहुतसे रोगोंका निवारण होता है।

## रस प्रयोग ।

**त्रिकट्वादि लौह**–यह शोथ रोगकी सर्वश्रेष्ठ औषधि है । अनुपान-दूध ।

**पञ्चामृत रस**–इसके सेवनसे सब प्रकारका शोथ और ज्वरातिसार आदि विविध उपद्रव प्रशमित हो जाते हैं। अनुपान-अद्रकका रस आदि ।

**दुग्धवटी व कल्पलता वटी**- ये शोथ रोगकी सर्वोत्तम हृष्ट फल महौषधियाँ हैं । पर्पटी सेवनके समान सेवन कराना चाहिए ।

**शुष्कमूलकाद्य तैल**–इस तेलके मर्दन करनेसे सब प्रकारका शोथ शान्त हो जाता है ।

प्रश्न—आपने पूर्व प्रसङ्गमें कहा है, कि–अग्निमान्द्य ही अतिसार आदि रोग त्रयका सन्निकृष्ट कारण है । अतः जिज्ञासा करता हूँ–कि–अग्नि किसे कहते हैं ? और अग्निमान्द्य रोग किस तरहका होता है ?

उत्तर—पित्तकी ऊष्माको ही अग्नि कहते हैं, पर यह ऊष्मा पित्तके सर्वाङ्गमें ओतप्रोत भाव ( व्याप्तरूप ) से रहती है, इस लिए पण्डितोंने पित्तको ही अग्निनामसे निर्देश किया है । कोष्ठमें "पाचक" नामका जो पित्त रहता है, उसकी ऊष्मासे ही भुक्त आहार परिपाकको प्राप्त होता है । वात आदिसे उसके विकृत होने पर भोजन किया हुआ आहार अच्छी तरहसे नहीं पचता । इस लिए विकृत अग्नि द्वारा अजीर्ण आदि रोग उत्पन्न होते हैं । अग्निमान्द्य व अजीर्ण आदि रोगोंका परस्पर कार्य कारण भाव सम्बन्ध होनेके कारण यहाँ पर अग्निमान्द्यके साथ २ अजीर्ण आदि रोगोंका भी उपदेश करूँगा सुनो–

**अग्नि**—वात आदि दोषोंकी अधिकताके अनुसार अग्नि तीन प्रकारकी होती है, जैसे-कफकी अधिकतासे "मन्द अग्नि" पित्तकी अधिकतासे "तीक्ष्ण-अग्नि" और वायुकी अधिकतासे "विषमाग्नि" होती है तथा वायु, पित्त व कफ इन तीनोंके समान रहने पर अग्नि

समान रहती है। जिस अग्निसे थोड़ा सा किया हुआ भोजन भी नहीं पचता, उसको मन्दाग्नि, जिस अग्निसे परिमित और अपरिमित आहार अनायास ही परिपाक हो जाता है, उसको तीक्ष्ण अग्नि और जिस अग्निसे भुक्त आहार कभी अच्छी तरहसे परिपाक हो और कभी न हो उसको विषमाग्नि कहते हैं। जिससे परिमित आहार अच्छी तरहसे पच जाय उसको समाग्नि कहते हैं। इन चार प्रकारकी अग्नि में से समाग्नि ही श्रेष्ठ होती है, यह रोगोंमें गण्य नहीं, इस समाग्नि की परिमित आहार विहार आदिसे रक्षा करनी चाहिए। इससे भिन्न तीन प्रकारकी अग्निको रोग जानना चाहिए। मन्दाग्निसे कफ रोग, तीक्ष्णाग्निसे पित्तरोग और विषमाग्निसे वातज रोगोंकी उत्पत्ति होती है। इस लिए इन तीन प्रकारकी अग्नियोंकी चिकित्सा करना आवश्यकीय होता है।

अजीर्ण तीन प्रकारका होता है, यथा–आमाजीर्ण, विदग्धाजीर्ण व विष्टब्धाजीर्ण। कफके प्रकोपसे आमाजीर्ण, पित्तके प्रकोपसे विदग्धाजीर्ण, और वायुके प्रकोपसे विष्टब्धाजीर्ण होता है। इन तीन प्रकारके अजीर्णका लक्षण नीचे क्रमशः वर्णन किया जाता है।

**आमाजीर्णमें**—शरीर भारी, मिचलाहट, गण्डस्थल व आँखों के कोयों ( गोलक ) में शोथ, जैसा भोजन किया हो, उसीके समान उद्गार ( डकार ) अर्थात् मधुर आदि जिस रससे विशिष्ट भोजन किया जाता है ठीक उसी रसके समान गन्ध आस्वाद वाला उद्गार ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं।

**विदग्धाजीर्णमें**—शरीरका घूमना, प्यास, पित्तज विविध वेदना, धुँयेके समान उद्गार, पसीना आना व दाह आदि लक्षण प्रकाश होते हैं।

**विष्टब्धाजीर्ण में**—पेटमें दर्द, अफारा, वातकृत विविध वेदना, मल व अधोवायुका निकलना और स्तब्धता ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं।

# विसूचिका विलंबिका व अलसक ।

ऊपर जिन तीन प्रकारके अजीर्णका उल्लेख कर आये हैं, इनसे ही अति भयानक विसूचिका, विलंबिका व अलसक रोगकी उत्पत्ति होती है । इस लिए प्रसङ्गवस यहाँ पर इनका लक्षण व चिकित्सा कहते हैं । जो अधिक भोजनके लोभी और भक्ष्याभक्ष्यसे अनभिज्ञ होते हैं, उनको ही ये भयानक रोग हुआ करते हैं ।

**विसूचिकाके लक्षण**—दस्त, उल्टी ( वमन ), अत्यधिक प्यास शरीरमें दाह, छातीमें दर्द, हाथ पैरोंका अकड़ना ( बाँयटे आना ), शिर दर्द, पेटमें शूल, शरीरका घूमना, कम्प, जंभाई आना, हिचकी ( हिक्का ), पसीना अधिक आना ( ठंडा ), पेशाब न उतरना आदि लक्षण विसूचिका ( हैजा, कौलरा ) रोगमें उपस्थित होते हैं । प्रबल विसूचिका रोगमें २ । ४ वार दस्त उतरने पर ही रोगीकी नाड़ी छूट जाती है । इस रोगमें शरीर सुई वेधनेके समान वेदनासे अधिक कष्ट पाता है, इसीसे विद्वानोंने इसका नाम विसूचिका रखा है ।

**विलम्बिकाके लक्षण**—इस रोगमें वायु व कफ द्वारा भोजन किया हुआ अन्न दुष्ट व अवरुद्ध होकर ऊपर व नीचे किसी भी रास्तेसे बाहर नहीं निकलता है । इससे सहजमें ही रोगी बहुत भयंकर अवस्थामें पहुँच जाता है । यह विलम्बिका अति दुश्चिकित्स्य रोग होता है ।

**अलसकके लक्षण**—कुक्षि ( नाभि देश ) में अधिक कष्टदायक अफारा होता है, रोगी वेदनासे छटपटाता है व मूर्छित हो जाता है, कुक्षी स्थानका वायु अधःप्रतिरुद्ध होकर ( उदान वायु नीचेकी तरफ से रुककर ) ऊपरकी तरफ अर्थात् छाती व गलेकी तरफ घूमता है । इस रोगमें मल व मूत्र विशेषरूपसे रुक जाते हैं । प्यास लगती है व डकार आती हैं । भुक्त-आहार नीचे व ऊपरके रास्ते बाहर न निकल सकनेके कारण अपक्व-अवस्थामें आमाशयमें ही अलसीभूत (निस्तेज) होकर पड़ा रहता है । इसी लिए इस रोगका नाम अलसक कहते हैं ।

अब नीचे अग्निमान्द्य आदि की चिकित्सा क्रमशः कही जाती है, सुनो—

**अग्निमान्द्य चिकित्सा**--सोंठका चूर्ण, गुड़ व सेंधानमक इनमेंसे किसी एक चोजके साथ हरड़का चूर्ण नित्य सेवन करनेसे अग्नि दीप्त होती है। मात्रा-३-६ माशा तक। प्रातःकाल जवाखार व सोंठका चूर्ण अथवा केवल सोंठका चूर्ण घीके साथ मिलाकर सेवन करनेसे क्षुधा वृद्धि होती है। मात्रा-३-६ माशा तक।

हींग व सौंचल नमकके साथ अन्नमण्ड ( चावलोंका मांड ) पीनेसे विषमाग्नि सम और मन्दाग्नि प्रदीप्त होती है।

प्रतिदिन भोजनसे पहिले अद्रक व नमक मिलाकर सेवन करनेसे अग्नि बढाती है और भोजनमें रुचि होती है।

**हिंग्वष्टक चूर्ण**--सोंठ, पीपल, कालीमिर्च, अजवायन, सेंधानमक, जीरा सुफेद, जीराकाला और हींग प्रत्येकका चूर्ण समान भाग मिलाकर भोजनके प्रथम ग्रासके साथ घीके साथ मिलाकर सेवन करनेसे अग्निकी वृद्धि व वातरोगोंका नाश होता है। किसी २ का मत है, कि-अन्नके ऊपर इस चूर्णको बुरकाकर और ऊपर घी मिलाकर तीन ग्रास अन्न पहिले भोजन करना चाहिए। मात्रा-१-३ माशा तक।

**अग्निमुखचूर्ण**—हींग १ भाग, वच २ भाग, पीपल ३ भाग, सोंठ ४ भाग, अजवायन ५ भाग, हरड़ ६ भाग, चीतेकी जड़ ७ भाग व कूठ मीठा ८ भागका चूर्ण बना कर रखना चाहिए। मात्रा-१-३ माशा। गरमपानीके साथ सेवन कराना चाहिए।

**भास्करलवण**—पीपल, पीपलामूल, धनिया, कालाजीरा सेंधानमक, विड्नमक, तेजपात, तालीशपत्र व नागकेशर इनमेंसे प्रत्येकका चूर्ण २ पल ( १६ तोला ) सौंचलनमक ५ पल, मिर्च, जीरा व सोंठ प्रत्येक १ पल, दालचीनी ४ तोला, इलायची ४ तोला, करकचनमक ८ पल, खट्टे अनारके दाने ( किसी २ के मतमें छिलके ) ४ पल व अम्लवेत २ पल इनका सबका बारीक कपड़ छन चूर्ण कर रखना। मात्रा-

१-३ माशा तक। अनुपान-जल व मट्ठा आदि। इन सब औषधियोंसे अग्निवर्धित व अग्निमान्द्य जनित रोग प्रशमित होते हैं।

स्तनदुग्ध ( आकेदूध ) में गूलरकी छाल २ तोला पीस कर सेवन करनेसे तीक्ष्णाग्नि प्रशमित होती है। तीक्ष्णाग्नि पुरुषको गुरुपाक द्रव्य ( मावा आदि ) बार २ खिलाना चाहिए, नहीं तो उस तीक्ष्णाग्निसे उसके शरीरके रस, रक्त आदि सब धातु व मल शोषित होकर क्षयको प्राप्त होजाते हैं।

इनके अतिरिक्त अजीर्ण चिकित्सामें अग्निवर्द्धक जो औषधियाँ कही जावेंगी, विचारपूर्वक उन सब औषधियोंको भी अग्निमान्द्य रोगमें प्रयोग करना चाहिए।

**अजीर्ण चिकित्सा**—"**आमाजीर्ण**"में पीपल, सेंधानमक व वच ( समान भाग ) गरम पानीसे पीस कर शीतल जलके साथ पीने को देना चाहिए। मात्रा—१-२ माशा तक आमाजीर्णमें यदि पेटमें शूल के समान दर्द हो, तो धनिया व सोंठका काढ़ा पिलाना चाहिए। इस के पीनेसे मूत्राशय भी शुद्ध होता है।

यदि प्रातःकालके समय अजीर्ण मालूम हो, तो हरड़, सोंठ व सेंधा-नमक शीतल जलके साथ सेवन कर, समय पर भोजन करे।

सोंठका चूर्ण वा पीपलका चूर्ण अथवा हरड़का चूर्ण या अनार-दानेका चूर्ण गुड़के साथ सेवन करानेसे आमाजीर्ण व मलबद्धता आराम होगा। इससे बवासीरमें भी लाभ होता है। मात्रा—२ माशा।

**विदग्धाजीर्ण चिकित्सा**—इसमें शीतल जल थोड़ा २ करके पीना हितकर है। इससे भुक्त किया हुआ अन्न शीघ्र ही परिपाक हो जाता है और जलके द्रव व शीतल होनेके कारण पित्त भी शान्त व नीचेकी तरफको प्रेरित होता है।

यदि भोजनके बाद ही भुक्तान्न विदग्ध होने लगे और उससे छाती, कोठ व गलेमें जलन हो, तो हरड़ व किसमिस एक साथ पीस कर चीनी व शहद मिला कर उपयुक्त मात्रामें सेवन करना चाहिए।

यदि धुआँ निकलनेके समान उद्गार निकले व प्रबल अजीर्ण हो, तो हरड़ व पीपलको काँजीके साथ पका कर इस काढ़ेको सेंधानमक मिला कर पकाना चाहिए।

**विष्टब्धाजीर्ण चिकित्सा**—विष्टब्धाजीर्णमें उद्गार रुका रहने पर पेट पर स्वेद देना चाहिए और नमक मिला हुआ जल पिलाना चाहिए। दिनमें सोना व उपवास करना विष्टब्धाजीर्णमें बहुत उत्तम है। सोंठ, पीपल, मिर्च, हींग व सेंधानमक एक साथ पीस कर इसका पेटके ऊपर लेप करके दिनमें सोनेसे सब प्रकारका अजीर्ण प्रशमित होता है।

हरड़, पीपल व सौंचलनमक समान भाग लेकर दहीकी लस्सी या गरम जलके साथ पीनेसे सब प्रकारका अजीर्ण, अग्निमान्द्य, अरुचि व उदराध्मान आदिका निवारण होता है।

## रसप्रयोग।

**अग्निकुमाररस, रामबाणरस, शङ्खवटी व महाशङ्खवटी**—ये औषधियाँ अग्निमान्द्य व अजीर्ण रोगकी सबसे उत्तम औषधियाँ हैं। अतिसार, प्रवाहिका व ग्रहणी रोगमें भी ये सब औषधियाँ प्रायः व्यवहार होती हैं। अनुपान—सौंफ, जल, हरड़का काढ़ा, अनार व अनारके पत्तोंका रस व नागरमोथेका रस आदि।

**विसूचिका चिकित्सा**—अधिक दस्त आते हों, तो उनको रोकनेके लिए पहिले "कर्पूररस" या अफीम वाली और कोई सी धारक औषधि व्यवस्था करना चाहिए।

वमन निवारणके लिए सुफेद चन्दन घिस कर २ तोला व आमले का रस ८ तोला मिला कर सेवन कराना चाहिए। बड़ी इलायचीके गोंददार दाने पानीमें घोल कर उस पानीको अथवा खशकी जड़को पानीमें भिगो कर इसके पानीको पिलानेसे भी वमन बन्द होजाता है। एक २ टुकड़ा बरफ मुखमें रखनेसे भी वमनका निवारण होता है।

शीघ्र ही वमनके निवारणके लिए यह सबसे उत्तम उपाय है। इसके अतिरिक्त वमन चिकित्सामें कही हुई औषधियों की भी विचारपूर्वक व्यवस्था करना चाहिए। सुफेद सरसोंके कल्कसे पेटके ऊपरी भागमें प्रलेप देनेसे भी वमनका निवारण होता है।

रोगीके प्याससे अतिकातर होने पर कर्पूरवासित सुशीतल जल थोड़ा २ करके बार २ पीनेको देना चाहिए। अथवा बरफका पानी पिलाना चाहिए। कबाबचीनीका चूर्ण १ तोला, मुलेठीका चूर्ण ६ माशा व कज्जली ३ माशा इन सबको शहदमें मिला कर थोड़ा २ करके चटानेसे भी पिपासाका निवारण होता है।

हिक्का ( हिचकी ) निवारणके लिए केलेकी जड़के रसका नस्य देना चाहिये। मुलेठीका चूर्ण शहदके साथ पीपलका चूर्ण चीनीके साथ अथवा गुड़के साथ सोंठके चूर्णका नस्य लेनेसे भी हिक्का थम जाती है। गला व मेरुदण्डमें राईका पलस्तर लगानेसे भी हिक्काका निवारण होता है।

मूत्रसञ्जननार्थ ( पेशाब लानेके लिए )–पत्थर चट्टेके पत्ते व कलमी-शोरा एक साथ पीस कर बस्तिदेश ( पेटके निचले हिस्सेमें ) लेप करना चाहिए।

पेटमें दर्द होने पर दर्दकी जगह पर तार्पीनका तेल मल कर सेकना चाहिए।

हाथ पैरोंके अकड़ने पर या हाथ पैरोंके शीतल होने पर क्रमशः सेकना चाहिये। अङ्गोंके शीतल होने पर स्वेद ( सेक ) देनेके अतिरिक्त और कोई दूसरी औषधि नहीं है। काँजी व तिलके तेलके साथ कूठ व सेंधा नमक पीस कर और शील गरम करके मालिस करनेसे हाथ पैरोंकी अकड़न दूर होजाती है।

अधिक पसीना निकलने पर अबीर व सोंठका चूर्ण शरीर पर मसलना चाहिए। प्रवालभस्म ( २। १ रत्ती ) शहदके साथ चटानेसे भी पसीना रुक जाता है।

शिरका दर्द दूर करनेके लिए-मस्तक पर अतिशीतल जलकी पट्टी लगाना चाहिए।

रोगीके हिमाङ्ग ( ठंडा ) व इन्द्रियोंके क्षीण होने पर "मृतसंजीवनीसुरा" इसके न मिलने पर ब्राण्डी ८। १० बूँद करके पानीमें मिला कर २। ३ घण्टेके अन्तरसे खिलाना चाहिए। शहदके साथ "चन्द्रोदयमकरध्वज" व्यवस्था करना चाहिये। कस्तूरी १ वा २ रत्ती आधरत्ती कपूरके साथ रगड़ कर शहदके साथ २। ३ घण्टेके अनन्तर सेवन कराना चाहिए।

विसूचिकाकी शेष अवस्थामें प्रायः ही 'विकार' उपस्थित होजाता है। विकारके उपस्थित होने पर विकारकी चिकित्सा करनी चाहिए।

**विसूचिका विध्वंस रस**—विकारकी अवस्थामें इस महौषधिके प्रयोगसे विशेष लाभ होता है। अनुपान—पानका रस व शहद आदि।

**विलम्बिका व अलसक रोग चिकित्सा**—जससे वायु का अनुलोम हो और मल मूत्र उतरने लगे विलम्बिका व अलसक रोगकी यह ही प्रधान चिकित्सा है।

एरण्ड तैलकी पिचकारी ( ऐनिमा ) प्रयोग कर विरेचन कराना चाहिए।

टबको गरम पानीसे भर उसमें रोगीको बैठा देना चाहिए।

रोगीके पेट पर स्वेद ( सेक ) देना चाहिए। जौ व जवाखारके चूर्णको मट्ठा ( तक्र ) के साथ मिलाकर व गरम करके इससे स्वेद देना चाहिए अथवा पेट पर लेप कर देना चाहिए। जौका चूर्ण १ पाव और जवाखार आधपाव,, खट्टा मट्ठा ४ सेर मिलाकर पकाना खूब अच्छी तरह खौल जाने पर उसको किसी मटकेमें भर कर उस घड़ेसे पेट पर स्वेद देना चाहिए।

देवदारु, वच, कूठ, सौंफ, हींग व सेंधा नमक इन सबको कांजीमें पीस कर पेट पर लेप करना चाहिए।

यदि रोगी बलवान् हो, तो अलसक रोगमें सबसे पहिले नमक

मिलाकर गरमजल पिलाकर वमन कराना चाहिए। इस प्रकारकी चिकित्सासे यदि भाग्यवश वायुका अनुलोम व मलमूत्र उतरने लगे, तो अच्छा समझना, नहीं तो बड़ी विपत्तिका सामना उपस्थित जानना वात आदिके अनुलोम होने पर अजीर्ण चिकित्सामें कही हुई औषधियाँ व्यवहार करना चाहिए।

## क्रिमि ( चुरने ) रोग।

अजीर्ण रोगका वर्णन कर चुके हैं, अब कार्यकारणसम्बन्ध होनेके कारण अर्थात् अजीर्णसे कृमियोंकी उत्पत्ति होती है और क्रिमिरोगके होने पर अजीर्ण होजाता है। इसलिए अब यहाँ पर क्रिमिरोगके लक्षण व चिकित्सा आदिका उपदेश किया जाता है, सुनो-

**क्रिमिके लक्षण**—पेटमें क्रिमियोंके उत्पन्न होने पर मुखसे पानी बहना, नाक बहना, अरुचि, अजीर्ण, अग्निमान्द्य, दिलमिचलाना, वमन, रोमाञ्च, दाँतोंका सिड़ सिड़ करना, निद्रावस्थामें दाँत चवाना, नाकमें खुजली, छींक आना, शरीरका दुबलापन, विवर्णता व अवसन्न होना आदि लक्षण होते हैं।

क्रिमिके ज्वर, अतिसार, शूल, शिरोरोग, नेत्ररोग, हृद्रोग, पाण्डु-रोग तथा दाद, खाज आदि बहुतसे रोग उत्पन्न होते हैं। क्रिमियोंसे जो रोग उत्पन्न होते हैं, उन रोगोंमें जब तक क्रिमियोंका नाश नहीं किया जावे, तब तक किसी औषधिसे भी उस रोगका प्रतिकार नहीं होता। क्योंकि-क्रिमियोंसे उत्पन्न रोगोंमें क्रिमयाँ ही प्रधान कारण होती हैं। इसीसे प्रधान कारणके नाश किये विना कार्यका नाश कैसे होसकता है? इसलिए क्रिमियोंके उत्पन्न होते ही शीघ्र उनके निवारण का उपाय करना चाहिए।

**क्रिमि रोगचिकित्सा**—फरहदके पत्तोंका रस, घण्टाकर्ण पलास के पत्तोंका रस, अनन्नासके पत्तोंका रस, केवड़ेके पत्तोंका रस व शालिञ्च ( बं० चालता ) का रस थोड़ासा शहद मिलाकर सेवन करने

सेक्रिमियाँ नष्ट होजाती है। वायविडंगका चूर्ण शहदके साथ सेवन करनेसे क्रिमियाँ मर जाती हैं। पानीके साथ बावचीके बीज सेवन करनेसे क्रिमियाँ नष्ट होजाती हैं। खजूरके पत्तोंका रस व गलगल निम्बूका रस एकत्र कर सेवन करनेसे भी क्रिमि नष्ट होजाती है।

ढाकके बीजोंका कल्क वा क्राथ शहदके साथ सेवन करनेसे क्रिमियाँ मर जाती हैं। खजूरके पत्तोंका रस एक रात रखकर दूसरे दिन प्रातःकाल उस वासी क्राथको पीनेसे क्रिमियाँ नष्ट होजाती हैं। अनारके छिलकोंके क्राथमें थोड़ासा तिलका तेल मिलाकर सेवन करानेसे भी सब क्रिमियाँ गिर जाती हैं। कच्ची सुपारीको घिस कर कागजी निम्बूके रसके साथ सेवन करनेसे क्रिमियाँ नष्ट होजाती हैं। प्रातःकाल थोड़ा सा गुड़ सेवन कर वासी पानीके साथ खुरासानी अजवायन सेवन करनेसे कोष्ठको सब क्रिमियाँ गिर जाती हैं।

**पारिभद्रावलेह ( हरिद्राखण्ड )**—इसके सेवन करनेसे सब प्रकारके क्रिमि व क्रिमि जनित रोग नष्ट होजाते हैं। यह क्रिमिरोगकी महौषधि है। मात्रा ६ माशासे १ तोला तक शीतल जलके साथ सेवन कराना चाहिए।

**कीटारिरस, क्रिमिमुद्गर रस व विडङ्ग लौह**—इन सब औषधियोंके सेवन करनेसे सब प्रकारके क्रिमि व क्रिमि जनित रोग नष्ट होजाते हैं। अनुपान—त्रिफलाका रस, नागरमोथेका रस व शहद आदि

क्रिमिके लक्षण व चिकित्सा कह चुके हैं अब यहाँपर कुछ आवश्यक समझ कर क्रिमियोंके विषयमें कुछ विशेष आलोचना करते हैं, ध्यान देकर सुनो—

अजीर्ण आदि रोगोंकी चिकित्सा करते समय उस रोगमें क्रिमियोंका कुछ सम्बन्ध है या नहीं, इस ओर विशेष दृष्टि रखना चाहिए, नहीं तो बहुत समय कारणके ठीक अनुसन्धान न होनेसे चिकित्सासे कुछ भी लाभ नहीं होता। इसको खुलासा करनेके लिए एक उदाहरण सुनाते हैं जिसको समझ कर तुम बहुत समय विचक्षणता दिखा सकोगे, सुनो—

उदाहरण—एक अजीर्ण रोगीने किसी एक प्रसिद्ध चिकित्सकसे २। ३ मास तक नियमित चिकित्सा कराने पर भी रोगसे छुटकारा न होने पर परामर्श देनेके निमित्त हमें बुलाया। प्रथम रोगीके निकट पहुँच कर हमने पूर्व चिकित्सक महोदयसे उनकी अब तककी हुई चिकित्साका आद्योपान्त विवरण सुना। उन्होंने जिस २ अवस्थामें जो २ औषधि व पथ्य आदिकी व्यवस्था की थी, उसमें कोई भी कमी, अविचार वा दोष अवगत नहीं हुआ। इसके अतिरिक्त यह भी मालूम हुआ कि रोगी भी चिकित्सकके बताये अनुसार पथ्य आदिका सेवन यथावत् करता रहा है। परिचारक (सेवा करनेवाले) का भी दोष सुनने में नहीं आया। परिचारकको जिस प्रकारसे परिचर्या करनेको कहा गया, उसने उसीके अनुसार परिचर्याकी। औषधि भी ठीक २ तैय्यार की गई थी और यथावत् रूप रस व गन्ध आदि सम्पन्न थी। चिकित्सक महाशय भी शास्त्रके ज्ञाता और अनुभवी थे। रोग भी साधारण लक्षण लिए था। इस प्रकार चिकित्साका सब ठीक ठाक प्रबन्ध रहने पर भी इस सामान्य रोगकी शान्ति नहीं होती देख, किसको विस्मय नहीं होता? क्योंकि आयुर्वेद शास्त्रमें कहा है, कि—चिकित्सक, औषधि, परिचारक व रोगी ये चार चिकित्साके अङ्ग हैं। ये चिकित्साके चारों अङ्ग यदि यथावत् गुणसम्पन्न हों और यदि रोग साध्य हो, तो अवश्य ही रोगकी शान्ति होती है। परन्तु यहाँ पर यह न देखकर मुझे बहुत विस्मय हुआ। बहुत कुछ विचार करनेके अनन्तर मेरे विचारमें यह बात आई, कि—सम्भव है, यह रोग क्रिमियोंसे हुआ हो। इस अजीर्ण के प्रति क्रिमियोंका नित्यकर्तृत्व रहनेके कारण ही यह अजीर्ण दूर नहीं होनेमें आरहा है। इस विचारके अनन्तर मैंने चिकित्सक महाशयसे पूछा, कि-रोगीके पेटमें क्रिमियाँ हैं या नहीं, इस विषयमें आपने रोगी से कुछ पूछा है या नहीं? इसको सुनकर ही चिकित्सक महोदय चकित होकर कहने लगे-यह बात अब तक मेरे विचारमें आई ही नहीं। पर अब आपके कहनेसे मालूम होता है, कि निश्चय ही यह

रोग कृमिजन्य होगा। इसीसे ही इतने समय तक अजीर्णकी किसी भी औषधिसे कुछ उपकार नहीं हुआ है। तब हम दोनोंने रोगीसे पूछ कर मालूम किया, कि–उसके मुखसे हमेशा पानी बहता है, नाक बहती है, नाक खुजाती है, नींदके समय दाँत पीसता है और उसको प्रायः छींक आती है। इन सब लक्षणोंसे निश्चित किया गया, कि–उसके पेटमें क्रिमियाँ हैं और वे क्रिमियाँ ही इस अजीर्णका कारण हैं। यह निश्चय करके हमने "पारिभद्रावलेह अर्थात् हरिद्राखण्ड" की व्यवस्था की। इस औषधिके तीन चार दिन सेवन करनेसे ही सब क्रिमियाँ नष्ट होकर वह दो तीन महीनेका अजीर्ण दूर होगया।

## अर्श ( ववासीर ) रोग।

जिस तरह पर क्रिमियोंसे बहुतसे रोग उत्पन्न होजाते हैं, उसी तरह अर्श रोगसे भी बहुतसे रोगोंकी उत्पत्ति होती है। क्रिमिजन्य रोगोंमें जैसे क्रिमियोंका नियत कारणत्व रहता है, अर्शजात रोगोंमें अर्श रोगका उस तरह पर नियत कारणत्व नहीं रहता। तथापि इसमें रोग–सङ्कर उपस्थित होजाता है अर्थात् अर्शसे और बहुतसे रोग उत्पन्न होकर वे मिलित होकर अर्शके साथ २ अपने लक्षण करते रहते हैं। इससे रोगी अत्यन्त दुःखित होता है। इस लिए अर्शके होते ही उसकी चिकित्सामें यत् किञ्चित् भी विलंब न करना चाहिए। नीचे अर्श रोगकी व्याख्या की जाती है, सुनो—

बृहत् अन्त्र ( बड़ी आँत ) के शेष भागको गुह्य नाड़ी या मलद्वार कहते हैं। गुह्य नाड़ीका परिमाण ४॥ अंगुल होता है। यह गुह्यनाड़ी शंखके घेरे ( आवर्त्त ) की तरह तीन घेरदार होती है। इन तीन आवर्त्तोंको तीन बलियाँ कहते हैं। सबसे नीचे ( गुदाके समीप ) की बलीको "बाह्यबली" बीचके घेरेको "मध्यबली" और सबसे ऊपरके घेरेको "अन्तर्बली" कहते हैं। अन्तर्बलीका काम रोकना है, इस लिए इसका नाम "संवरणी" मध्यबलीका काम छोड़ना है, इस लिए उसका

नाम "विसर्जनी" और बाह्यवलीका काम बहाना है, इस लिए उसका नाम "प्रवाहणी" कहते हैं। इन तीनों वलियोंमें जो मांसांकुर ( मास की बत्तियांसी ) उत्पन्न होते हैं, उसको ही अर्श कहते हैं। अर्श दो प्रकारका होता है, "शुष्क" ( सूखा ) अर्श और "परिस्रावी" ( बहने वाला ) अर्श। जिससे रक्त आदि न गिरे, उसको शुष्कार्श और जिससे रक्त आदिका स्राव हो, उसको परिस्रावी अर्श कहते हैं।

पञ्चात्मक ( पाँच प्रकारका ) वायु अर्थात् प्राण, अपान, समान, उदान व व्यान, पंचात्मक पित्त अर्थात् आलोचक, रञ्जक, साधक, पाचक व भ्राजक, पंचात्मक कफ अर्थात् अवलम्बक, क्लेदक, बोधक, तर्पक व श्लेषक, और त्वचा, मांस, रक्त, मेद तथा गुह्यनाड़ीमें स्थित प्रवाहणी, विसर्जनी व संवरणी नामक तीनों वलियाँ ये सब ही कुपित होकर अर्श रोगको उत्पन्न करते हैं। इस लिए यह अर्श रोग बहुत दुःखदायक, बहुतसे रोगोंका आश्रय, सारे शरीरको पीड़ित व व्यथित करने वाला व कष्टसाध्यतम रोग है। ऐसा कोई रोग नहीं, जो अर्शसे न होता हो।

बाह्य वलीमें उत्पन्न हुआ थोड़े दिनका ( नवीन ) अर्शरोग सुखसाध्य होता है, मध्यवलीमें उत्पन्न वा बहुत दिनका पुराना अर्श कष्टसाध्य और अन्तर्वलीमें उत्पन्न अर्श असाध्य होता है।

**लक्षण**—अर्श रोगसे पेटमें भारीपन, दुर्बलता, अंतोंमें गुड़गुड़ शब्द, अधिक उद्गार ( डकार ) आना, दोनों पैरोंकी अवसन्नता, मल का ठीक न उतरना व अग्निकी विषमता आदि वायुके लक्षण और दाह, ज्वर, तृष्णा, पसीना उतरना, अरुचि व चेहरे आदिका पीलारंग पित्त व रक्त दुष्टिके लक्षण तथा खाँसी, श्वास, मुखसे पानी गिरना, गुदासे स्राव होना, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र, शीतज्वर, क्लीवता ( नपुंसकता ) व अग्निमान्द्य आदि कफके लक्षण उपस्थित होते हैं। इसके अतिरिक्त मलद्वारमें काटनेके समान चवके-चलनेके समान आदि विविध प्रकारकी भयानक वेदनायें होती हैं। गुह्यद्वार फूल ( सूज ) जाता है, रोगी सीधा

होकर बैठ नहीं सकता और बैठनेकी चेष्टा करने पर ऐसा मालूम होता है, मानो गुह्यनाड़ी कट कर बाहर निकल गई हो और चबका व दर्द भी अधिक बढ़ जाता है।

**अर्श रोगकी चिकित्सा**—चार प्रकारसे की जाती है, यथा—औषधिप्रयोग, क्षारप्रयोग, शस्त्र प्रयोग व अग्निप्रयोग। इन चार प्रकारकी चिकित्साओंमेंसे हम यहाँ पर केवल औषधि प्रयोग चिकित्सा का वर्णन करेंगे।

**अर्श रोगका चिकित्सा सूत्र**—जो अनुपान, औषधि व भोज्य-द्रव्य वायुका अनुलोम ( वायसारें ), अग्निको दीप्त व बलकी वृद्धि करें, अर्श रोगीको ऐसे द्रव्य नित्य व्यवहार करने चाहियें।

शुष्कार्शमें तीक्ष्ण प्रलेप आदिका प्रयोग और परिस्रावी अर्शमें अर्थात् जिसके मस्सोंमेंसे खून आदि गिरता हो, उसमें रक्तपित्तके अनुसार चिकित्सा हितकर होती है।

**शुष्कार्शकी चिकित्सा**—अर्शके मांसांकुर (मस्से) यदि कठिन हों और उनमें खून भरा हो, तो जोंक ( जलौका ) आदि लगा कर उनसे खून निकाल देना चाहिए।

थूहरके दूधके साथ कुछ थोड़ासा हल्दीका चूर्ण मिला कर मस्सों के मुख पर लगा देनेसे या जंगलीतोरई ( कोषातकी ) के चूर्णसे मस्सोंको रगड़नेसे वे ढीले पड़ जाते हैं।

थूहरका दूध, आँकका दूध, कड़वीतुम्बीके हरे पत्ते व करञ्जवेकी छालको बकरीके मूत्रमें बारीक पीस कर मस्सों पर लेप करनेसे विशेष लाभ होता है। यह लेप शुष्कार्शके लिए सबसे उत्तम प्रयोग है।

पुराने गुड़को पानीमें घोल कर उसमें जंगली तोरईका चूर्ण पका कर बत्ती ( वर्त्ति ) बना कर रखना चाहिए। इस बत्तीको गुदामें प्रवेश कर रखनेसे मध्यवलि व अन्तर्वलि जात अर्श नष्ट होजाते हैं।

जंगली तोरईकी बेलकी जड़को पानीसे रगड़ कर लेप करनेसे भी मस्से ढीले पड़ जाते हैं।

थूहर व आँकके दूधके साथ पीपल, सेंधानमक, कूठ व सिरसाके फलका चूर्ण मिला कर मस्सोंके ऊपर लगानेसे वे गिर कर ढीले पड़ जाते हैं।

बवासीरमें कोष्ठबद्ध ( कब्ज ) होने पर अजवायनका चूर्ण व विड् नमक ताजे मट्ठेके साथ सेवन कराना चाहिए। अर्श रोगमें जुल्लाब देना अच्छा नहीं होता, क्योंकि-इससे बहुत समय जलन, दर्द, खुजली व चबके बढ़ जाते हैं। कोष्ठबद्ध होने पर वस्ति प्रयोग ( एँनिमा ) करना सबसे अच्छा होता है। एक तोला व २ तोला एरण्डका तेल ( काष्टर औयल ) पिचकारी द्वारा गुदाके भीतर प्रयोग करनेसे सहज में ही मल निकल जाता है तथा इससे रोगीको दुर्बलता व मिचलाहट आदि किसी तरहका कष्ट नहीं होता। छिलके निकले हुए काले तिल व मिश्री प्रतिदिन सेवन करनेसे वायुका अनुलोम ( वायु सरना ) व अर्श शान्त होजाता है।

जंगली जिमीकन्द ( न मिलने पर बागीचेका जिमीकन्द ) लेकर उसके ऊपर गाढ़ा मिट्टीका लेप चढ़ा कर उसको धूपमें सुखा कर उपलों की आँचमें पका कर रखना। इस जिमीकन्दको उपयुक्त मात्रामें थोड़ा सा तिलका तेल व नमक मिला कर सेवन करानेसे सब प्रकारका अर्श रोग आरोग्य होता है। यह अर्श रोगकी सबसे उत्तम औषधि वा पथ्य है।

**रक्तार्श ( खूनी बवासीर ) की चिकित्सा**—रक्तार्श की प्रथम अवस्थामें ही रक्तरोधक ( खून रोकने वाली ) औषधि प्रयोग न करना चाहिए। क्योंकि-इस तरह खराब खूनके शरीरमें रुके रहनेसे उस दुष्ट रक्तसे कितने ही प्रकारके भयानक रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

धोये हुए काले तिल व मक्खन अथवा नागकेशर, मक्खन व चीनी एक साथ मिलाकर सेवन करनेसे भी खून गिरना बन्द हो जाता है। हरे कमलके पत्ते पीस कर चीनी मिलाके सेवन करनेसे अथवा प्रतिदिन प्रातःकाल बकरीका दूध पीनेसे भी रक्तस्राव बन्द हो जाता है। प्रतिदिन एक मुट्ठी वा आधा मुट्ठी कच्चे साठी चावल

चबानेसे भी रक्तस्राव रुक जाता है, यह प्रत्यक्ष-फल दायक प्रयोग है। शतावर २ तोला पीसकर बकरीके दूधके साथ सेवन करानेसे भी विशेष लाभ होता है। अधिक खून गिरने पर "मुद्गादि यूष" के साथ पलाण्डु ( प्याज ) अथवा केवल पलाण्डु सेवन कराना चाहिए। रक्त-स्राव दर्द व जलन दूर करनेके लिए रोगीके लिङ्ग, गुदा व कमर पर चीनी मिला हुआ घी मलकर सुखस्पर्श शीतल जलकी धारा छुड़ानी चाहिए। शीतल जलमें भिगोया हुआ हरा केलेका पत्ता व कमलके पत्तेसे मस्सेको ढाँकनेसे दाह आदि का निवारण होता है। सौ वा हजार बार धोये हुए घीका लेप करनेसे भी रक्तस्राव शीघ्र बन्द हो जाता है। किसी उपायसे भी खून गिरना बन्द न होने पर कुड़ेकी छाल आधा तोला पीस कर दहीकी लस्सीके साथ सेवन करनेसे अवश्य ही रक्त बन्द हो जाता है। सात गाँठ अद्रककी व सात गाँठ वन अद्रककी लेकर प्रतिवार उनमेंसे एक गाँठ अद्रक व एक गाँठ वन अद्रक लेकर एक साथ चबाकर खाना चाहिए। इस प्रकार सात बार वे १४ गाठें खाना चाहिए। सात दिन तक इस प्रकार अद्रक व वन अद्रकके सेवन करानेसे सब प्रकारका अर्श नष्ट हो जाता है।

गुदामें बहुत अधिक जलन व दर्द होने पर गुदापर राल व लोबान की धूनी देना चाहिए। असगन्ध, सम्हालू, बड़ी कटेली व पीपल इनका चूर्ण एक साथ मिलाकर इनकी धूनी अथवा आँककी जड़, सफेद कीकर, मनुष्यके बाल, साँपकी कैंचुली, बिल्लीका चमड़ा व घी इन सब चीजोंकी धूनी गुदामें देनी चाहिए। इससे जलन व दर्द का प्रशम हो जावेगा।

**कुटज लेह**—इसके सेवन करनेसे रक्तस्राव बन्द होकर बवासीर आराम हो जाती है। यह औषधि खून रोकनेके लिए सबसे उत्तम औषधि है। मात्रा-३-६ माशा तक। अनुपान-घी, शहद, दहीकी लस्सी, बकरीका दूध व जल।

**स्वल्प शूरण मोदक व बृहत् सूरण मोदक**—यह सब प्रकार

के अर्श रोगकी महौषधि है इस औषधिके सेवन करनेसे वायुका अनुलोम, कोष्ठकी शुद्धि और समस्त जलन व दर्दका निवारण होता है। मात्रा-६ माशासे १ तोला। अनुपान-बकरीका दूध व जल।

**प्राणदा गुड़िका, चन्द्रप्रभागुड़िका व रसगुड़िका**—ये तीनों औषधियाँ सब प्रकारके अर्श रोगोंमें ही चिकित्सक लोग सर्वदा प्रयोग किया करते हैं। इनसे अर्श रोगमें विशेष लाभ होता है। अनुपान-जल व हरड़ें भिगोयेका पानी आदि।

## रक्तपित्त ( खून गिरना ) रोग।

प्रश्न-आपने अर्श रोगकी चिकित्सामें उपदेश किया है, कि-रक्तार्शमें रक्तपित्तकी चिकित्सा हितकर है, इस लिए जिज्ञासा है कि-रक्तपित्त किसको कहते हैं? और उसकी चिकित्सा क्या है? अनुग्रह कर उपदेश कीजिये।

उत्तर—जिस रोगमें पित्त लोहित रङ्गको प्राप्त होकर और रक्तको दूषित करके उस दूषित रक्तके साथ ऊर्द्ध्वमार्ग ( ऊपरको मुख नाकके रास्ते ) व अधोमार्ग ( नीचेको गुदा व लिङ्गके रास्ते ) से निकलता है, इसको ही रक्तपित्त कहते हैं अर्थात् रक्तपित्त रोगमें लोहितवर्ण प्राप्त पित्त व दुष्टरक्त मिश्रित होकर निकलते हैं।

प्रश्न—किन २ कारणोंसे पित्त लोहित वर्ण होता है? और किस प्रकारसे वह रक्तको दूषित करता है?

उत्तर—धूप व अग्निका सेक, परिश्रम, रास्ता चलना, शोक, मैथुन और मिर्च आदि तीक्ष्ण, खारे, नमकीन, खट्टे व चरपरे द्रव्योंका अधिक सेवन करनेसे पित्त दूषित होकर लोहित ( लाल ) रंगको प्राप्त हो जाता है, और वह पित्त अपने तीक्ष्ण ऊष्ण-पूतित्व ( सड़न ) आदि गुणोंसे रक्तको शीघ्र ही दूषित कर देता है। इसके बाद यह दूषित पित्त व दुष्टरक्त मिलकर गुदा, लिंग व योनिरूप अधोमार्गसे अथवा मुख, नाक, नाक व नेत्ररूप ऊर्द्ध्वमार्ग द्वारा या एक ही बार

ऊपर नीचे दोनों मार्गोंसे निकलता है। अधिक कुपित होने पर समस्त रोम कूपोंसे भी निकलने लगता है।

प्रश्न—किस कारणसे रक्तपित्त ऊपरके रास्तेसे वा किस कारणसे अधोमार्ग द्वारा अथवा किस कारणसे ऊपर नीचे दोनों रास्तोंसे निकलता है?

उत्तर—रक्तपित्तके कफसे मिलित होनेपर ऊपरसे और वायुसे मिलित होने पर नीचेके रास्ते तथा वायु व कफ दोनोंसे मिलित होने पर दोनों मार्गोंसे निकलता है। दोषभेदसे जिस प्रकार रक्तपित्तका गतिभेद होता है, उसी प्रकार उसकी रंगतमें भी फर्क होता है। जैसे **वायुके प्रकोपसे**—रक्त श्याव ( काला मायल ) व अरुणवर्ण, फेनयुक्त, पतला व रूखा होता है। **पित्त प्रकोपसे**—कषायाभ ( बड़ आदि के पत्तोंके कषायके समान ), कृष्णवर्ण, गोमूत्रके समान, चिकना, काला अथवा धुयेंके समान रंग लिये होता है। **कफ प्रकोपसे**-काढ़ा, कुछ पाण्डुवर्ण ( सुफ़ेद मायल ), स्निग्ध व पिच्छिल होता है। दो दोषोंके प्रकोपसे उन दोनों दोषोंके और तीन दोषोंके प्रकोपसे तीनों दोषोंके मिश्र लक्षण रक्तमें दिखाई देते हैं।

प्रश्न—मुखसे रक्त निकलने पर लोग तो बहुत भयभीत हो जाते हैं और उसको शीघ्रही असाध्य व्याधि कहकर व्याकुल होते हैं। तब क्या यह रक्तपित्त रोग बिलकुल ऐसे ही असाध्य है?

उत्तर—नहीं यह बात नहीं है, यक्ष्मा ( क्षय ) रोगमें मुख से रक्त गिरनेसे ही लोगोंको भय होता है, और वही असाध्य रोग हुआ करता है। रक्त पित्तमें मुखसे रक्त गिरनेपर उसको साध्य जानना चाहिए

प्रश्न—किस प्रकारका रक्तपित्त साध्य और कौनसा याप्य तथा कौनसा असाध्य होता है?

उत्तर—ऊपरकी तरफ निकलने वाला, एक दोषज और रूपरहित पतला रक्तपित्त साध्य होता है। नीचेकी तरफको निकलने वाला व

द्विदोषज रक्तपित्त याप्य होता है। ऊपर नीचे दोनों रास्तोंसे निकलने वाला और अति वेगवान् रक्तपित्त असाध्य होता है।

प्रश्न—रक्तपित्तके उपद्रव कौन २ से हैं ?

उत्तर—ज्वर, दुर्बलता, श्वास, कास, वमन, दाह, मूर्छा, पाण्डु-वर्णता, भुक्त आहारमें घोर विदाह ( जलन ), अस्थिरता, हृदयमें अधिक वेदना, मस्तकमें सन्ताप, दुर्गन्धनिष्ठीवन ( बदबूदार बलगम आदि थूकना ), भोजनमें रुचि न होना, अपरिपाक, दस्त आना और तृष्णा आदि उपद्रव क्रमशः रक्तपित्तमें उपस्थित हो जाते हैं।

प्रश्न—रक्तपित्तकी चिकित्सा क्या है ? अब इस विषयका उपदेश कीजिये।

उत्तर—रोगी यदि बलवान् हो, तो उसका रक्त एकदम न रोकना चाहिए, क्योंकि-दुष्ट रक्तके एकदम रुक जानेसे हृद्रोग, पाण्डुरोग, ग्रहणी रोग, प्लीहा, गुल्म व ज्वर आदि विविध प्रकारके रोग आकर उपस्थित होजाते हैं। इसलिए एकदम रक्त बन्द करना उचित नहीं।

रोगीको तर्पण (तृप्तिजनक) हलके पथ्यकी व्यवस्था करनी चाहिए। घी, शहद व धानके खीलोंके चूर्णका पथ्य बनाकर ऊपर निकलने वाले रक्तपित्तके रोगीको खिलाना चाहिए। अथवा पिण्डखजूर, किसमिस, मुलेठी व फालसा इनका काढा ठंडा करके पिलाना चाहिए।

वांसा ( अडूसा ) रक्तपित्त रोगमें व खांसी, क्षयकी भी महौषधि है। इसलिए वांसेका काढ़ा शहद मिलाकर सेवन कराना चाहिए। अडूसे के पत्तोंका पुटपाक करके उसका रस शहद व चीनी मिलाकर सेवन कराना चाहिए। इससे बहुत भयानक रक्तपित्त भी आराम होजाता है।

गूलरका रस शहद मिलाकर सेवन करानेसे रक्त गिरना शीघ्र ही बन्द होजाता है। काष्ठमल्लिकाकी जड़का काढ़ा शहद मिलाकर सेवन करानेसे भी रक्तपित्त शान्त होता है।

बेरकी लाखका चूर्ण, घी व शहदके साथ सेवन करानेसे रक्तपित्त शान्त होजाता है। मात्रा १-६ माशे तक। पक्के गूलरके फल, खम्भारी

के फल, हरड़, पिण्डखजूर व अंगूर पीसकर शहद्के साथ चटानेसे सब प्रकारका रक्तपित्त रोग शान्त होजाता है।

बाँध बाँधनेसे जिस प्रकार जलका वेग बन्द होजाता है, उसी प्रकार आमले घीमें भूनकर और कांजीसे पीसकर मस्तक पर लेप करनेसे नाकसे गिरता हुआ रक्त बन्द होजाता है। चीनी व दूधका नस्य लेनेसे नाकसे रक्त पड़ना बन्द होजाता है। चीनीके साथ दाखका रस या दूधसे निकाले हुए मक्खनका घी या ईखका रस पिलानेसे ( किसी २ के मतमें नाकके रास्ते पीनेसे ) नाकसे खून गिरना बन्द होजाता है।

अनारके फूलोंका रस, दूबका रस, आम्रास्थिन (आमकी गुठली) का रस वा पलांडु ( प्याज ) का रस इनमेंसे किसी एक चीजका नस्य लेनेसे नाकसे रक्त गिरना बन्द होजाता है।

पेशाबके रास्ते अधिक रक्त गिरने पर लिङ्गमें शीतल जलकी पिचकारी देना चाहिए। अथवा कुश, कांस, सर, दाभ व काले ईखकी जड़ इन सबको एकत्र कर २ तोला लेना और बकरीका दूध १६ तोला, जल १ सेर इन सबको एक साथ पका कर केवल दूध बाकी रहने पर उतार छानकर पिलाना चाहिए।

नाकसे निकलने वाले रक्तपित्तके रक्तस्रावको बन्द करनेके लिए जो प्रयोग कहे गये हैं, कान आदिसे रक्तस्राव बन्द करनेके लिए भी वे सब प्रयोग व्यवस्था करने चाहियें।

किसमिस, लालचन्दन, लोध व फूलप्रियंगु इन सब द्रव्योंका चूर्ण अथवा इनमेंसे एक २ का चूर्ण बांसाका रस व शहद्के साथ सेवन करानेसे नाक, मुख, गुदा, योनि वा लिङ्गसे गिरता हुआ रक्त बन्द होजाता है।

अस्त्राघात ( हथियारकी चोट ) के कारण अधिक वेगसे रक्तस्राव होने पर इन ऊपर लिखी चीजोंका चूर्ण घाव पर लगा देनेसे भी खून गिरना बन्द होजाता है। बरफका प्रयोग करनेसे भी रक्त गिरना बन्द होजाता है।

रक्तपित्तमें यदि ज्वर, तृष्णा व दाह उपद्रव हों तो **"ह्रीवेरादि पाचन"**—नेत्रबाला, नीलोफर, धनिया, लालचन्दन, मुलेठी, गिलोय खश व निशोथ इनका क्वाथ चीनी व शहद मिलाकर पिलाना चाहिए। अथवा **"धान्यकादिशीत कषाय"**—धनिया, आमला, अडूसा किसमिस व पित्तपापड़ा इनका शीत कषाय बनाकर देना चाहिए।

रक्तपित्तमें यदि खांसी, श्वास उपद्रव हों, तो **"अटरूषादि-कषाय"**—अडूसेके जड़की छाल, किसमिस व हरड़ इनका काढ़ा चीनी व शहद मिलाकर सेवन कराना चाहिए।

**एलादि गुड़िका, कूष्माण्डखण्ड व वासाकूष्माण्डखंड**-ये रक्तपित्त रोगकी सिद्ध औषधियाँ हैं। निःसंकोच होकर इस रोगमें इन औषधियोंको प्रयोग करना चाहिए। मात्रा-६ माशा-२ तो० तक। अनुपान-बकरीका दूध, गौका दूध व जल।

**खण्डकाद्यलौह**-अधिक रक्त गिरने पर व्यवस्था करना चाहिए। अनुपान-गूलरका रस, कुकरौंदेके पत्तोंका रस या आयापान (विशल्य-कर्णी) के पत्तोंका रस अथवा चीनी शहद आदि।

**रक्तपित्तान्तक लौह व रक्तपित्तान्तक रस**-ये भी रक्त-पित्तकी परमोत्तम औषधियाँ हैं। अनुपान पहिलेके समान।

**दूर्वाद्यघृत**—यह रक्तपित्तकी सबसे उत्तम औषधि है। इसके सेवन करनेसे सब प्रकारका रक्तपित्त आराम होता है। इसको नाक से पीने पर नाकसे बहनेवाला और कानमें भरनेसे कानसे बहने वाला आँखमें भरनेसे नेत्र प्रवृत्त तथा लिंगमें पिचकारी देनेसे लिङ्गके रास्ते बहने वाला और गुदामें पिचकारी देनेसे गुदाके रास्ते बहनेवाला रक्त-पित्त आराम होता है।

**उपसंहारमें वक्तव्य**—"रक्तातिसारमें जो औषधियाँ कह आये हैं और आगे "रक्तप्रदर" रोगमें जो औषधियाँ कही जावेंगी अधोग ( नीचेकी तरफ बहने वाले ) रक्तपित्तमें वे औषधियाँ विचार-पूर्वक व्यवस्था करना चाहिए। क्योंकि रक्तातिसार, रक्तप्रदर व अधोगरक्तपित्त इनका परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है।

# राजयक्ष्मा ( क्षय तपेदिक ) रोग।

प्रश्न—जिज्ञासा करता हूँ, कि-रक्तपित्त रोगमें मुखसे खून गिरता है और उसमें कास, ज्वर आदि उपद्रव भी रहते हैं। यक्ष्मा रोगमें भी तो ये ही लक्षण प्रकट होते हैं, तब रक्तपित्त व राजयक्ष्मा रोगको भिन्न कैसे कहा जा सकता है?

उत्तर—रक्तपित्त व यक्ष्मा रोगमें बहुत बड़ा भारी भेद है। यक्ष्मा रोग साक्षात् यमराजका स्वरूप होता है। यक्ष्मा रोगका नाम लेते ही प्राण सूखने लगते हैं रक्तपित्तका स्वरूप, सम्प्राप्ति व लक्षण आदि का समस्त विवरण कह चुके हैं अब यहाँ पर यक्ष्मा क्या है? और वह किस तरहसे उत्पन्न होता है तथा दोष भेदसे उसके लक्षण आदि कैसे होते हैं, यह सब वर्णन किया जाता है यह सब सुनने पर तुम स्वयं समझ जाओगे, कि-इनमें परस्पर कितना भेद है।

यक्ष्माका स्वरूप—कन्धे और पसलियोंमें दर्द, हाथ पैरोंमें जलन और सर्वाङ्ग ज्वर इन प्रधान लक्षण विशिष्ट रोगको आयुर्वेद शास्त्रमें यक्ष्मा कहा गया है।

निदान व सम्प्राप्ति—मल मूत्र आदि का वेग रोकना, अधिक मैथुन व उपवास आदि धातुक्षय करने वाले काम, अधिक साहसके काम ( बलवान्‌के साथ कुश्ती आदि ) व विषमाशन ( कभी थोड़ा खाना, कभी अधिक खाना और कभी असमयमें भोजन करना ) इत्यादि कारणोंसे वायु, पित्त व कफ ये तीनों दोष ही अति कुपित होकर यक्ष्मा रोगको उत्पन्न कर देते हैं। यह सान्निपातिक रोग होता है। यक्ष्मा रोगके उत्पन्न करनेमें कफ व वायुकी प्रधानता रहती है। कफ रस-वाहक धमनियोंको रोक देता है, इसलिए रक्त मांस, मेद, अस्थि, मज्जा व शुक्र इन धातुओंको उपयुक्त मात्रामें पोषक पदार्थ न मिलने से क्रमशः ये धातु क्षयको प्राप्त होजाते हैं। क्योंकि-रससे ही सब धातुओंका पोषण होता है, इस पोषक धातुकी गति रुक जानेसे कोई

धातु परिश्रम आदिसे प्रति नियत क्षीण होते हुए अपने अंशको पूरा (पुष्ट) नहीं कर पाता, इसीसे क्रमशः वह क्षय होजाता है। रसका मार्ग रुद्ध हो जानेसे जिस प्रकार उत्तरोत्तर अर्थात् एकके बाद दूसरा धातु क्षय होता है, उसी प्रकार अधिक मैथुनसे शुक्र ( वीर्य ) के क्षय होने पर भी क्रमशः उसके पूर्व २ के धातु क्षयको प्राप्त होजाते हैं। क्योंकि-शुक्रके क्षयसे वायुका प्रकोप होनेके कारण उसका पूर्व धातु ( मज्जा ) शोषित व क्षयको प्राप्त होता है और मज्जाके क्षीण होने पर वायुका और भी अधिक प्रकोप होने पर तत्पूर्व धातु अस्थि का क्षय होता है, इस प्रकार विलोम भाव ( उल्टी तरफ ) से क्रमशः मेद, मांस, रक्त व रस धातुका क्षय हो जाता है। इसी लिए ही मनुष्य यक्ष्मा रोगमें बिलकुल सूख जाता है। यह क्षय ही यक्ष्मा रोगीको शीघ्र नष्ट कर देता है। यह क्षय जीवनका अति भयंकर दुर्लक्षण समझना चाहिए।

इस रोगमें रस आदि धातु सूख जाते हैं, इस लिए इसका एक नाम शोष भी है, और शारीरिक सब क्रियाओंका क्षय कर देता है इस लिए इसका दूसरा नाम क्षय है, इसी तरह यक्ष्मसमूह अर्थात् सब रोगोंमें राजा ( प्रधान जीवघातक ) होनेके कारण इसका एक नाम राजयक्ष्मा है। कोई २ कहते हैं-नक्षत्रोंके राजा चन्द्रमाको यह रोग हुआ था, इस लिए इसका नाम राजयक्ष्मा दिया गया है।

कफसे रस वाहक धमनियोंके रुद्ध हो जाने पर रसके शरीरमें अच्छी तरहसे परिचालित न होनेके कारण वह स्वस्थान ( हृदय ) में ही पड़ा रहता है। जिस प्रकार ईखका रस अधिक देर तक रखे रहने से विकृत व क्लिन्न हो जाता है, हृदयमें स्थित यह रस भी उसी तरह पर क्लिन्न होकर सड़ना ( पचना ) आरम्भ होता है। इसलिए सड़े हुए कफके साथ पीप व रक्त मुखसे निकला करता है। इस क्रमसे फेफड़ोंके सड़ जाने पर मनुष्य और कितने दिन बच सकता है? अब जान गये होओगे, कि-रक्तपित्त व यक्ष्मामें कितना भेद है?

अब वात आदि दोषोंकी अधिकताके अनुसार यक्ष्मा रोगमें जो२ लक्षण होते हैं, वे वर्णन किये जाते हैं—

**वायुकी अधिकतासे**—स्वरभङ्ग, पार्श्व व स्कन्ध देशका संकोच और वेदना होती है।

**पित्तकी अधिकतासे**—ज्वरका प्रबलवेग, दाह, अतिसार व रक्त निकलना ये लक्षण विशेषतः होते हैं।

**कफकी अधिकतासे**—मस्तकमें भारीपन, अरुचि, कास, कण्ठका उद्ध्वंस ( गलेमें घुर २ शब्द होना व खरासके साथ खाँसी ) ये ग्यारह लक्षण उपस्थित होते हैं। यदि ये ग्यारहके ग्यारह लक्षण प्रकट हो जाँय, या इनमेंसे कोईसे छै लक्षण अथवा तीन लक्षण भी प्रकट हो जाँय, तो ऐसे रोगीको असाध्य जानना चाहिए। परन्तु इसपर भी यदि रोगीके शरीरमें बल व मांस हो, तो उसकी चिकित्सा करना चाहिए, क्योंकि-बल, मांसके रहने तक असाध्य नहीं समझा जाता। बल-मांसके क्षीण हो जाने पर रोगीको फिर किसी तरह बचाया नहीं जासकता पर इस असाध्य अवस्थामें यदि चिकित्सा करनी ही पड़े, तो रोगीको इस विषयमें कुछ न कह कर रोगीके किसी चतुर आत्मीय स्वजनको किसी तरह संकेतसे रोगीके जीवन-संकटकी बातको जताकर चिकित्सा करना चाहिए, नहीं तो अपशका भागी होना पड़ता है।

प्रश्न—इस भयानक रोगकी चिकित्सा किस प्रकारसे की जाती है

उत्तर—इस यक्ष्मारोगमें क्षय ही एक मात्र सर्वनाशका कारण होता है, इस लिए आरम्भसे ही क्षयनिवारण व क्षयकी पूर्तिका उद्योग करना चाहिए। पुष्टिकारक व लघुपाक पथ्य देना चाहिए। सुफेद बारीक चावल, गेहूँ, जौ और मूँग आदिका दाल व जंगली पशुपक्षियोंका मांस यक्ष्मा रोगीके लिए पथ्य हैं। रोगीका क्षीण होना आरम्भ होने पर उसके लिए मांस-भोजी पशुपक्षियोंका मांस बहुत लाभदायक होता है। क्योंकि-वह अत्यधिक मांस-वर्द्धक होता है। कबूतर, बकरा व हरिणका मांस खिलाना चाहिए, तथा इनका मांस

घीमें भूनकर और उसका चूर्ण बनाकर यह चूर्ण बकरीके दूधके साथ खिलाना चाहिए, यह क्षयको निवारण करता है। बकरीका मांस खाना, दूध पीना और चीनी मिलाकर बकरीका घी पीना, बकरीकी सेवा करना और बकरोंके बीचमें सोना ( जिन खस्सी बकरोंके शरीर से अजमोदकी सी गन्ध आती हो वे ही इस रोगके रोगीके लिए उपयोगी होते हैं ) यह सब यक्ष्मा रोगीके लिए विशेष हितकर है। चीनी व शहदके साथ मिलाकर नवनीत ( ताजा मक्खन ) सेवन करनेसे भी विशेष लाभ होता है।

पार्श्व, स्कन्ध व मस्तकका दर्द दूर करनेके लिए सौंफ, मुलेठी, कूठ, तगर व सुफेद चन्दन इन सब चीजोंको पीस कर अथवा गंगेरन रायसन, तिल, मुलेठी, व नीलोफर इन सब द्रव्योंको रगड़ कर या गुग्गल, देवदारु, सुफेद चन्दन व नागकेशर इन सब द्रव्योंको पीस कर घी मिलकर व गरम करके दर्दकी जगह पर लेप करना चाहिए।

**मुखसे अधिक रक्त वमन होने पर**—लाखका जल २ तोला व मुलेठीका चूर्ण ६ माशा पिलाना चाहिए। अथवा विशल्यकर्णी ( आयापान ) का रस वा क्राथ या कुकुरौन्देके पत्तोंका रस पिलाना चाहिए। मुलेठी व लाल चन्दनको बकरीके दूधमें रगड़ कर सेवन करानेसे भी रक्तवमन दूर हो जाता है।

पसलियोंका दर्द, ज्वर, श्वास व पीनस आदि उपद्रवोंके निवारणके लिए "**त्रयोदशाङ्ग पाचन**"—दशमूलकी दश चीजें और धनिया, पीपल व सोंठ इन तेरह चीजोंका क्राथ सेवन कराना चाहिए अथवा "**दशमूलादि पाचन**"—दशमूलकी दश चीजें और खरैटी रायसन, कूठ, देवदारु व सोंठ इन १५ द्रव्योंका काढा सेवन कराना चाहिए। इनके सेवन करानेसे पार्श्वशूल, स्कन्धशूल, शिरःशूल, क्षय व कास आदि उपद्रव शान्त हो जाते हैं।

**च्यवनप्राशावलेह**—नामकी यह एक महौषधि है। यह क्षय निवारक, पुष्टिकारक, रसायन व सर्वव्याधिको नाश करती है।

चिकित्सकगण यक्ष्मा कास, श्वास, रक्तपित्त व क्षयरोगमें इस को सर्वदा व्यवहार करते हैं। इससे इन रोगोंमें विशेष लाभ होता है। मात्रा-६ माशासे२ तोला तक। अनुपान-बकरीका दूध वा गायका दूध

**बृहद्वासावलेह**—यह भी च्यवनप्राशके समान गुणकारक होता है। मात्रा व अनुपान—च्यवनप्राशके समान।

**क्षयकेशरीरस**—क्षय निवारणके लिए यह प्रयोग करना चाहिए। अनुपान-शहद आदि।

**सर्वाङ्गसुन्दररस**--यह यक्ष्मा रोगकी अतिप्रसिद्ध औषधि है। चिकित्सकगण इस औषधिको यक्ष्मा रोगमें हमेशा व्यवहार किया करते हैं। अनुपान-पीपलका चूर्ण व मधु अथवा पानका रस व शहद आदि।

**मृगाङ्करस, महामृगाङ्करस व राजमृगाङ्करस**—प्रबल यक्ष्मा रोगकी यह बहुत लाभदायक औषधियाँ हैं। अनुपान-उपद्रवके अनुसार।

**हेमगर्भ पोटली रस**--साध्य व असाध्य सब प्रकारके यक्ष्मा रोगमें यह औषधि प्रयोग की जाती है। अनुपान-उपद्रवके अनुसार।

**महाचन्दनादि तैल**—इस तैलके मालिस करनेसे यक्ष्मा, कास व श्वास रोगीके फेफड़ोंमें चिपका हुआ ( श्लिष्ट ) गाढ़ा कफ पतला होकर आसानीसे बाहर निकल आता है, और यक्ष्मा आदि रोग प्रशम होजाते हैं।

**पाराशरघृत व बलागर्भघृत**--इसके सेवन करानेसे यक्ष्मा आदि रोगोंका निवारण होता है। मात्रा ६ माशासे २ तोला तक। अनुपान—ईषदुष्ण दूध आदि।

विशेष वक्तव्य—ये सब वटिकायें, तेल व घृत आदि प्रबल कास, श्वास व रक्तपित्तमें भी प्रयोग किये जासकते हैं।

# कास ( खाँसी ) रोग।

ऊपर यक्ष्मा रोगका वर्णन किया है। जिस तरह पर यक्ष्मारोगका प्रधान अधिष्ठान वक्षःस्थल ( छाती ) है, कास, श्वास व हिक्का रोगका आश्रयस्थान भी वक्षःस्थल है। इस लिए प्रसंगवश यहाँ पर कास श्वास व हिक्का रोगका क्रमशः वर्णन करते हैं, सुनो—

हृदयस्थित प्राणवायु व कण्ठदेशस्थ उदानवायु आहार-विहार आदि दोषोंसे कुपित व कफ पित्तके साथ मिलित होने पर फूटे हुए कांसीके वर्त्तनके समान शब्दके साथ मुखसे निकलता है। विद्वानोंने इसको कास नामसे वर्णन किया है।

कास रोग पाँच प्रकारका होता है, जैसे-वातज, पित्तज, कफज, क्षतज व क्षयज। वृद्धावस्थामें ज्वरके विना एक तरहकी खाँसी हुआ करती है, उसको भी वात आदि दोषज खाँसीके अन्तर्गत जानना चाहिए।

**वातज कासमें**—निरन्तर खाँसी उठना, स्वर भङ्ग व कफरहित सूखी खाँसी होती है। **पित्तज कासमें**—छातीमें दाह, मुखका कड़ुवा स्वाद व मुख सूखना और खाँसनेके समय गलेमें दाह होता है। **कफज कासमें**—कफ बहुत गाढ़ा, मुख कफसे लिपा हुआ और निरन्तर खाँसी उठ कर कफ निकला करता है।

**क्षतज कासका निदान व लक्षण**—बहुत भारी बोझ उठाना, अधिक रास्ता चलना व उत्कट व्यायाम आदिके करनेसे शरीर रूखा और छातीमें घाव होने पर वायु उस घावको आश्रय कर कास रोगको उत्पन्न करता है। इसीको क्षतज कास कहते हैं। इसमें पहिले सूखी खाँसी उठती है, अनन्तर कासके अभिघात ( धक्के ) से घावके फटनेके कारण खून निकलना आरम्भ होजाता है। इस क्षतज काससे गलेमें अधिक दर्द, छातीमें टूटनेके समान दर्द, तेज धार सूईसे बींधनेके समान दर्द और शूल चुभोनेके समान असह्य दर्द मालूम होता है। पसली आदिमें भी इस प्रकारका दर्द हुआ करता है। खाँसीके वेगसे रोगी कबूतरकी समान शब्द करता है।

**क्षयज कासका निदान व लक्षण**—अति मैथुन, विषम भोजन व मलमूत्र आदिके वेगको रोकना आदि कारणोंसे वात आदि तीनों दोष कुपित होकर धातुओंका क्षय करते हुए क्षयकास उत्पन्न कर देते हैं। क्षयकाससे शरीरमें शूल, ज्वर, दाह, मूर्छा व मृत्यु तक उपस्थित होजाता है। रोगी क्रमशः शुष्क, दुर्बल व क्षीण मांस होजाता है और खाँसीके साथ पीप व रक्त निकलता है। शीघ्र ही उपयुक्त चिकित्सा अवलम्बन न करनेसे चाहे कैसा ही कास क्यों न हो वह सर्व शेष अवस्थामें भयङ्कर क्षयकासमें परिणत होजाता है।

बल-मांसके क्षीण होने पर क्षतज व क्षयकाससे प्रायः रोगीकी रक्षा करना मुश्किल होता है, बल-मांसके होने पर भी यह कास याप्य होता है कदाचित् साध्य होता है।

वृद्धावस्थामें ज्वरके विना ही जो खाँसी हुआ करती है, वह भी सर्वतः आराम होनेमें नहीं आती, सुचिकित्सक द्वारा औषधि प्रयोग कराते रहनेसे याप्य दशामें रहती है।

अब **कास रोगकी चिकित्साका** वर्णन करते हैं, सुनो—सर्दी खाँसीमें शहदके साथ अद्रकका रस पिलाना चाहिये। कटेली व अडूसे का क्वाथ सेवन करानेसे साधारणतः सब प्रकारके कासमें उपकार होता है।

**तालीशादि चूर्ण व तालीशाद्य मोदक**—जब अत्यधिक कास वेग उपस्थित हो, तब इस औषधिको शहदमें मिला कर थोड़ा२ करके चटाना चाहिये। इससे खाँसीका वेग और खाँसी उठनेके कारण दुःख दूर होजावेगा।

**वासावलेह**—यह कास रोगकी महौषधि है। मात्रा—६ माशासे १ तोला तक। अनुपान—दूध व जल।

**चन्द्रामृत रस**—इस औषधिको नीचे लिखे क्वाढ़के साथ सेवन करनेसे सब प्रकारकी खाँसी और खूनका थूकना, ज्वर व श्वास आदि उपद्रव नष्ट होते हैं। क्वाथ इस तरह बनाना—अडूसा, गिलोय, भारंगी,

नागरमोथा व कटेली इन सब चीजोंका काढ़ा बना कर रखना चाहिये। इस काढ़ेमेंसे थोड़ा २ लेकर उसमें औषधिको घोल कर पीना चाहिए, जब घुली हुई औषधि पी ली जाय उसके बाद और बाकी काढ़ा भी पी लेना चाहिए।

**शृङ्गाराभ्र व सार्वभौमरस**—वातज आदि सब प्रकारके कास रोगोंमें इसके द्वारा विशेष लाभ होता है। अनुपान-अदरकका रस पान का रस व शहद।

**कासलक्ष्मीविलास व वसन्ततिलक रस**—यह कास रोगकी प्रधान औषधि है। शहदमें घोल कर बाँसेके पत्तोंके रसके साथ कटेलीका रस वा तुलसीके पत्तोंके रसके साथ सेवन कराना चाहिए।

**कण्ठकारी घृत**—कास रोगमें इस घृतसे विशेष लाभ होता है। मात्रा-६ माशासे २ तोला तक। अनुपान-ईषदुष्ण दूध।

**चन्दनाद्य तेल व वासाचन्दनाद्य तेल**—इस तेलके मलनेसे छातीमें रुका हुआ गाढ़ा कफ तरल होकर बाहर निकल आता है। यह कास रोगके लिए सबसे उत्तम तेल है।

## ❀ हिक्का व श्वास रोग ❀

आहार-विहार आदिके दोषसे प्राण व उदानवायु कुपित होकर जिस तरहसे कास रोगको उत्पन्न करते हैं, उसी प्रकार हिक्का व श्वास रोगको भी उत्पन्न करते हैं। कास रोगमें प्राण व उदानवायु फूटी काँसीके बर्तनके समान शब्द करता हुआ मुखसे बाहर निकलता है और हिक्का रोगमें "हिक् हिक्" शब्दके साथ निकला करता है। इसी तरह पर यदि यह प्राण व उदान वायु कफसे रुद्ध मार्ग होकर मुक्त-भाव (आजादी) से बाहर न निकल सकें, तब मनुष्यको श्वास (साँस) लेने व छोड़नेमें कष्ट मालूम होता है और वह हाँपता है। इसीको श्वास-रोग नामसे कहा जाता है।

**हिक्का व श्वास रोगकी चिकित्सा**—जो भी औषधि व पथ्य कफ-वात नाशक, वायुका अनुलोमक और उष्णवीर्य हो वह हिक्का-

श्वास रोगमें हितकर होते हैं। हिक्का रोगीके पेटमें और श्वास रोगीके की छाती पर तेल मालिस कर सेकना चाहिये।

मुलेटीका चूर्ण शहदके साथ, पीपलका चूर्ण चीनीके साथ अथवा सोंठका चूर्ण गुड़के साथ मिला कर नस्य लेनेसे ( हिचकी आना ) बन्द होजाता है। मक्खीकी विष्टा स्त्रीके दूधमें वा लाखके रसमें घोल कर नस्य लेनेसे, अथवा लालचन्दनको स्त्रीके दूधमें रगड़ कर नस्य लेनेसे भी हिचकी बन्द होजाती है।

पीपल, आमला व सोंठ इनका चूर्ण चीनी व शहदके साथ बार२ चाटनेसे भी हिक्का व श्वास रोगमें उपकार होता है।

भारंगी व सोंठका चूर्ण गरम पानीके साथ सेवन करानेसे, अथवा भारंगीका चूर्ण, सोंठका चूर्ण, चीनी व सौंचल नमक समान भाग मिला कर सेवन करनेसे हिक्का व श्वास रोगकी शान्ति होती है।

श्वास प्रश्वासका रोकना, एकाएक भय दिखाना, विस्मय कराना, शीतल जलमें सेंधानमक घोल कर थोड़ा २ करके सेवन कराना, विचित्र रहस्यमय बात कहना, मनोभिघात ( जिस बातसे रोगीके दिल पर चोट लगे, ऐसी बात कहना ) और मट्टीको जलते कोयलेके समान लाल गरम करके व उसको साफ पानीमें बुझा कर उस मिट्टीको सूँघना इन सब उपायोंमेंसे किसी एकके प्रयोग करनेसे हिचकी रुक जाती है।

हींग व उड़दका चूर्ण निर्धूम कोयलोंकी अग्निमें डाल कर उसका धुँआँ सूँघनेसे हिचकी रुक जाती है।

इलायचीका चूर्ण व चीनी एक साथ सेवन करनेसे प्रबल हिक्का भी बन्द होजाती है। साबूत कालीमिर्चको सुईमें बींध कर उसको दीपककी लोमें जला कर उससे जो धुँआ निकले उस धुयेंको सूँघनेसे भी तत्क्षण हिचकी बन्द होजाती है। केलेकी जड़का रस चीनीके साथ मिला कर सेवन करनेसे हिचकी थम जाती है। सुफेद चन्दन पानीमें घिस कर उसके साथ नारियलके फूलका चूर्ण मिला कर मुखमें रखनेसे प्रबल हिचकी भी थम जाती है।

काले धतूरेके फल, शाखा व पत्तोंके छोटे २ टुकड़े काट कर या कूट कर धूपमें सुखा कर इसको चिलममें भर कर उसका धुँआ पीनेसे प्रबल हिचकी व दारुण श्वासमें उपकार होता है।

पुराना गुड़ व सरसोंका तेल समान भाग मिला कर तीन हफ्ते तक चाटनेसे श्वास रोग समूल नष्ट होजाता है।

पेठेके गूदेका चूर्ण ६ माशा शीलगरम पानीके साथ सेवन करनेसे श्वास व कास रोगका निवारण होता है।

श्वासका दौरा निवृत्त होनेके समय पीपलका चूर्ण १ माशा व सेंधानमक १ माशा अद्रकके रसके साथ एक सप्ताह तक सेवन करने से श्वास रोग आराम होजाता है।

वेलके पत्तोंका रस, बाँसेके पत्तोंका रस वा शंखपुष्पीके पत्तोंका रस सरसोंके तेलके साथ सेवन करनेसे श्वास रोग शीघ्र आराम हो जाता है।

श्वास व कासके निवारणके लिए **"पर्णास पंचक पाचन"**—तुलसीके पत्ते, गिलोय, सोंठ, भारंगी व कटेली इनका क्वाथ व्यवस्था करना चाहिए।

दशमूलके क्वाथमें कूठका चूर्ण प्रक्षेप देकर (ऊपरसे डाल कर) सेवन करनेसे कास, श्वास, पार्श्वशूल व हृदयशूलका निवारण होता है।

**भारंगी गुड़**—यह श्वास रोगकी महौषधि है। इसके व्यवहारसे श्वास, कास, हिक्का और यहाँतक कि यक्ष्मारोगमें भी पर्याप्त लाभ होता है। इसकी मात्रा—लेहांश आधा तोलासे २ तोला तक। लेहांश सेवन करनेके अनन्तर भारंगी गुड़मेंकी एक हरड़ सेवन कराना चाहिये।

**श्वासारिलौह, श्वासकुठार रस व श्वासचिन्तामणि रस**—ये कुछेक औषधियाँ साधारणतः श्वास रोगमें प्रयोग की जाती हैं। इनके सेवन करनेसे श्वास, खाँसी व हिक्का रोगका निवारण होता है। अनुपान—शहद, अद्रकका रस, शहद व बहेड़ेका चूर्ण आदि।

**बृहच्चन्दनादि तैल**—इस तेलको छातीमें मलनेसे छातीमें रुका

हुआ गाढ़ा कफ पतला होकर बाहर निकल आता है और रोगीको चैन आ जाता है।

विशेष वक्तव्य-यक्ष्मा, रक्तपित्त, कास, श्वास व हिक्का इनका प्रधान आश्रयस्थान हृदय व फेफड़े हैं, इस लिए इनका परस्पर बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसीसे इनमेंसे एक रोगकी औषधि दूसरे रोगमें भी प्रयोग की जासकती है। अनुभवी चिकित्सक गण रोगोंकी प्रकृति, घनिष्ठसम्बन्ध व कार्यकारणभाव आदिके प्रति विशेष दृष्टि रख कर साधारणतः एक रोगकी औषधि दूसरे रोगमे प्रयोग कर कृतकार्य हो जाते हैं। इस तरह विचारपूर्वक चिकित्सा करना ही चिकित्सकका चिकित्सकत्व है।

## वात-व्याधि ( वायुके रोग )।

प्रश्न-गुरुवर! आपके उपदेशसे कठिन आयुर्वेदका विषय बिल्कुल सरल जैसा मालूम होरहा है, इस लिए मेरी प्रश्न पर प्रश्न करनेकी इच्छा प्रबल होती जारह है। अनुग्रह कर अब मुझे वातव्याधि किसको कहते हैं? क्या वायुजनित व्याधिमात्रको ही वातव्याधि कहा जाता है? यदि ऐसा है, तो वातज ज्वर, अतिसार व ग्रहणी आदि समस्त रोगोंको ही वातव्याधि कहा जासकता है?

उत्तर—वात जनित व्याधि मात्रको वातव्याधि नहीं कहा जाता बलिक वात जनित असाधारण व्याधिको वातव्याधि नामसे कहा जाता है, अर्थात् जो रोग केवल वायुसे ही उत्पन्न हो, पित्त व कफ द्वारा उत्पन्न न हो, उन सब रोगोंको वातव्याधि कहा जाता है। जैसे आक्षेप ( दौरा, ) पक्षाघात आदि। क्योंकि-ये सब रोग वायुसे ही उत्पन्न होते हैं, पित्त व कफसे नहीं होते। परन्तु ज्वर, अतिसार, व ग्रहणी आदि रोग वायुसे भी उत्पन्न होते हैं और पित्त कफके विकृत होने पर भी उत्पन्न होते हैं। इस लिए वे वात जनित असाधारण व्याधि नहीं हैं। अतएव उनको वातव्याधि नामसे नहीं कहा जासकता

प्रश्न—तब क्या वातव्याधिमें केवल वायुके ही लक्षण होंगे, और किसी दोषके लक्षण न होंगे ?

उत्तर—हम तुम्हें पहिले ही बता चुके हैं, कि-एक दोषके कुपित होने पर वह अन्यान्य दोषोंको भी कुपित कर देता है। तब फिर तुम ही सोचो, कि-अन्यान्य दोषोंके लक्षण क्यों न रहेंगे? अवश्य ही थोड़ा बहुत होते हैं। परंच वातव्याधिका उत्पन्न करने वाला दोष वायु हुआ करता है। इस लिए वातव्याधिमें वायुकी ही विशेष चिकित्सा की जाती है तथा वायुके प्रशम होने पर ही वातव्याधिका प्रशम हो जाता है। किन्तु पित्त व कफका अनुबन्ध रहने पर उनके प्रति दृष्टि रख कर चिकित्सा करना होता है।

प्रश्न—वातव्याधि कितने प्रकारकी होती है और उनके नाम तथा लक्षण क्या २ होते हैं ?

उत्तर—हेतु ( कारण ) भेदसे वातव्याधि विविध प्रकारकी होती है, परन्तु यहाँ पर विशेष २ वातव्याधियोंका नाम व परिचय कराया जाता है, सुनो—

आक्षेपक, अपतन्त्रक, अपतानक, दण्डापतानक, धनुस्तम्भ, पक्षाघात, अर्दित, मन्यास्तम्भ, जिह्वास्तम्भ, शिरोग्रह, गृध्रसी, कोष्टुकशीर्ष, खञ्ज, पंगु, कलायखंज, वातकण्टक, पाददाह, अववाहुक, विश्वचि, तूणि व प्रतितूणि, अष्ठिला व प्रत्यष्ठिला, कुब्जत्व, आध्मान व प्रत्याध्मान आदि अनेक प्रकारकी वातव्याधियाँ हैं। इसके अतिरिक्त वायुसे पर्वों ( पोरुवों ) का संकोच व स्तब्धता, हड्डी व पोरुवोंमें टूटने के समान दर्द, रोमाञ्च, प्रलाप, अङ्गशोष, अनिद्रा व अल्पनिद्रा, गर्भ का सूखना व रजोनाश ( माहवारी ठीक न होना ) या इनकी विकृति व म्प, स्पर्शशक्तिलोप, मस्तक, नासिका, नेत्र व ग्रीवा ( गर्दन ) का टेढ़ापन, पार्श्व, कमर व छातीमें दर्द और विना परिश्रमके थकन मालूम करना व अवसन्नता तथा विविध प्रकारके उपद्रव उपस्थित होते हैं।

अब आक्षेपक आदि इन व्याधियोंका परिचय कराता हूँ, सुनो—

**आक्षेपक**—कुपित वायु जब ऊपर नीचे व तिर्यक्गामी धमनियों में पहुँच जाता है, तब ही आक्षेपक रोग उत्पन्न करता है अर्थात् वायु धमनियोंमें बारम्बार संचरण करके बारम्बार अङ्गोंको इधर उधर आक्षिप्त अर्थात् चालित करता है। इस प्रकार बारम्बार आक्षेपके कारण इस रोगका नाम आक्षेप कहते हैं।

**अपतन्त्रक**—इस रोगमें कुपित वायु स्वस्थान अर्थात् पक्वाशय से ऊपरकी तरफ हृदय, मस्तक व शङ्ख देशमें पहुँच कर उस स्थानको प्रपीड़ित करके शरीरको धनुषकी तरह नत व आक्षिप्त ( इधर उधर चालित ) करता है। इससे रोगी मूर्छित, स्तब्धनेत्र, निमीलित नेत्र व संज्ञाहीन हो जाता है, बहुत कष्टसे श्वास छोड़ता है और उसके मुख से कबूतरकी तरह शब्द निकलता है। इस प्रकारके रोगको अपतन्त्रक कहते हैं।

**अपतानक**—इस रोगमें दृष्टिशक्तिनाश व संज्ञा लोप हो जाती है। गलेसे एक प्रकारका अव्यक्त शब्द निकलता है। कुपित वायु जब हृदयको आक्रमण करता है, तब रोगी मूर्छित हो जाता है और जब वायुका वेग हृदयसे कम हो जाता है, तब वह स्वस्थ हो जाता है यह अपतानक रोग बहुत भयानक ( सांघातिक ) होता है।

**दण्डापतानक**-कुपित वायु अत्यधिक कफके साथ मिल कर धमनियोंका आश्रय करके दण्डापतानक रोगको उत्पन्न करता है। इस रोगमें शरीर दण्डके समान स्तम्भित अर्थात् सिकुड़ने व फैलनेकी शक्तिसे हीन हो जाता है।

**धनुःस्तम्भ**-इस रोगमें शरीर धनुषके समान अकड़ जाता है। यह रोग दो प्रकारसे होता है-अन्तरायाम व बहिरायाम। अति कुपित वेगवान् वायु जब अंगुली, गुल्फ ( गट्टे ), जठर, हृदय, वक्ष व गल देशमें अवस्थान करके स्थानीय स्नायुओंको आकर्षण करता है, तब मनुष्य ( इस रोगसे ) भीतरकी तरफ ( छातीकी तरफ ) नत होता

( झुक ) ता है। इसको "अन्तरायाम" कहते हैं। इसमें रोगीके नेत्र स्तब्ध, हनु ( जबाड़े ) निश्चल, दोनों पार्श्व भग्न हो जाते हैं और कफ निकलता है। यदि इस तरह विकृत यह वायु पीछेकी तरफ बाह्य स्नायुओंमें अवस्थान कर उनको आकर्षण करता है, तब मनुष्य बाहर की तरफ झुक जाता है। इसको "बहिरायाम" कहते हैं। यह रोग असाध्य होता है।

पक्षाघात--कुपित वायु शरीरके आधे भागको आक्रमण कर और उस भागकी शिरा व स्नायुओंको विशोषण करके सन्धिबन्धनोंको विश्लेषपूर्वक बायें वा दाहिने एक तरफके पक्ष ( भाग ) को शक्तिहीन कर देता है। इसीसे वह अङ्ग अकर्मण्य व चेतनारहित हो जाता है। इस रोगको कोई "एकाङ्गरोग" और कोई पक्षवध ( पक्षाघात ) नामसे कहते हैं। यदि यह कुपित वायु समस्त शरीरको आक्रमण व सारे शरीरकी शिरा व स्नायुओंको विशोषण कर सन्धिबन्धनोंको विश्लेष पूर्वक सारे शरीरको अकर्मण्य व विचेतन कर दे, तो उसको "सर्वाङ्ग रोग" कहते हैं।

अर्दित--निरन्तर ऊँचे स्वरसे बातचीत करना, कठिन द्रव्य चबाना अधिक हँसना, जंभाई लेना, बोझा उठाना व विषमभावसे सोना, इन कारणोंसे वायु कुपित होकर मुखको अर्दित ( पीड़ित ) करता है, इस लिए ही इस रोगको अर्दित कहते हैं। इस रोगमें मुखका आधाभाग व गर्दन टेढ़ी हो जाती है, और शिर काँपना, जबान रुकना व नेत्र आदि विकृत हो जाते हैं। मुखके जिस तरफ अर्दित होता है, उस तरफकी गर्दन, दाढ़ों व दाँतोंमें दर्द होता है।

हनुग्रह--जीभको अधिक घिसना, कठिन द्रव्य चबाना व चोट लगना आदि कारणोंसे जबाड़ेकी जड़में स्थित ( हनुमूलस्थ ) वायु कुपित होकर इस जबाड़ेको शिथिल कर देता है, जिससे रोगी खुले मुखको बन्द करना व बन्द हुए मुखको खोल नहीं सकता। इसको

अनुग्रह रोग कहते हैं। इस रोगमें रोगी अधिक कष्टसे चबाना व बातचीत करता है।

**मन्यास्तम्भ**—दिनमें सोना, गर्दनको विषमभावसे ( टेढ़ा मेढ़ा ) रखना, विवृत ( खुले ) और ऊपरकी तरफ दृष्टि करके देरतक देखना इत्यादि कारणोंसे वायु कुपित और कफावृत होकर मन्या ( गर्दनके आसपासकी दो बड़ी शिराओंको ) स्तब्ध कर देता है। इससे रोगी गर्दनको घुमा फिरा नहीं सकता। इस रोगको ही मन्यास्तंभ कहते हैं।

**जिह्वास्तम्भ**—कुपित वायु वाग्वाहिनी शिरामें अवस्थान करके जिह्वा स्तम्भ रोगको उत्पन्न कर देता है। इससे रोगी खाना, पीना व बातचीत करनेमें असमर्थ होजाता है।

**शिरोग्रह**—कुपित वायु शिरोधर शिराओं ( शिरको थामे रखने वाले पट्ठों ) को विकृत करके शिरोग्रह रोग उत्पन्न कर देता है। इससे ये सब शिरायें वेदनायुक्त व कृष्णवर्ण होजाती है, और मस्तकका घुमाना फिराना आदि बन्द होजाता है। यह विशेषतः असाध्य रोग होता है।

**गृध्रसी**—कुपित वायु पहिले कुल्हे ( स्फिक् ) को जकड़ दे और उसके बाद यथाक्रमसे कमर, पीठ, उरु, जानु, जंघा, वा पैरोंमें स्तब्धता, वेदना वा सूचिवेधवत् वेदना उपस्थित कर देता है। वायुका प्रकोप अधिक होने पर इन सब स्थानोंमें वारंबार स्पन्दन होता है।

**क्रोष्टुक शीर्ष**—कुपित वायु दुष्ट रक्तके साथ मिल कर घुटनेमें ( पालि अस्थिके ऊपर ) अति वेदना दायक शोथ उत्पन्न कर देता है। यह शोथ देखनेमें क्रोष्टुक शीर्षकी तरह अर्थात् गीदड़के मस्तकके समान उभरा हुआ होता है, इस लिए इसको क्रोष्टुक शीर्ष कहते हैं।

**खञ्ज व पंगु**—कुपित वायु कटिदेशको आश्रय करके एक जंघाकी कंडरा नामक शिराको यदि तान कर रक्खे, तो मनुष्य लंगड़ा ( खञ्ज ) होजाता है, और दोनों जंघाओंकी कण्डराओंको तान कर रखे, तो मनुष्य पंगुला ( पंगु ) होजाता है। यदि कुपित वायु पैरके सन्धि-

बन्धनोंका शिथिल कर दे, तब मनुष्य काँप २ कर पैरोंको रखता है। आयुर्वेद शास्त्रमें इसको "कलायखञ्ज" कहते हैं।

**वातकण्टक**—ऊँची नीची जगह पर पैर रखनेसे अथवा अधिक रास्ता चलनेके कारण वायु कुपित होकर टकनों (गुल्फदेश) में वेदना कर देता है। इसको ही वातकण्टक रोग कहते हैं।

**पाददाह**—कुपित वायु पित्त व रक्तके साथ संयुक्त होकर पाद दाह रोगको उत्पन्न कर देता है। निरन्तर चलने वाले व्यक्तिको ही यह पाददाह रोग अतिप्रबल हुआ करता है।

**अवबाहुक व विश्वची**—कुपित वायु स्कन्धदेश ( कन्धे ) में अवस्थान करके कन्धेकी सन्धिको मसृण ( चिकने ) करने वाले श्लेष्माको शुष्क और शिराओंको आकुंचित ( सिकोड़ ) कर अवबाहुक रोगको उत्पन्न कर देता है। यह कफवातज रोग होता है। यही कुपित वायु यदि हाथकी बड़ी शिराओंको दूषित कर हाथको सिकोड़ना फैलाना आदि क्रियाओंसे रहित कर देता है, तब उसको विश्वची रोग कहते हैं।

**तूणि व प्रतितूणि**—वायुके प्रकोपके कारण आमाशय व मूत्राशयसे जो वेदना गुदा व लिङ्गको अथवा योनिको विदारणवत् पीड़ासे पीड़ित करके अधोगामिनी होती है, उसको तूणि रोग कहते हैं, और तूणि रोगके लक्षणोंके बिपरीत अर्थात् गुदा व लिङ्गदेशसे वेदना उठ कर प्रबल वेगसे ऊपरकी तरफ आमाशय व मूत्राशयमें गमन करे, तो उसको प्रतितूणि रोग कहते हैं।

**अष्ठीला व प्रतिष्ठीला**—नाभिके निचले भागमें उत्पन्न सचल व अचल, ऊपरकी तरफ विस्तृत व उन्नत अष्ठीला ( गोल पत्थर ) के समान गाँठको वात-अष्ठीला रोग कहते हैं। इससे अधोवायु, मूत्र व पुरीषका निरोध होता है। इन्हीं लक्षणों वाली "अष्ठीला" ही यदि तिर्यग्भाव ( तिरछी तरह ) से उठे तो उसको प्रत्यष्ठीला रोग कहते हैं।

**आध्मान व प्रत्याध्मान**—वायुके रुकनेके कारण पक्वाशय फूल जावे ( अफर जावे ) और उसमें गुड़ २ शब्द हो तो, उसको आध्मान ( अफारा ) रोग कहते हैं, और वह आध्मान ही पक्वाशयसे आरम्भ न होकर यदि आरम्भ हो, पर पार्श्व व हृदय ( छाती ) को न फुलावे, तो उसको प्रत्याध्मान रोग कहते हैं। केवल वायुसे आध्मान होता है और कफ संयुक्त वायुसे प्रत्याध्मान रोग होता है।

**कुब्ज ( कुबड़ा ) रोग**—कुपित वायु यदि हृदय अथवा पीठ को ऊँचा व वेदनायुक्त करे तो उसको कुब्ज रोग कहते हैं।

वातजनित जिन सब रोगोंका परिचय ऊपर दिया गया है, इन सब रोगोंमें पित्त आदिके संबन्धकी ओर विशेष लक्ष्य रखना चाहिए अर्थात् वात व्याधिमें यदि पित्तके लक्षण भी हों, तो पित्तानुबन्ध और कफके लक्षण द्वारा कफानुबन्ध विशिष्ट जानना चाहिए।

प्रश्न—गुरुवर! आपने ऊपर जिन वातव्याधियोंके नाम व लक्षण बताये हैं, उनकी चिकित्सा कैसे की जाती है? और जिनके नाम व लक्षण ऊपर नहीं निर्देश किये गये हैं, उनकी चिकित्सा किस प्रकार से करते हैं? इस विषयका उपदेश प्रदान कर अनुगृहीत कीजिये।

उत्तर—वातव्याधिकी जिस प्रकार संख्या अधिक है, उनकी चिकित्सा भी उसी प्रकारसे विस्तृत है और ये अस्सी प्रकारके वात रोग ही कृच्छ्रसाध्य होते हैं। परन्तु मैं यहाँ पर सिर्फ दिग्दर्शनमात्र विशेष २ वात व्याधिकी विशेष २ चिकित्सा और जिस युक्तिके अवलम्बन कर उक्त वा अनुक्त सब प्रकारके वायुके रोगोंकी चिकित्सा करना चाहिए, उसका उपदेश करता हूँ, सुनो—

"वायु"—रूक्ष, शोषक ( सुखाने वाला ), खर, लघु, शीतल व सूक्ष्मस्रोतगामी पदार्थ होता है। यह कुपित होकर शरीरको रूखा, सूखा खुरदरा, हलका व शीतल कर देता है और शरीरके सूक्ष्म स्रोत शिरा, धमनी, स्नायु, कण्डरा आदि सूक्ष्म २ रास्तोंमें प्रवेश कर आक्षेपक आदि विविध प्रकारके रोगोंको कर देता है। इस लिये कुपित वायुकी

चिकित्सा करनेके लिए ऐसी औषधि आवश्यक होती है, जिससे वायु के शैत्य आदि धर्म प्रशमित हो जाँय, और वे सूक्ष्म स्रोतोंमें प्रवेश कर वायुके प्रकोपको नष्ट कर सकें। घी, तेल आदि स्नेह पदार्थोंसे रूक्षता, शुष्कता व खरस्पर्शता दूर होती है और ये सूक्ष्म स्रोतोंमें भा प्रवेश कर सकते हैं। इस लिए घी तेल आदि स्नेह पदार्थ ही वातव्याधिकी प्रधान औषधि समझना चाहिए। इसके अतिरिक्त उष्ण-स्वेद आदिके प्रयोगसे व उष्णवीर्य औषधियोंके सेवनसे शैत्यका निवारण होता है, इस लिए उष्णस्वेद आदि व उष्णवीर्य औषधियाँ वातव्याधिमें अवश्य प्रयोग करनी चाहियें। इसी तरह पर मांस आदि सारवान् गुरुपाक आहारसे लघुत्व, कृशत्व व दुर्बलता आदिका निवारण होता है, इस लिए मांस आदि गुरु आहार वातव्याधिमें परमपथ्य हैं। बस इस युक्तिको अवलम्बन कर उक्त अनुक्त सब प्रकारके वात रोगोंकी चिकित्सा कर सकते हो अर्थात् वातव्याधिके प्रशमके लिए तैलकी मालिश, घी पिलाना, उष्णस्वेद व उष्णवीर्य औषधि आदि व्यवस्था कर सकते हो और मांस आदि पथ्य व्यवहार कर सकते हो। परन्तु जहाँ पर पित्त वा कफका विशेष अनुबन्ध हो, वहाँ पर वातपित्त नाशक व वातकफ नाशक चिकित्सा करना आवश्यक होता है।

पक्षाघात अर्दित व आक्षेपक आदि रोगोंमें पीड़ित स्थानमें वक्ष्यमाण ( जो आगे कहे जायेंगे ) 'माषतैल' आदि मल कर उसमें ऊपरसे उड़द, सेंधानमक, आँकके पत्ते, गेहूँकी भूसी, रेत ( बालू ) व मांस आदिका स्वेद प्रयोग करना चाहिए। कछवेका मांस वा गुग्गल पका कर उसकी पोटली बाँधकर इस पोटलीसे सेकना चाहिए। या "नाड़ी-स्वेद" देना चाहिये। **नाड़ी स्वेद देनेकी** विधि यह है-एक हाँडीमें जल व कछवेका मांस आदि रख कर हाँडीके मुखको सकोरेसे ढक कर उस सकोरेके बीचमें छेद कर सकोरेके जोड़को चिकनी मिट्टी या कीचड़ आदिसे अच्छी तरहसे लेप कर बन्द कर देना चाहिए। उसके बाद उस हाँडीको चुल्हे पर चढ़ा कर नीचेसे आँच बालना चाहिए। अब

हाँडीसे भाफ निकल कर सकोरेके छेदसे बाहर निकलने लगे, तब एक नलका एक सिरा इस छेदमें डालकर नलके दूसरे मुखसे जो भाफ निकले उसको दर्दकी जगह पर लगाना चाहिए। इस प्रकारके स्वेदका नाम नाड़ीस्वेद कहते है। नाड़ीका अर्थ नल।

इस प्रकार स्नेह स्वेदके प्रयोगसे पक्षाघात आदि सब तरहकी वातव्याधियोंमें उपकार होता है। स्नेह-स्वेदसे अंग कोमल होता है, शुष्क धातु पुष्ट और अग्निबल वृद्धिको प्राप्त होकर प्राण वर्द्धित होता है। इस लिए सब प्रकारकी वातव्याधियोंमें स्नेह स्वेद प्रयोग करना चाहिए। स्नेह प्रयोगसे कोष्ठके मृदु ( मुलायम ) होजानेपर वात रोग रहने ही नहीं पाते।

पक्षाघात आदि वात रोगीको नित्य दस्त साफ ( कोष्ठपरिष्कार ) होना बहुत आवश्यकीय होता है। पिचकारी ( एनिमा ) प्रयोगसे वा जुल्लावकी औषधि देनेसे हो, जैसे भी होसके कोष्ठ साफ रखनेकी चेष्टा करनी चाहिए। जुल्लावकी औषधिकी अपेक्षा वस्तिप्रयोग करना बहुत अच्छा होता है। इससे एक तो रोगी कमजोर नहीं होता और दिल मिचलाना आदि लक्षण भी नहीं होते। रोगीके कोष्ठका बलाबल देखकर १ तोला वा २ तोला एरण्डके तेलकी वस्तिप्रयोग करना चाहिए। अथवा दूधके साथ उपयुक्त मात्रामें एरण्डतैल मिला कर सेवन कराना चाहिए।

कुपित वायुसे किसी अंगके टेढा ( वक्र ) व स्तब्ध ( सन्न ) होने पर उस अङ्गमें तेल मलकर स्वेद प्रयोग करना चाहिए। जिस प्रकार सूखी लकड़ीको तेल आदि स्नेह मलकर तथा आग पर सेक कर उस लकड़ीको इच्छाके अनुसार जैसा चाहो मोड़ सकते हो। इसी प्रकार स्नेह स्वेद देकर टेढ़े मेढ़े हुए शरीरके हिस्सेको भी ठीक पहिले की हालत पर लाया जा सकता है।

प्रसवके समयके आक्षेपक रोगमें दोनों पैरोंमे "माषतैल" वा तार्पीनका तेल मलकर स्वेद देना वा राईका पलस्तर लगाना चाहिए

अर्दित रोगमें नस्य प्रयोग कर श्लेष्माका निःसारण करना चाहिए। मस्तकमें तेल मलना और अर्दितकी जगह पर कछवे आदि के मांसका लेप करना चाहिए अर्थात् मांसको पकाकर व सिल बट्टेसे पीसकर उसका गरमागरम लेप करना चाहिए।

लहसुनको पीसकर मक्खनके साथ सेवन करनेसे अर्दित रोगमें लाभ होता है। कफसंसृष्ट अर्दित रोगमें खरेंटीके साथ अथवा बृहत् पंचमूलके साथ दूध पकाकर उस दूधके साथ मांसका यूष सेवन करनेको देना चाहिए। अथवा घीके साथ मांसयूष सेवन कराना चाहिए। इसमें "दशमूल" का काढा भी विशेष लाभदायक होता है। पित्तसंसृष्ट अर्दित रोगमें शीतल स्नेहपान ( गरम करके नहीं ) और घी व दूधकी वस्ति लाभ दायक होती है।

खरेंटी, उड़द, कौंचके बीज, गन्धतृण व एरण्डकी जड़ इनका काढा बनाकर सेवन कराना व नस्यकी तरह व्यवहार करनेसे अर्दित, पक्षाघात व विश्वची रोगका प्रशम होता है।

पक्षाघात, अर्दित, व मन्यास्तम्भ आदि दुर्जय रोगों में "माषबलादि पाचन"—बहुत लाभदायक होता है, जैसे—उड़द, खरेंटी, कौंचके बीज, गन्धतृण, रायसन, असगन्ध व एरण्डकी जड़ इनके काढ़ेमें २ रत्ती हींग व ३ माशा सेंधानमक प्रक्षेप देकर गरम २ सेवन करनेको देना चाहिए।

लहसुन १२ तोला और हींग, जीरा, सेंधानमक, सोंठ, पीपल व कालीमिर्च इन प्रत्येकका चूर्ण १ माशा एक साथ पीसकर रखना। इसको आधा तोला मात्रामें एरण्डकी जड़के क्वाथके साथ सेवन करने से अर्दित, पक्षाघात आदि रोगोंमें विशेष लाभ होता है।

मुर्गीके अंडेके तरल भागको सेंधानमक व घीके साथ मिला कर उसको गरमकर गर्दन पर मलनेसे मन्यास्तम्भ दूर होजाता है। सरसों का तेल मालिस करनेसे तथा असगन्धकी जड़ पीसकर उसका लेप देनेसे भी ग्रीवास्तम्भ रोग आराम होजाता है।

वाग्वाहिनी शिराके विकृत होनेसे जिव्हास्तम्भ उत्पन्न होने पर मुखमें घी तेल आदि स्नेह पदार्थके गण्डूष ( कुल्ले ) करना चाहिए। इससे जिव्हास्तम्भ आराम होजावेगा।

विश्वची व अबबाहुक रोगमें-दशमूलकी दश चीजें और खरैंटी व उड़द इन बारह चीजोंके क्वाथमें घी वा तिलका तेल प्रक्षेप देकर सायंकाल भोजनके भोजनके अनन्तर इसका नस्य लिवाना चाहिए।

दशमूल और खरैंटी, रायसन, गिलोय व सोंठ इन चौदह द्रव्यों के क्वाथमें एरण्डका तेल प्रक्षेप देकर सेवन करानेसे गृध्रसि, खञ्ज कलायखञ्ज व पङ्गुरोग दूर हो जाता है।

अद्रकका रस, चूके ( चौपतिया ) का रस व गुड़ समान भाग लेकर उसमें घी वा तिलका तेल प्रक्षेप देकर सेवन करानेसे गृध्रसी रोग और कमर, पीठ, त्रिक ( मेरुदण्डका सबसे निचला भाग ) व वस्तिगत वेदनाका निवारण होता है।

उदराध्मान रोगमें उपवास, पेटपर सेक ( फोमेण्ठ ) और एरण्ड तेलकी पिचकारी देकर मल निकालना लाभदायक होता है।

उदराध्मान रोगमें यह जुल्लाबकी औषधि अधिक लाभदायक होती है, यथा-पीपलका चूर्ण २ तोला, निशोथका चूर्ण ८ तोला, चीनी ८ तोला,एक साथ मिलाकर कोष्ठका बलाबल देखकर आधा तोला वा १ तोला मात्रामें जलके साथ सेवन कराना चाहिए। प्रत्याध्मान रोग की भी यही चिकित्सा है।

**अष्ठीला व प्रत्यष्ठीला रोगमें**-"हिंग्वादि-चूर्ण"-हींग,सोंठ, पीपल, मिर्च, पाठा, हाऊबेर, हरड़, कचूर, अजवायन, अजमोद, रुमाकदाना, अम्लवेत, खट्टा अनारदाना, कूठ, धनिया, जीरा, चीते की जड़, बच, जवाखार, सज्जीखार, सौंचलनमक, सेंधानमक व चव इन सबका चूर्ण समान भाग लेकर उपयुक्त मात्रामें गरम पानीके साथ सेवन कराना चाहिए।

**तूणी व प्रतितूणी रोगमें**-एरण्ड तेलकी पिचकारी देना

चाहिए। गायका घी गरम करके उसमें हींग व जवाखार प्रक्षेप देकर सेवन करानेसे भी तूणी व प्रतितूणी रोग आराम हो जाता है।

त्रिकस्थानमें वेदना होनेपर बालुका स्वेद देना चाहिए और रोगी के पीठकी तरफ उपले बालकर रखना चाहिए, ताकि उनका सेक पहुँचे

खरैंटी, मूर्वा व दालचीनी प्रत्येकका चूर्ण समान भाग चीनी सब के समान लेकर एक साथ मिलाकर २ तोले मात्रामें आधसेर दूधके साथ नित्य सेवन करानेसे मुहुर्मूत्र ( बार २ पेशाब उतरना ) रोग आराम हो जाता है।

यवक्षारका चूर्ण चीनीके साथ नित्य सेवन करनेसे मूत्ररोध ( पेशाब रुकना ) रोग आराम हो जाता है। मात्रा ३ माशा। पेठा व खरबूजेके बीज अथवा आमले पीसकर निचले पेटपर लेप करनेसे मूत्र रोध रोगकी शान्ति होती है। लालचन्दनसे लिपा हुआ एक चन्दन का टुकड़ा लिङ्ग व योनिके भीतर प्रवेश करनेसे भी मूत्ररोध रोगका निवारण होता है।

क्रोष्टुकशीर्ष रोगकी चिकित्सा वातरक्त रोगकी चिकित्साके समान करना चाहिए। चूकेके रसमें कूठ घिसकर उसमें सेंधानमक व तिलका तेल मिलाकर गरम कर इसको गरमागरम मालिश करनेसे "अक्षेप" का निवारण होता है। तेल आदि स्नेह मलना व स्वेद देने से भी आक्षेप आराम हो जाता है।

वातकण्टक रोगमें-बार २ रक्तमोक्षण, एरण्डतैल पीना और अग्नि-सन्तप्त ( आग पर गरम की हुई ) सुईसे जलाना लाभदायक होता है।

पाददाह रोगकी चिकित्सा वातरक्तकी चिकित्साके समान करना चाहिए। दोनों पैरोंमें मक्खन मल कर आगका सेक देनेसे प्रबल पाद-दाह रोग भी शान्त होजाता है।

अर्दित रोगकी चिकित्साकी तरह बाह्यायाम व अन्तरायामकी चिकित्सा करनी चाहिये। कालीमिर्च, सहजनेके बीज व छोटे पत्तेकी

तुलसीकी मञ्जरी समान भाग लेकर इनके चूर्णका नस्य लेनेसे अपतन्त्रक रोगमें विशेष लाभ होता है।

अपतानक रोगमें तेल मलना, तीक्ष्ण विरेचन देना और घी पिलाना लाभदायक होता है परन्तु तैलकी पिचकारीसे भी विशेष लाभ होता है

नये कुब्ज रोगमें दशमूल व अन्यान्य वातघ्न औषधियाँ तथा स्नेह प्रयोग व मांसका यूष लाभदायक होता है। इस रोगके एक दम बढ़ जानेसे वह असाध्य जानना चाहिए।

खट्टे बेरोंका गूदा, कुलथी, देवदारु, रायसन, उड़द, अलसी, तेल वाले फल ( एरण्डके बीज, अलसी सरसों व तिल आदि ), कूट, वच, सौंफ व जौका चूर्ण इन सब चीजोंको कांजीमें पीस कर और गरम कर लेप करनेसे वात रोगकी शान्ति होती है।

बहुत विस्तृत वातरोगोंकी पृथक् २ स्वतन्त्र रूपसे चिकित्साका वर्णन आयुर्वेद शास्त्रोंमें मिलेगा ही। यहाँ पर उन सबका वर्णन करना असम्भव व पुनरुक्तिदोषदुष्ट होगा। इस लिए पहिले भी बताया था और अब भी पुनर्वार स्मरण कराये देते हैं-कि-तेल मलना ( स्नेह-मर्दन ), तेल घी पीना ( स्नेहपान ) स्वेद और बस्ति प्रयोग करना तथा सारवान् पुष्टिकर आहार सेवन कराना वातजन्य समस्त रोगोंकी सबसे उत्तम और सिद्ध चिकित्सा है। बस इन उपायोंका अवलम्बन कर तुम उक्त अनुक्त सब प्रकारकी वातव्याधियोंकी चिकित्सा कर सकते हो, अर्थात् तेलमर्दन करा कर, घी, तेल, चर्बी व मज्जा सेवन करा कर, विविध प्रकारके स्वेद कल्पना कर स्वेद प्रयोग कर, परन्तु तैल आदिकी पिचकारी देकर व अवस्थाके अनुसार विरेचक औषधि देकर, पुष्टिकर आहार सेवन करा कर तथा आगे कही हुई वटिका आदि औषधियोंका प्रयोग कर निःसन्देह समस्त वातरोगोंके प्रशम करनेमें समर्थ होसकोगे।

प्रश्न—गुरुवर! आपके अनुग्रहसे वातव्याधियोंके विषयमें यथेष्ट

ज्ञान प्राप्त कर लिया है, अब जिज्ञासा है, कि-कौन २ से तैल, घृत व वटिका वातव्याधिमें प्रयोग करनी चाहियें।

उत्तर नीचे तुम्हारे पूछनेके अनुसार वातव्याधिके लिए सबसे उत्तम और सर्वसाधारणसे सर्वदा व्यवहार्य प्रसिद्ध तैल आदिके नाम और गुण बताते हैं, प्रयोग प्रकरणमें इनके प्रयोग कहे जावेंगे, सुनो-

**माषतैल**—अवबाहुक, अर्धाङ्ग शोष, अपतानक, आक्षेपक, हस्तकम्पन, शिरःकम्पन और कमर चूनड़ ( नितम्ब ) और जंघोंमेंका वायु का दर्द इन रोगोंमें इस तेलके मलनेसे विशेष लाभ होता है। आवश्यक होने पर इस तेलका नस्य व बस्ति ( पिचकारी ) भी प्रयोग की जासकती है।

**महामाषतैल**—पक्षाघात, अर्दित, बधिरता, हनुग्रह, कर्णशूल, मन्याशूल, शिरःशूल, हाथ पैरोंका काँपना व टेढ़ापन, खञ्ज, कलायखञ्ज, गृध्रसी व अवबाहुक आदि रोगोंमें इस तेलके मलनेसे विशेष लाभ होता है। आवश्यक होने पर इस तेलका नस्य व पिचकारी प्रयोगकी जासकती है। इस तैलमें नपुंसक ( खस्सी ) बकरेके मांस का क्वाथ डाल कर पकानेसे इसीको "छागलाद्यतैल" और महामाष तैल भी कहते हैं। इन दोनों तैलोंसे सब प्रकारकी वातव्याधियों में विशेष लाभ होती है।

**कुब्ज प्रसारणी तैल**—यह तैल श्लेष्मानुबन्धज सब प्रकारकी वातव्याधियोंकी सबसे उत्तम औषधि है। अङ्गोंका टेढ़ापन व स्तब्धता होने पर इस तेलके व्यवहारसे विशेष लाभ होता है।

**स्वल्पविष्णुतैल**—वायुके प्रकोपसे इन्द्रियोंकी दुर्बलता, सब धातुओंकी स्तब्धता, रतिशक्ति ( स्त्री सहवास ) की न्यूनता, शिरका दर्द, चित्तकी अस्थिरता, उद्गार आदि ऊर्द्ध वातरोग, अग्निमान्द्य, कब्जी व अफारा और रक्त व पित्तकी उष्णता आदि उपस्थित होनेपर इस तैलके मर्दनसे विशेष लाभ होता है।

**बृहद्विष्णुतैल**—स्वल्प विष्णुतैलके जो गुण कहे गये हैं, इसके

भी वे ही गुण हैं, विशेषतः इसके मलनेसे अँगुलियोंकी स्तब्धता व मन्यास्तम्भ आदि रोग दूर होते हैं और वातपित्तका प्रकोप शांत होता है। रतिशक्तिके अल्प होने पर विष्णुतैल व बृहद्विष्णु तैलको १०।१२ बूँद मात्रामें दूधके साथ सेवन करनेको दिया जाता है।

**मध्यम नारायणतैल व नारायण तैल**—बृहद्विष्णु तैलके सब गुण इस तैलमें भी हैं। इसके अतिरिक्त वायुके प्रकोपसे मनकी विकृति होने पर, मनके अस्थिर ( चञ्चल ) होने पर मध्यम नारायण-तैलसे विशेष लाभ होता है। उन्माद व अपस्मार रोगमें भी यह प्रयोग करना चाहिये।

**हिम सागर तैल**—शरीर व मस्तिष्कको स्निग्ध व शीतल करनेके लिए इससे उत्तम और दूसरा तैल नहीं है। चित्तविकारकी यह सबसे उत्तम औषधि है। इसके मर्दन करनेसे एकाङ्गशोष, सर्वाङ्ग शोष, धातुशोष, शुक्रक्षय व अत्यधिक दाह आदि प्रशमित होते हैं।

**छागलाद्यघृत व बृहच्छागलाद्यघृत**—आक्षेप, अर्दित व पक्षाघात आदि समस्त भयानक वातव्याधियोंमें इस घृतको व्यवहार करना चाहिए। इसके खिलानेके अतिरिक्त शरीर पर मलनेसे भी विशेष लाभ होता है। इससे उत्तम वातव्याधि नाशक और दूसरे घृत बहुत कम हैं। छागलाद्य घृतसे उपकार न होने पर बृहच्छागलाद्य घृत देना चाहिए। मात्रा—६ माशासे २ तोला तक। अनुपान—ईषदुष्ण दूध

**चतुर्मुखरस**—सब प्रकारकी वातव्याधियोंमें इसको व्यवहार करना चाहिए। वृद्धचिकित्सक गण कफानुबन्ध वातव्याधियोंमें इस को प्रयोग करते हैं। अनुपान—शहद व त्रिफलाका जल। यह औषधि—अपस्मार, उन्माद, यक्ष्मा, क्षय, पाण्डु, कास, श्वास, हिक्का, शूल, अम्लपित व प्रमेह आदि रोगोंमें भी प्रयोग की जासकती है।

**चिन्तामणि चतुर्मुखरस**—यह भी सब प्रकारकी वातव्याधियोंमें प्रयोग किया जा सकता है। वृद्धचिकित्सकगण पित्तानुबन्ध

वातव्याधिमें इसको प्रयोग करते हैं। अनुपान-शहद व त्रिफलका जल यह रस अपस्मार आदि रोगोंमें भी प्रयोग करना चाहिए।

**वातगजांकुश व बृहद्वातगजांकुश**—गृध्रसी, पक्षाघात व मन्यास्तम्भ आदि वातव्याधिमें तथा और सब प्रकारके वात प्रकोपमें यह औषधि प्रयोग करनी चाहिए। रोगके अनुसार अनुपान व्यवस्था करना चाहिए ( मक्खन १ तोला ।लहसुनके २।१ पोरे सेंधानमक १ माशा एक साथ मिला कर साधारणतः इस अनुपानके साथ व्यवहार किया जाता है )

**योगेन्द्ररस**—वातव्याधिमें पित्तका अनुबन्ध रहने पर यह योगेंद्र रस व्यवस्था करना चाहिये। अनुपान-त्रिफलाका जल, चीनीका शर्बत आदि। योगेन्द्ररस योगवाही औषधि है, विशेष २ अनुपानसे यह भिन्न २ प्रकृतिके विशेष २ रोगोंमें व्यवहार किया जाता है। अपस्मार, उन्माद, यक्ष्मा, शूल, अम्लपित्त, प्रमेह व बहुमूत्र आदि रोगोंमें यह प्रयोग किया जाता है। योगेन्द्ररस सेवन करने पर रातको गायका दूध सेवन कराना चाहिए।

## आमवात ( गठिया ) रोग।

वातव्याधिके विषयमें वर्णन कर चुके हैं, अब यहाँ पर यदि वही कुपितवायु आमरस व रक्तके साथ मिल कर "आमवात व वातरक्त" दो भिन्न धर्मी भयानक रोगोंको उत्पन्न करते हैं, इनका वर्णन किया जायेगा। पहिले आमवातके विषयमें कहते हैं, सुनो—

भोजन किये हुए आहारके परिपाक होने पर उससे प्रथम जो रस उत्पन्न होता है, उस रसको आमरस कहते हैं। आहारसे उत्पन्न यही रस क्रमशः रस-रक्त आदि धातुओंकी ऊष्मासे परिपाक होकर रक्त आदि धातुओंके रूपमें परिणत होता है। ऊष्माके अल्प होजाने पर यदि उस आमरसका परिपाक ठीक २ न हो, तो कुपित वायु उसको दूषित करके आमाशय व सन्धि आदि स्थानोंमें ले जाता है। वायुसे इस

तरह पर ले जाया हुआ वह आमरस उन उन स्थानोंमें कफ आदि से और भी दूषित होकर शिरा, धमनि आदि स्थानोंमें पहुँच कर उन्हें क्लेद युक्त कर देता है। इससे शरीर शीघ्र दुर्बल और हृदय बोझीला होता है। इस प्रकारसे दूषित आमरस अतिभयानक और विविध रोगोंका मूल कारण होजाता है। इस आमरससे संयुक्त हुए वायु व कफ एक साथ कुपित होकर त्रिकसन्धि-मेरु-दण्ड की निम्नसन्धि-में प्रवेश कर उस स्थानको निष्क्रिय और वेदनायुक्त कर देते हैं अथवा समस्त शरीरमें पहुँच कर समस्त शरीरको ही स्तब्ध व वेदनायुक्त कर देते हैं। इसको ही आमवात रोग कहते हैं।

शरीरमें दर्द, अरुचि, तृष्णा, आलस्य, शरीरका भारीपन, ज्वर, अविपाक व शोथ ये आमवातमें साधारण लक्षण होते हैं।

आमवातके कुपित होने पर यह सब रोगोंकी अपेक्षा अधिक कष्टदायक होता है। इससे हाथ, पैर, त्रिक, जानु, उरू व सन्धिस्थानोंमें वेदनायुक्त शोथ होता है, वह दूषित आमरस जिस स्थानको आश्रय करता है, उस स्थानमें बिच्छूके डंकके समान अधिक दर्द होता है। इस रोगमें अग्निमान्द्य, मुख नाक आदिसे पानी गिरना, अरुचि, शरीर का भारीपन, उत्साहकी हानि, मुखकी विरसता, दाह, कुक्षिदेशमें वेदना व कठिनता, मलबद्धता, शरीरकी जड़ता आदि उपद्रव उपस्थित होते हैं।

**चिकित्सा**—वायुके गुणधर्मी होनेके कारण रूक्ष वातव्याधिमें जिस प्रकार तैल आदि स्नेह पदार्थ सबसे उत्तम होते हैं, आमवात रोगमें ऐसा नहीं होता। क्योंकि—आमरस और उसका सहकारी कफ भी स्निग्ध गुणधर्मी पदार्थ होता है, इस लिए आम रोगमें रूक्ष स्वेद आदि उपचार सबसे उत्तम होते हैं। इस रोगमें बालूकी पोटली गरम करके उससे स्वेद देना चाहिए।

**शङ्करस्वेद**—कपासके बीज, कुलथी, तिल, जौ, एरण्डकी जड़, अलसी, पुनर्नवा, शणके बीज व सहजनेके बीज ये सब चीजें अथवा

इनमेंसे जो २ चीजें मिल सकें, उनको कूट कर कांजीमें भिगोकर और दे। कपड़ेकी पोटलियोंमें बाँध कर तथा एक हाँडीको काँजीसे भरकर चूल्हे पर चढाकर उस हाँडीके मुखको बहुतसे छेद वाले सकोरेको रख कर अच्छी तरह कपड़मिट्टीसे बन्द कर देना, तब इस सकोरेके ऊपर इन पोटलियोंको रखकर गरम होने पर एक २ पोटलीको लेकर उस गरमागरम पोटलीसे दर्दकी जगहको सेकना। जब ठंडी हो जाय तब दूसरी पोटली लेकर उससे सेकना। इस प्रकार क्रमशः कुछ देर तक स्वेद देना चाहिए। यह स्वेद आमवात रोगीको एकमात्र सबसे उत्तम औषधि है। इस स्वेदसे कोहनी, मस्तक, उदर, पीठ, कमर, हाथ, पैर, अँगुली, गुल्फ ( गँठवे ), छाती व गला आदि स्थानोंका प्रबल आमवात जनित दर्द आराम हो जाता है।

सौंफ वच, सोंठ, गोखरू, बरनेकी छाल, खरेटी, पुनर्नवा, कचूर प्रसारणी, जयतके फल व हींग ये सब चीजें या जितनी भी चीजें मिल सकें उनको काँजी ( न मिलने पर-जल ) में पीस कर तथा गरम कर लेप करनेसे आमवात रोग नष्ट हो जाता है।

पुराने गन्नेकी जड़, केमुक ( केउआ ) की जड़, सहजनेकी छाल, दीमककी मिट्टी इन सब चीजोंको गोमूत्रसे पीस कर तथा आँच पर गरम कर इस लेपको व्यवहार करानेसे भी गठियाका दर्द आराम हो जाता है।

गठिया रोगमें विरेचन कराना चाहिए। इसके लिए रोगीको शुद्ध एरण्डतैल या निशोथ अथवा हरड़ वा और किसी विरेचक औषधि जुल्लाव देना चाहिए। रोगी दुर्बल हो, तो, एरण्ड तैलकी वस्ति ( एनिमा ) प्रयोग करना चाहिए। एरण्डका तेल आमवातकी सबसे सबसे उत्तम औषधि है।

दशमूलके क्वाथके साथ एरण्डका तेल सेवन करानेसे कोखका दर्द ( कुक्षिशूल ) वस्ति ( मसानेका ) शूल व कमरका दर्द आराम हो जाता है।

सन्धिगत, अस्थिगत, मज्जागत वा सर्वाङ्गगत आमवात रोगमें "रास्नापंचकपाचन"—रायसन, गिलोय, एरण्डकी जड़, देवदारु व सोंठ इन पाँच चीजोंका क्वाथ बनाकर सेवन कराना चाहिए जुल्लाब देनेकी आवश्यकता होने पर इस क्वाथके साथ एरण्डका तैल मिलाकर सेवन कराना चाहिए।

**योगराज गुग्गलु व सिंहनाद गुग्गलु**-ये आमवात रोगकी सबसे उत्तम प्रभाव शाली औषधियाँ हैं। ये औषधियाँ सब तरहके आमवात रोगमें प्रयोग करनी चाहियें। मात्रा-३-६-माशा तक। अनुपान गरम जल वा गरम दूध।

रसोनपिण्ड—यह भी आमवात रोगकी महौषधि है। मात्रा ३-६ माशा तक। अनुपान-जल।

त्रिफलादि लौह—इसके सेवन करनेसे दुःसाध्य आमवात रोग भी आराम हो जाता है। यह औषधि पाण्डु, कामला, शोथ, शूल और विषमज्वरोंमें भी प्रयोग की जा सकती है।

प्रसारणी तैल, सैन्धवाद्य तैल, विजयभैरव तैल व महाविजय भैरव तैल आमवात रोगमें मलनेके लिए प्रयोग करने चाहियें। इनके मर्दन करनेसे सब तरहका आमवात रोग व वातव्याधियोंमें उपकार होता है।

शुण्ठीघृत—इस घीके सेवन करानेसे आमवात व कमरका दर्द (कटिशूल) आराम हो जाता है।

## वातरक्त व कुष्ठरोग।

आमवात रोगके विषयमें वर्णन कर चुके हैं। अब वातरक्त रोग और कुष्ठरोगकी भी साथ व्याख्या करेंगे। क्योंकि-वातरक्त व कुष्ठ रोग दोनों प्रायः एक जातीय होते हैं। इनके निदान और लक्षण एकसाँ होते हैं तथा चिकित्सा विधि भी प्रायः मिलती जुलतीसी होती है। इनमें सिर्फ भेद यही होता है, कि-वातरक्त रोगकी अपेक्षा कुष्ठ रोग

आरम्भसे ही दुश्चिकित्स्य और भयावह होता है। वातरक्त रोगके आरम्भमें पहिले केवल वायु व रक्तका ही प्रकोप होता है और वह त्वचा व मांसको आश्रय करके होता है। पर कुष्ठ रोगमें आरम्भसे ही वात आदि तीनों दोषोंका प्रकोप होता है और वह त्वचा, मांस, रक्त व शरीरके जलीयअंश ( अम्बुपदार्थ ) को आश्रय कर उत्पन्न होता है। वातरक्त रोग विशेषतः कभी तो पादमूल ( पैरोंकी जड़ ) से और कभी हाथोंकी अँगुलियोंसे भी उत्पन्न होकर सर्पके विषके समान धीरे २ सारे शरीरमें फैल जाता है। कुष्ठ रोगके होनेका ऐसा कोई विशेष नियम नहीं है अर्थात् वह सारे शरीरके किसी भी हिस्सेमें उत्पन्न हो जा सकता है। वातरक्त रोगकी यदि आरम्भसे ही सावधानीसे चिकित्सा न की जाय, वह क्रमशः गम्भीर धातुओंका आश्रय कर कुष्ट रोगका स्वरूप धारण कर लेता है। उस समय वातरक्त और कुष्टमें कोई भी भेद नहीं रहता। सारांश यह कि-प्रबल वातरक्त रोग में शरीर सड़े हुए पेठेके फलके समान हो जाता है। कुष्ट रोगमें भी ऐसा ही होता है, तथापि कुष्टरोगमें पचन क्रिया ( सड़नेका क्रम ) बहुत प्रबल होती है।

**वातरक्त व कुष्ठका निदान**—विरुद्ध भोजन ( दूध मछली आदि एक साथ खाना ) अध्यसन ( पहिले किये हुये भोजनके हजम होनेके पूर्व ही पुनर्वार भोजन करना ) अति क्रोध, रातमें जागना, दिनमें सोना, अधिक आँच सेकना, धूप सेकना, अधिक चलना फिरना, मलमूत्र आदिका वेग रोकना, घोड़े आदि की सवारीमें चलते २ खाना, सड़ा हुआ, सूखा व बासी अन्न खाना या अधिक मछली मांस खाना तथा पापकर्मोंका करना आदि आहार विहारसे वातरक्त व कुष्टरोग उत्पन्न होता है।

**वातरक्त व कुष्ठके लक्षण**—शरीरमें जगह २ पर काले, सुफेद वा ताम्रवर्णके दाग उठना या ततैय्याके काटनेके समान शोथ (सोजा) होना, शरीरका विवर्ण होना, दाह होना, शरीरमें चिउटियोंके चलने

के समान वा चिउटियोंके काटनेके समान मालूम पड़ना, खुजली होना, सुई चुभानेके समान दर्द होना, शरीरमें जगह २ पर स्पर्श शक्ति का लोप हो जाना ( शरीरका शून्य पड़ जाना ), अधिक पसीना आना वा पसीना बिलकुल न आना, शरीरमें जगह २ पर रूखा व चिकना सोजा, चबके या चमचमाहटके समान दर्द होना, सामान्य चोट फटाकसे ही घाव होजाना और घावका चिरस्थायी हो जाना, घावके सूख जाने पर भी घावकी जगह रूखी रहना तथा खून का रङ्ग काला हो जाना। ये लक्षण वातरक्त ( खूनका विगाड़ ) व कुष्ट ( कोढ़ ) रोगमें होते हैं।

वातरक्त व कुष्टरोगके किस धातुका आश्रय करने पर कैसे २ लक्षण होते हैं, यह आगे बताया जाता है, सुनो—

**रस धातु गत होने पर**—अंगोंकी विवर्णता व रूक्षता, स्पर्श शक्तिका लोप होना, रोमाञ्च व अधिक पसीना आना। **रक्त धातुगत** होने पर—खुजली चलना व अधिक पीपका बहना। **मांसधातुगत** होने पर शोथकी कठिनता, मुँहका सूखना, पिड़का अर्थात् छोटी २ खुजली वाली फुन्सियोंके समान शोथ होना और फोड़ोंका निकलना। **मेदधातुगत होने पर**—हाथ पैरकी अंगुलियोंका गिरना, शरीरका टेढ़ा होना व घावका बढ़ना। **अस्थि व मज्जागत होने पर**—नाकका झिर जाना या बैठ जाना, आँखोंका लाल रहना, घावमें क्रिमियाँ होजाना और स्वरभङ्ग होना ये लक्षण हुआ करते हैं। **शुक्र वा शोणित** स्त्रियोंका रज ) धातुका आश्रय करने पर—उपरोक्त सबके सब लक्षण उपस्थित होजाते हैं। इसके अतिरिक्त इस प्रकारके दुष्ट शुक्र व शोणित स्त्री पुरुषकी जो सन्तान उत्पन्न होती है वह कुष्ट रोग लिए उत्पन्न होती है।

वातरक्त व कुष्टरोग रस, रक्त व मांसगत होने पर विचारपूर्वक चिकित्सा करनेसे वे साध्य होसकते हैं। परन्तु मेद, अस्थि, मज्जा व शुक्रगत होने पर ये असाध्य होजाते हैं। वातरक्त विशेषतः कुष्ट अति

विपज्जनक रोग होता है। इस लिए इनके आरम्भसे ही उचित चिकित्सा अवलम्बन करना चाहिए।

आयुर्वेद शास्त्रमें दाद, खुजली, पामा, विचर्चिका, लूता व धवल ( सुफेद कोढ़ ) आदि क्षुद्र रोग भी कुष्ट रोगमें शामिल किये गए हैं और कुष्ट रोगकी चिकित्साके साथ ही उनकी भी चिकित्सा कही गई है। परन्तु लोकमें वातरक्त व कुष्टरोग जितने भयंकर रोमाञ्चकारी रोग माने जाते हैं, ये दद्रु आदि इस प्रकारके नहीं होते। बल्कि इनको क्षुद्र रोगोंमें गिना जाता है। इस लिए इन ( दाद आदि ) रोगोंका वर्णन यहाँ पर न करके आगे क्षुद्र रोगोंके वर्णनके साथ इनकी चिकित्सा आदिका भी वर्णन किया जायेगा।

**वातरक्त व कुष्टरोगकी चिकित्सा**—वातरक्त व कुष्टरोगमें रक्तमोक्षण ( जोंक आदि लगा कर खून निकालना ) विरेचन देना व स्निग्ध शीतल द्रव्योंका प्रलेप करना उत्तम व आवश्यकीय होता है। शरीरमें बड़ा भयानक दाह व सुई चुभोनेके समान दर्द होने पर जोंक लगा कर खून निकालना चाहिए।

बाँसा, गिलोय व अमलतास इनका काढा बना कर उसमें एरण्ड का तेल मिला कर विरेचन करानेके लिए पिलाना चाहिए। इसके अभ्याससे सर्वाङ्ग गत वातरक्त व कुष्टरोग तक दूर होजाता है। इन रोगोंमें एरण्ड तैलकी पिचकारी देना बहुत लाभदायक होता है।

एरण्डके बीज, गिलोय, सौंफ, जीरा व खरैंटीके बीज इन सब चीजोंको बकरीके दूधमें पीस कर शोथकी जगह पर बारर लेप करना चाहिए।

हरड़ बड़ी, करञ्जवे, सुफेद सरसों, हल्दी, बावची, सेंधानमक व बायविडंग इन सब चीजोंको गोमूत्रके साथ पीसकर लेप करना चाहिए।

मनशिल, हरताल, कालीमिर्च, सरसोंका तेल व आँकका दूध इन सब चीजोंको पीस कर लेप करनेसे वातरक्त व कुष्टरोगमें उपकार होता है।

प्रतिदिन उपयुक्त मात्रामें गोमूत्र पीनेसे भी वातरक्त व कुष्टरोगमें उपकार होता है।

चाल मुँगरेके बीजोंकी गिरी, मोम व गन्धककका चूर्ण एक साथ पीस कर लेप करनेसे भी विशेष लाभ होता है।

**पञ्चनिम्ब चूर्ण**—नीमके पत्ते, जड़, छाल, फूल व फल समान भागका चूर्ण बनाकर घी, शहद, गोमूत्र, जल, आमलेका रस व दूधके साथ उपयुक्त मात्रामें प्रतिदिन सेवन करनेसे एक वर्षका वातरक्त व कुष्टरोग आराम होजाता है। पथ्य-दूध, घी व पुराने चावलोंका अन्न आदि। मांस मछली सेवन वर्जित।

**वातरक्तान्तक रस, गुडुच्यादि लौह, अमृतांकुर लौह व माणिक्य रस**—ये सब औषधियाँ वातरक्त व कुष्ट रोगमें साधारणतः प्रयोग की जाती हैं। अनुपान-धनिया व पटोलपत्रका क्वाथ, अथवा नीमके फूल, पत्ते व छालका रस। रसमाणिक्यका अनुपान-घी व शहद है।

**गुडूची, मध्यम गुडूची व बृहत् गुडूची और महारुद्र गुडूची तैल, सोमराजी तैल व बृहत् सोमराजी तैल, मरिचाद्य तैल वा कन्दर्पसार तैल**—ये सब तैल वातरक्त व कुष्ट रोगकी बहुत प्रसिद्ध व उपयोगी औषधियाँ हैं। प्रतिदिन इनमेंसे किसी एक तैलका मर्दन कराना चाहिए। इन सब तैलोंके मलनेसे त्वचाकी दुष्टि, रक्तदुष्टि व पित्त दुष्टिका निवारण होता है।

**शतावरीघृत, पञ्चतिक्त व महातिक्त घृत**—वातरक्त व कुष्टरोगकी महौषधियाँ हैं। मात्रा-६ माशासे २ तोलातक। अनुपान-दूध शीलगरम।

## ❀ उन्माद ( बावलापन ) रोग ❀

प्रश्न-गुरुवर! मुझे एक बात स्मरण हो आई है-कि लोगोंमें उन्माद वायुरोग नामसे प्रसिद्ध है, फिर आपने वातव्याधियोंके वर्णनमें इस का कहीं उल्लेख नहीं किया, क्या कारण है ?

उत्तर-उन्माद रोगमें वायुके लक्षण अधिक देख कर ही लोग इस को वायुरोग कहते हैं। परन्तु यह वात जनित असाधारण वातव्याधि नहीं है, क्योंकि-उन्माद रोगकी उत्पत्ति वात आदि तीनों दोषोंसे हुआ करती है। इसके अतिरिक्त यह शारीरिक रोग भी नहीं है, बल्कि मानस रोग है। इस लिए ही वातव्याधि-प्रकरणमें उन्माद रोगका उल्लेख नहीं किया गया है।

प्रश्न-उन्माद रोगकी उत्पत्ति कैसे होती है और उन्माद रोगके लक्षण व चिकित्सा क्या है?

उत्तर-अनियमित आहार विहारसे वायु, पित्त व कफ दुष्ट होकर बुद्धिके अधिष्ठान हृदय व हृदयाश्रित मनोवहा धमनियोंको दूषित कर बुद्धि व स्मरण शक्तिको नाश कर मनुष्यके चित्तको विकृत कर देते हैं, इससे ही उन्माद रोग उत्पन्न होता है, इसके अतिरिक्त विष खाजाना, एकाएक अतिभय व अतिहर्ष, धातुक्षय, धननाश, बन्धुनाश अथवा अभिलषित कामिनी ( स्त्री ) का न मिलना इस प्रकारके कारणोंसे भी वात आदि दोष कुपित होकर चित्तको विकृत करके उन्माद रोग उत्पन्न कर देते हैं। जिन पुरुषोंका मानसिक बल व सत्वगुण कम रहता है साधारणतः ऐसे पुरुषोंको ही उन्माद रोग होते देखा जाता है। प्रथमोत्पन्न अप्रवृद्ध उन्माद रोग "मद" नामसे कहा जाता है।

उन्मादके लक्षण-बुद्धिभ्रम, चित्तकी चंचलता, अस्थिर दृष्टि वा विमार्ग दृष्टि, अस्थिरता, असम्बद्ध ( ऊटपटाँग ) वाक्य कहना व हृदयशून्यता ( विचाररहित ) ये उन्माद रोगके साधारण लक्षण होते हैं। इसके अतिरिक्त अकारण हँसना, मुसकाना, कभी खुशीमें आकर नाचना गाना और बातचीत करना, हाथ पैरोंको पटकना, दौड़ना, बिना किसी शोक-दुःख-जनक कारणके रोना, किसीकी बात सह न सकना, कपड़े लत्ते शरीरसे उतार कर नङ्गा होना डराना धमकाना, जल्दी २ चलना या भागना, कभी बहुत अधिक बोलना और कभी बार २ पूछने पर भी कुछ न बोलना या बहुत कम

कहना, अरुचि, नारिप्रियता, एकान्तवास पसन्द करना, कभी नींद अधिक आना और कभी बिल्कुल न आना तथा अपनी गुप्तवातोंको सर्वसाधारणके पास कह डालना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। किसी किसी को इस रोगके समय देवता व ब्राह्मणोंमें अधिक भक्ति हो जाती है और किसी २को इनसे बिल्कुल द्वेष हो जाता है, कोई २ बहुत पवित्रताके साथ रहने लगते हैं और कोई २ बिल्कुल आचारभ्रष्ट होकर गन्दगी पसन्द करते है, कोई २ बिल्कुल शान्तभावसे रहते हैं और कोई २ बिल्कुल निष्ठुर हो जाते हैं उन्माद रोगमें इस प्रकार सैंकड़ों लक्षण उपस्थित होते हैं, जिन सबका इस छोटे निबन्धमें वर्णन नहीं किया जा सकता। बड़े २ संहिता ग्रन्थोंके अनुशीलन व रोगी पर्यवेक्षणसे तुम स्वयं समझ सकोगे।

**चिकित्सा**—उन्माद रोगकी चिकित्सा करना बहुत कठिन काम है। क्योंकि-इस रोगका रोगी चिकित्सक व परिचारक किसीके भी इच्छाधीन नहीं रहता, वह अपनी इच्छाधीन सब कुछ किया करता है, किसी तरह भी यथावत् पथ्य व अपथ्य सम्बन्धी सलाह पर नहीं चलता, यहाँ तक कि-बहुत समय उसको किसी तरहकी औषधि भी नहीं खिलाई जा सकती। रोगी विविध प्रकारके उत्पात करता है। इस लिए उन्माद रोगकी चिकित्सा रोगीकी सेवा शुश्रूषा करने वालों के ऊपर ही अधिक निर्भर करती है।

जिस प्रकारकी वातचीत करनेसे, जिस प्रकारकी कथा कहानी सुनानेसे, जिस प्रकारका विश्वास दिलानेसे वा जिस प्रकारका कार्य करनेसे रोगीके विक्षिप्त (चंचल) मनको अपेक्षासे अधिक समय तक एक जगह स्थिर रखाजाय, और जिस तरहसे रोगी औषधि सेवन करे व यथा सम्भव नियमानुसार चले, ऐसे उपाय अवलम्बन करने चाहियें। रोगीकी अवस्थाके अनुसार कभी २ रोगीको प्यारसे मीठी२ बातोंसे सन्तुष्ट करना, कभी डराना धमकाना, कभी ताड़ना करना (मारना) और कभी २ उसको रस्से आदि से बाँध कर भी रखना

पड़ता है। इस लिए उन्माद-रोगीकी परिचर्याके लिए बुद्धिमान् अनुभवी, साहसी, बलवान् व चतुर आदमीको चुनना आवश्यकीय होता है। क्योंकि-हम पहिले ही बता चुके हैं, कि-उन्माद रोगमें परिचर्यासे ही अधिक लाभ होता है।

उन्माद रोगीके चंचल चित्तको स्थिर करना ही एक मात्र चिकित्सा है। यदि किसी मनोवांछित प्रियवस्तुके न मिलनेके कारण उन्माद रोग हुआ हो, तो यदि उस वस्तुका मिलना सम्भव हो, तब वह लाकर रोगीको देना चाहिए, अथवा उसको इस तरहका विश्वास बैठा देना चाहिए, कि-जिससे उसको विश्वास होजाय कि-उस वस्तुको वह अवश्य ही पाजायेगा। उन्माद रोगीको प्रतिदिन धारोष्ण दूध पिलाना हितकर है। जिस तरहसे रोगीका कोष्ठ साफ रहे इस ओर विशेष ध्यान रखना चाहिए। यदि दस्त साफ न आता हो, तो दस्त करानेके लिए एरण्ड तैलका जुल्लाव या पिचकारी प्रयोग करनी चाहिए और प्रतिदिन त्रिफला ( हरड़, बहेड़ा, आमला ) का फाण्ट बनाकर पिलाना चाहिए। शतावरका रस सेवन कराना या पुराना घी उन्माद रोगके लिये विशेष लाभदायक औषधि है।

ब्राह्मी बूटीका रस ४ तोला, कूठका चूर्ण २ माशा व शहद ८ माशा अथवा पुराने पेठके बीजोंका चूर्ण ८ माशा कूठका चूर्ण २ माशा व शहद ८ माशा या सुफेद वचका चूर्ण ८ माशा, कूठका चूर्ण २ माशा व शहद ८ माशा ये तीनों प्रयोग उन्माद रोगकी विशेष फलदायक औषधियाँ हैं

**चतुर्मुख, चिन्तामणि चतुर्मुख, योगेन्द्ररस, मकरध्वज ( अभावमें रस सिन्दूर )**—ये सब औषधियाँ उन्माद रोगमें विशेष लाभदायक होनेके कारण सब ही वृद्धवैद्य व्यवहार करते हैं। अनुपान-शहदमें मिलाकर चाटनेके अनन्तर त्रिफलाका जल, शतावरका रस, तुलसीके पत्तोंका रस व पानके रसके साथ सेवन कराना चाहिए।

**चैतसघृत, महाचैतसघृत, पानीयघृत व क्षीरकल्याण** घृत—ये उन्माद रोगकी सर्वोत्तम औषधियाँ हैं। मात्रा—६ माशासे २ तोले तक। अनुपान—गरम दूध व चीनी।

जिस प्रकार तैल वातव्याधिकी प्रधान औषधि है, उसी प्रकार उन्माद रोगके लिए चैतसघृत आदि भी प्रधान औषधि है। इस लिए रोगीको अवश्य ही ऊपर कहे हुए घृतोंमेंसे किसी एक घृतको अवश्य ही व्यवस्था करना चाहिए, शरीर पर मलनेके लिए पुराना घी सौ बार पानीसे धोकर मलना चाहिए।

उन्माद रोगमें विचार पूर्वक वातव्याधिमें कही हुई औषधियाँ और "**वायुच्छायासुरेन्द्र तैल**"—मध्यम नारायण, विष्णु व हिम-सागर तैल आदि भी व्यवस्था करना चाहिए।

## अपस्मार ( मृगी ) रोग।

अपस्मार रोगकी सम्प्राप्ति तथा चिकित्सा उन्माद रोगके समान होती है। इस लिए अब अपस्मार रोगका वर्णन करते हैं, सुनो—

**सम्प्राप्ति**—उन्माद रोगको उत्पादन करनेके समान अपस्मार रोग को भी वात आदि तीनों दोष चिन्ता शोक आदि कारणोंसे अत्यधिक कुपित होकर हृदयमें अवस्थान करके स्मृति ( ज्ञान ) को नाश करके अपस्मार रोगको उत्पन्न कर देते हैं। इस रोगमें स्मरण शक्ति नष्ट हो जाती है। इस लिए इसका नाम अपस्मार रखा गया है।

**लक्षण**—अन्धेरा देखना ( ज्ञानका अभाव ) नेत्रोंका विकृत होना व हाथ पैरोंका फेंकना ये अपस्मार रोगके साधारण लक्षण हैं। अप-स्मार रोगमें बीच २ में संज्ञा ( होश ) होती है और फिर रोगी बेहोश हो जाता है। **वायुका प्रकोप** अधिक होने पर—रोगी काँपता है, दाँतोंसे दाँतोंको चबाता है, मुँहसे फेन निकालता है, जल्दी २ साँस लेता है और होश होजाने पर लाल वा काले रङ्गके कल्पित प्राणियों को देखता है। **पित्तका प्रकोप** अधिक होने पर—रोगीका शरीर,

मुखसे निकलने वाला फेन और उसका मुख व नेत्र पीले होते हैं, तथा होश आजाने पर वह पीले व लाल रङ्गके अवास्तविक ( कल्पित ) प्राणियोंको देखता है। कफका प्रकोप अधिक होने पर-रोगीके मुख से निकला हुआ फ़ेन, अङ्ग, मुख व नेत्र सुफ़ेद रङ्गके होते हैं और रोगी सचेत होने पर सुफ़ेद रङ्गके अस्वाभाविक प्राणियोंको देखता है तथा अपस्मारका वेग ( मृगीका दौरा ) देरमें दूर होता है अर्थात् वातपित्त प्रधानमें जिस प्रकार शीघ्र ही मृगीका दौरा दूर होजाता है, इसमें उस प्रकार शीघ्र नहीं छूटता, वल्कि दौरा, बहुत देरतक रहता है।

साधारणतः कुपित हुए दोष एकपक्ष ( १५ दिन ), एक महीना बारह दिनके अनन्तर अथवा इससे कुछ आगे पीछे अपस्मारका दौरा कर देते हैं। यह अपस्मार रोग बहुत विपज्जनक ( खतरनाक ) रोग है, कब किस समय कहाँ पर ( बुरी भली जगह पर ) दौरा आजाय कुछ ठीक नहीं रहता। अग्नि, जल व वृक्ष आदि ऊँची जगहें अपस्मार रोगीके लिए बहुत, विपज्जनक समझना चाहिए।

**चिकित्सा**—उन्माद रोगकी जो पहिले बता चुके हैं, अपस्मार रोगकी भी वही चिकित्सा विधि है। इस लिए उन्माद रोगमें कहेहुए सब उपाय व औषधियाँ इस रोगमें व्यवस्था करना चाहिए।

**स्वल्प पंचगव्य व महा पंचगव्य घृत**—इस रोगकी महौषधियाँ हैं।

## मूर्छा व संन्यास रोग।

जिस प्रकार अपस्मार रोगमें संज्ञा लोप होजाती है, मूर्छा व संन्यास रोगमें भी उसी प्रकार संज्ञानाश होजाती है। इसलिए प्रसङ्ग वस यहाँ पर मूर्छा व संन्यास रोगका वर्णन किया जाता है, सुनो—

**मूर्छा**—अनियमित आहार विहारसे, विष खा जानेसे अथवा अतिशोक या अतिभयसे वात आदि तीनों दोष कुपित होकर जब मन के अधिष्ठान चक्षु-आदि इन्द्रियों और संज्ञावाहक स्नायुओंको आवृत

कर देता है, तत्क्षण मनुष्य मूर्छित होकर गिर पड़ता है। उस समय उस को सुख दुःख कुछ भी मालूम नहीं होता, वह लकड़ीके समान निर्जीव होकर गिर जाता है। जिनका मानसिक बल व सत्वगुण कम होता है, प्रायः उनको ही मूर्छारोग हुआ करता है मूर्छा रोगमें **वायुका प्रकोप** अधिक होनेपर-रोगी आकाशमार्गको नीला, काला वा लालवर्णका देखतेर मूर्छित होताहै। **पित्तका प्रकोप** अधिक होने पर-रोगी आकाशमार्ग को लाल पीला वा हरे रङ्गका देखते २ मूर्छित होता है। **कफका प्रकोप** अधिक होने पर-रोगी आकाशको मेघाछन्न ( बादलसे घिरा हुआ ) या घोर अन्धकारावृत ( गाढ़े अन्धेरेके पर्देसे ढका हुआ जैसे ) देखतेर मूर्छित होता है। मूर्छारोगमें यद्यपि थोड़ा बहुत तीनों दोषोंका प्रकोप होता है, परन्तु तथापि पित्तको ही इस रोगका प्रभु ( प्रधान ) जानना चाहिए।

**संन्यास रोग**—संन्यास रोगमें वात आदि तीनों दोष अधिकतर कुपित होकर प्राणोंके अधिष्ठान हृदयको आश्रय कर बोलनेकी शक्ति, शरीर व मनकी चेष्टाओंको नष्ट करके मनुष्यको संन्यस्त ( बिलकुल बेहोश ) कर देते हैं। यह संन्यासरोगपीड़ित मनुष्य काष्ठके समान निष्क्रिय और मृतवत् संज्ञाहीन होजाता है।

**मूर्छारोगकी चिकित्सा**—मूर्छा रोगमें पित्त प्रधान होता है। इस लिए इसमें शीतल जलका निषेक ( धार छोड़नी ), ठंडे पानीके छींटे मारना, नहाना, चन्दन आदि शीतल द्रव्योंका लेप करना, शीतल पंखा करना और कपूर आदि शीतल सुगन्धित द्रव्योंसे सुवासित जल पिलाना अच्छा होता है। प्रतिदिन धारोष्ण दूध सेवन करनेसे मूर्छा रोग आरोग्य होजाता है।

बेरकी गिरी, कालीमिर्च, खश व नागकेशर इन सब चीजोंको ठंडे पानीमें घोट कर सेवन करानेसे या पीपलका चूर्ण शहदमें मिला कर सेवन करानेसे मूर्छा रोगमें उपकार होता है। प्रतिदिन रातको त्रिफलाका चूर्ण शहदके साथ और प्रातःकाल अद्रक व गुड़ मिलाकर

शहदके साथ पीपलका चूर्ण अथवा सायंकालमें चीनीके साथ पके हुए जम्बीरी निम्बुका रस सेवन करनेसे अम्लपित्त रोग शान्त होजाता है।

छिलका निकाले हुए जौ, अडूसेके पत्ते व आमले इनके काढ़ेमें दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायचीका चूर्ण व शहद मिला कर सेवन कराना चाहिए। पथ्य-मूँगका यूष।

सोंठ व पटोलपत्रका क्वाथ सेवन करनेसे अम्लपित्त रोगके पित्त, कफ, खुजली व वमन उपद्रव शान्त होजाते हैं। पटोलपत्र, सोंठ, गिलोय व कुटकी इनका काढा सेवन करनेसे वेदना, दाह व वमन आदि उपद्रव शान्त होजाते हैं। जौ, पीपल व पटोलपत्रका क्वाथ सेवन करनेसे अरुचि, अम्लपित्त व वमन रोगका निवारण होता है।

गिलोय, नीमकी छाल, पटोलपत्र व त्रिफला इनका शीत कषाय शहदके साथ सेवन करनेसे अम्लपित्त रोगमें विशेष लाभ होता है।

**दशाङ्ग कषाय**—अडूसेकी छाल, गिलोय, पित्तपापड़ा, नीमकी छाल, चिरायता, भंगरा, त्रिफला व पटोलपत्र इनके काढेमें शहद मिला कर सेवन करनेसे अम्लपित्तरोग आराम होजाता है।

**पञ्चनिम्बादि चूर्ण**—नीमकी छाल, पत्ते, फूल, जड़ व फल इन सबका १ भाग, विधायरेकी जड़ २ भाग, जौका सत्तू १० भाग इन सबके साथ चीनी मिला कर मीठा कर देना चाहिए। मात्रा २ तोला अनुपान-शहद व शीतल जल। इसके सेवन करनेसे अम्लपित्त व पित्तकफ जनित शूल रोगका निवारण होता है।

**अग्निपत्तिकर चूर्ण**—सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आमला, नागरमोथा, कालानमक, वायविडंग, इलायची दाने व तेजपात प्रत्येक का चूर्ण १ तोला, लौंगका चूर्ण ११ तोला, निशोथका चूर्ण ४४ तोला व चीनी ६६ तोला इन सब चीजोंका चूर्ण एक साथ मिला कर रख देना चाहिए। आवश्यकताके समय उपयुक्त मात्रामें सेवन करानेसे

अम्लपित्त रोग, मलमूत्ररोध व अग्निमान्द्य आदि बहुतसे रोगोंको आराम करता है।

**शुण्ठीखण्ड, पिप्पलीखण्ड व सौभाग्य शुण्ठीमोदक**—अम्लपित्त रोगकी प्रसिद्ध औषधियाँ हैं। मात्रा—६ माशासे १ तोला तक। अनुपान-दूध व जल।

**अम्लपित्तान्तकलौह, पानीयभक्तवटी व लीलाविलास रस**—ये अम्लपित्त रोगकी सर्वोत्तम औषधियाँ हैं। अनुपान—पेठेका रस, आमलेका रस, शतावरका रस व चीनीका सर्वत आदि।

शूलरोगमें कहे हुए-**धात्रीलौह, नारिकेल खण्ड व नारिकेल लवण**—आदि औषधियाँ अम्लशूल रोगमें व्यवस्था करना चाहिये

**श्रीविल्वतैलकी** मालिश करानेसे अम्लपित्तरोग आराम हो जाता है। यह अम्लपित्त व शूल रोगके लिए सबसे उत्तम तैल है।

## शूल, परिणामशूल व अन्नद्रव शूल रोग।

प्रश्न-गुरुवर! आपने उपदेश किया है, कि अम्लशूलमें शूलरोगमें कही हुई धात्रीलौह आदि औषधियाँ व्यवस्था करना चाहिए। इस लिए जिज्ञासा है, कि अम्लपित्त व शूल क्या एक जातीय रोग है?

उत्तर-अम्लपित्त व शूलरोग एक जातीय रोग न होने पर भी इनके वेदना आदि बहुतसे लक्षणोंका सादृश्य होनेके कारण तथा इनकी चिकित्सा भी एक समान होनेके कारण ये एक ही जातिके रोग हैं। अम्लपित्तरोगमें पित्तकी प्रधानता रहती है और शूल वायुप्रधान रोग है। इस लिए अम्लपित्तमें जलन अधिक होती है और दर्द अपेक्षासे कम होता है, पर शूलरोगमें दर्द अधिक होता है और जलन अपेक्षासे कम होती है।

प्रश्न-शूल किसे कहते हैं? और उसकी उत्पत्ति, लक्षण व चिकित्सा किस प्रकारकी है?

उत्तर-शूल शब्दका साधारण अर्थ वेदना अर्थात् दर्द है, परन्तु

यहाँ पर रोगका नाम ( रूढि ) ही शूल समझना चाहिए। शूल रोग प्रबल होकर इतना यन्त्रणादायक होता है, कि रोगी उसको सहन न कर सकनेके कारण बहुत समय आत्महत्या करने तकको तैय्यार हो जाता है। यहाँ तक कि बहुतसे आत्महत्या कर भी डालते हैं।

**शूलरोगकी उत्पत्ति व लक्षण**—अपने २ प्रकोपक कारणोंसे वात आदि दोष कुपित होकर ये स्वयं पृथक् २ अथवा मिलित होकर शूलरोगको उत्पन्न कर देते हैं। **वातजनित शूल**— हृदय, दोनों पार्श्व, पृष्ठ ( पीठ ), त्रिकदेश ( चूतड़ोंके बीचका भाग ) व मूत्राशयमें उत्पन्न होता है तथा वायुके प्रकोपके समय अर्थात् भुक्त आहारके जीर्ण होने पर, सायंकालके समय, मेघोदय (आसमानमें बादल घिरने) के समय और वर्षा व शीतकालमें बढ़ता है। इसमें मल व अधोवायु रुक जाती है और सुई चुभोनेके समान वा टूटनेके समान दर्द होता है। स्वेद करना, तेल आदि मलना व दर्दकी जगह पर हाथोंसे मलना और स्निग्ध, उष्ण भोजन करानेसे शूलकी शान्ति होजाती है।

**पित्तजनित शूल**—नाभिदेशमें उत्पन्न होता है और पित्तके प्रकोपके समय अर्थात् मध्यान्हके समय, आधी-रातके समय, भोजन किये हुए अन्नके पचनेके समय व शरदऋतुमें पित्तशूल बढ़ता है। इसमें प्यास, दाह, शरीरका घूमना व चूसनेके समान पीड़ा दर्द होता है। शीतकालमें व शीतलक्रियाओंसे और सुस्वादु व शीतल आहारसे इस शूलको आराम होता है।

**कफजनित शूल**—आमाशयमें उत्पन्न होता है, और कफके प्रकोपके समय अर्थात् भोजन करनेके अनन्तर ही, पूर्वान्ह (प्रातःकाल) और शीत व वसन्त ऋतुमें यह शूल अधिक यन्त्रणादायक ( दुःख-दायक ) होता है। इसमें वमनवेग, खाँसी, शरीरका ढीला पड़ जाना ( अवसाद ), अरुचि, मुखसे जल गिरना टट्टी साफ न होना व शिर में बोझसा मालूम देता है।

**त्रिदोषजनित शूल**–तीनों दोषोंके लक्षण लिए होता है। यह बहुत कष्टदायक और विष व वज्रके समान भयानक होता है। चिकित्सक लोग इसको असाध्य कहते हैं।

आमजनित एक और तरहका शूल होता है, उसको "आमशूल" कहते हैं। इस शूलमें दिल मिचलाना, वमन, पेटमें गुड़गुड़ शब्द होना और मलमूत्रका न निकलना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। यह प्रायः कफज शूलके समान होता है।

**परिणामशूल**–वायु अपने प्रकोपक कारणोंसे कुपित होकर कफ पित्तको साथी बना कर परिणाम नामक शूलको उत्पन्न कर देता है। भुक्त आहारके परिणाम अर्थात् परिपाकके समय इस शूलका प्रकोप होता है। परिणाम शूलमें वायुकी अधिकतासे पेटका अफरना, पेटमें गुड़ २ शब्द, मलमूत्रका रुकना व कम्प, पित्तकी अधिकतासे तृष्णा, दाह व पसीना आना कफकी अधिकतासे वमन होना, जी मिचलाना, मूर्छा और बहुत देर तक रहने वाला थोड़ा २ दर्द होता है।

**अन्नद्रव शूल**–जो शूल भोजन किये हुए आहारके परिपाक होने पर या परिपाकके समय अथवा अपक अवस्थामें होता है और पथ्य, अपथ्य, भोजन करने या न करने या और कोई भी नियम पालन करने आदि कुछ उपायसे भी आराम न हो, उसको ही अन्नद्रव शूल कहते हैं। अन्नद्रव शूलमें जब तक भोजन किया हुआ सब द्रव्य वमन (कै) कर न निकाला जाय तब तक रोगीको चैन नहीं पड़ता। वमन होते ही रितके जीर्ण होने पर शूलकी शान्ति होजाती है।

**शूलचिकित्सा**–वातज शूल रोगमें कीचड़ ( कर्दम ) को आँच पर गरम करके कपड़ेमें पोटली बाँध कर इस पोटलीसे पेटको सेकना चाहिए। सेक देनेसे पहिले पेटमें तार्पीन आदिका तेल मलना चाहिए।

**वातज शूलके प्रशमके** लिए सोंठ व एरण्डकी जड़के काथमें हींग २रत्ती और सौंचलनमक ४माशा मिला कर सेवन कराना चाहिए।

सौंचलनमक १ भाग, पुरानी इमली २ भाग, कालाजीरा ४ भाग, कालीमिर्च ८ भाग इन सब चीजोंके चूर्णको जम्बीरी निम्बूके रसमें घोट कर वेर प्रमाण गोली बना कर रखना। इस गोलीके सेवन कराने से वातजशूल रोग आराम होजाता है। अनुपान-गरमपानी। मात्रा-१-२ गोली तक।

**पित्तज शूल रोगमें** प्रतिदिन प्रातःकाल शहदके साथ शतावर का रस सेवन करनेसे पैत्तिकशूल व तज्जनित दाह शान्त होजाती है।

शतावर, मुलेटी, खरेंटी, कुशकी जड़ व गोखरू इनके शीतकषाय में पुरानागुड़ वा चीनी मिला कर सेवन करानेसे पित्तशूलका निवारण होता है।

मुलेटीके क्वाथके साथ एरण्डतैल (उपयुक्तमात्रामें) सेवन करानेसे विरेचन होकर पित्तजशूल आराम होजाता है।

आमलेका चूर्ण शहदमें मिला कर चाटनेसे भी पित्तशूल आराम होजाता है।

**कफजशूल रोगमें**—सेंधानमक, कालानमक, विड्नमक, पीपल पीपलामूल, चव्य, चीतेकी जड़, सोंठ व हींग इन सब चीजोंका चूर्ण गरम पानीके साथ उपयुक्त मात्रामें सेवन करानेसे कफजशूलकी शांति होती है।

हींग १ भाग, सौंचलनमक २ भाग, सोंठ ४ भाग, हरड़ ८ भाग इन सबका चूर्ण गरम पानीके साथ सेवन करनेसे कफज शूल आराम होता है।

दशमूलके काढ़ेमें थोड़ासा यवक्षार प्रक्षेप देकर सेवन करानेसे शूल रोग शान्त होजाता है।

**आमशूलमें** कफज शूलके समान चिकित्सा करनी चाहिये। द्वन्द्वज (दो दोषोंसे उत्पन्न हुए) शूलमें मिश्र चिकित्सा करनी चाहिए। (पित्तशूलमें व कफशूलमें पृथक् २ जो चिकित्सा कही गई है, पित्त-श्लेष्म शूलमें इन दोनोंकी चिकित्सा मिला कर करनी चाहिए)।

शंखभस्म १ माशा, सेंधानमक व त्रिकटु ( सोंठ, मिर्च, पीपल ) इन सबका चूर्ण मिलित २ माशा हींग २ या ३ रत्ती इन सब चीजोंका चूर्ण गरम पानीके साथ सेवन करानेसे कफप्रधान सान्निपातिक शूलरोग आराम होजाता है।

गोमूत्रमें शुद्ध करके भस्म किया हुआ मण्डूर १ भाग व हरड़, बहेड़ा, आमला इन तीनोंका चूर्ण १ भाग घी व शहदके साथ मिला कर चटानेसे भी त्रिदोषज शूल आराम होजाता है।

**परिणामशूल चिकित्सा**—शम्बूक ( घोंघा ) की भस्म १ माशासे लेकर ३ माशा मात्रा तक गरम पानीके साथ सेवन करानेसे परिणाम शूलरोग आराम होजाता है। इसको सेवन करानेसे पहिले रोगीके मुखके भीतर घी चुपड़ देना चाहिए।

**शम्बूकादि गुड़िका**—घोंघेकी भस्म १ तोला, त्रिकटु चूर्ण १ तोला व पाँचोनमक मिला कर १ तोला इन सब चीजोंके चूर्णको कुल्फेके रसमें खरल करके १ माशा प्रमाण गोली बना कर रखना। इन गोलियोंको प्रातःकाल व भोजन करनेके थोड़ा पहिले गरम पानीके साथ सेवन करानेसे परिणाम शूल आरामहोजाता है।

**नारिकेल लवण**—जिसके भीतर पानी हो ऐसे पके हुए नारियलको ऊपरसे छेदकर उसके भीतर सेंधानमकका चूर्ण भरकर उस नारियलके ऊपरसे मिट्टीका लेप कर तथा उसको धूपमें सुखाकर उपलों की आँचमें रखकर फूँक देना चाहिए। जब देखे, कि-बाहरसे लेपी हुई मिट्टी बिल्कुल लाल होगई है, तब उसको आगसे बाहर निकाल कर तथा ठंडा होजाने पर उसको तोड़कर उसके भीतरका नमक मिश्रित गिरीकी भस्मका चूर्ण कर उसमें थोड़ासा पीपलका चूर्ण मिलाकर सेवन कराना चाहिए। मात्रा-४ रत्तीसे २ माशा तक। अनुपान-गरम जल। यह परिणाम शूलरोगकी महौषधि है।

**अन्नद्रव शूल चिकित्सा**—अम्लपित्त रोगमें जो औषधियाँ कही गई हैं, अन्नद्रव शूलरोगमें भी वे सब औषधियाँ व्यवस्था करनी चाहियें।

धात्रीलौह—वैद्य लोग शूलरोगमें बड़े आदरके साथ इस महौषधि को प्रयोग करते हैं। इसको सेवन करनेसे सब प्रकारका शूल व अम्ल-पित्तरोग आराम होता है। भोजनके पहिले, बीचमें व अन्तमें तीन बार ३ माशा मात्रामें भोजनके साथ मिलाकर सेवन कराना चाहिए। यदि भोजनमें मिलाकर सेवन करना न चाहें, तो भोजनके अनन्तर एक बार ३ माशा मात्रामें दूधके साथ सेवन कराना चाहिए।

खण्डामलकी, नारिकेलखण्ड व हरीतकीखण्ड—ये शूल रोगकी बहुत प्रसिद्ध औषधियाँ हैं। सब तरहके शूल रोगमें ही इनके व्यवहारसे विशेष लाभ होता है। मात्रा-१ तोलासे २ तोला तक। अनुपान जल वा दूध।

शूलगजेन्द्रतैल व श्रीविल्वतैल—इन तैलोंके मलनेसे सब तरहका शूल रोग आराम होजाता है।

विशेषवक्तव्य-अम्लपित्त रोगकी औषधि शूलरोगमें और शूलरोग की औषधि अम्लपित्त रोगमें प्रायः ही प्रयोगकी जाती हैं। इस लिए दोनों रोगोंके लक्षण आदि मिलाकर एक रोगकी औषधि दूसरे रोगमें व्यवस्था करना चाहिए।

## शिरोरोग ( शिरकी बीमारी )।

प्रश्न-आपने शूलरोगकी व्याख्या करते हुए उपदेश किया है, कि शूल चुभोनेके समान वेदनाको ही शूलरोग कहते हैं, इसलिए पूछना चाहता हूँ कि-मस्तकमें जो शूल चुभोनेके समान दर्द होता है, क्या वह भी शूल रोगके अन्तर्गत है?

उत्तर-नहीं, वह शूलरोगके अन्तर्गत नहीं है। शूलरोग मध्य शरीरमें होने वाला रोग है और यह शिरोरोग शिरमें होने वाला रोग है। परन्तु तथापि इसमें शूल चुभोनेके समान दर्द होता है, इसलिए इसको शिरःशूल, शिर पीड़ा वा शिरोरोग नामसे कहते हैं।

प्रश्न-शिरोरोग किस कारणसे उत्पन्न होता है ? उसके लक्षण किस तरहके होते हैं तथा उसकी चिकित्सा किसप्रकार की जाती है ?

उत्तर--वात आदि दोषोंके प्रकोपसे, रक्तके प्रकोपसे, धातुक्षयसे अथवा कृमियोंके कारण शिरोरोग उत्पन्न होता है। यह शिरोरोग बहुत दुःखदायक होता है, इससे रोगी अस्थिर हो उठता है। शिरो-रोगमें **वायुकी प्रधानता होने** पर मस्तकमें एकाएक दर्द हो उठता है और वह दर्द रातके समय बढ़ता है। **पित्तकी प्रधानता होने** पर—मस्तक ऐसा मालूम होता है, मानो जलते हुए कोयले शिरमें रखे हुए हों, आँख और नाकसे मानो धुआँ निकलता हो, इस तरहका दर्द मालूम होता है। **कफकी अधिकता** होने पर—शिर भारी व जकड़ा हुआ सा मालूम देता है और आँखोंके कोये ( अक्षिगोलक ) सूज जाते हैं। रक्त ( खून ) की **अधिकता होने** पर--पित्तज शिरो-रोगके सबके सब लक्षण उपस्थित होते हैं और शिरमें असह्य वेदना उपस्थित होती है, यहाँ तक कि—हाथ रखना तक नहीं सहा जाता। **धातुक्षय जनित शिरोरोग**--यह अत्यधिक कष्टदायक व दारुण यन्त्रणादायक रोग है। **क्रिमिजन्य शिरोरोगमें**--मस्तकमें सुई चुभानेके समान दर्द, कृमियोंका काटना, भीतरकी तरफ टपटपसे सब के चलना और नाकसे पीप मिला हुआ जल गिरना ये लक्षण उपस्थित होते हैं।

**अर्द्धावभेदक ( अधकपाली )**--वायु कुपित होकर स्वयं व कफकी सहायता लेकर मस्तकके आधे हिस्सेका आश्रय करके उस तरफकी मन्या ( गर्दनकी मोटी शिरा ) भौं ( भ्रू ) शंख ( कनपटी ), कान, नेत्र व ललाट देशमें बहुत भयानक दर्द उत्पन्न कर देता है। इसको अर्द्धावभेदक व अर्धकपाली रोग कहते हैं।

**सूर्यावर्त** ( सूर्यके निकलने पर दर्द आरम्भ होना और अस्त होने पर शान्त होजाना )-इस नामके शिरोरोगमें सूर्य उदय होनेके समय

आँख व भौंवोंमें थोड़ा २ दर्द होना आरम्भ होता है और सूर्य जैसे २ ऊपरको उठता है, दर्द भी उतना ही बढ़ता जाता है। इस प्रकार बढ़ते २ मध्यान्हके समय दर्द बहुत अधिक बढ़ जाता है, और सूर्य जैसे २ ढलता जाता है यह दर्द भी उतने ही क्रमशः कम होते २ सायंकालके समय बिल्कुल आराम होजाता है। यह त्रिदोषज और अनिकष्टसाध्य रोग है।

**चिकित्सा**—नस्य ( सूँघनी ), प्रलेप व परिषेक ( ठंडे पानीकी धार छोड़ना ) शिरोरोगका प्रधान उपचार है। कूठ व एरण्डकी जड़ को काँजीसे पीस कर **अथवा**—मुचकुन्दके फूलोंको काँजीसे पीस कर लेप करनेसे शिर दर्द आराम होजाता है।

अनन्तमूल, नीलोफर, कूठ व मुलेटी इन सब चीजोंको काँजीमें पीस कर घी व तिलका तेल मिला कर लेप करनेसे **सूर्यावर्त** व **अर्द्धावभेदक** शिरोरोग आरोग्य होजाता है।

झुलझुलके बीज झुलझुलके पत्तोंके रसमें पीस कर लेप करनेसे सूर्यावर्त व अर्द्धावभेदक रोग आरोग्य होता है।

भंगरेका रस व बकरीका दूध समान भाग मिला कर धूपमें रख गरम करके इसका नस्य लेनेसे **सूर्यावर्तरोग** आराम होजाता है।

वायविडंग व काले तिल समान भाग पीस कर गरम पानीमें घोल कर इसका नस्य लेनेसे **अर्द्धावभेदक** रोग नष्ट होजाता है।

चूल्हेकी जली हुई मिट्टी व कालीमिर्चका चूर्ण समान भाग मिला कर इसका नस्य लेनेसे अर्द्धावभेदक रोग आराम होजाता है।

सुफेदकोयल ( विष्णुक्रान्ता ) के फूल व जड़के रसका नस्य लेनेसे शिरदर्दकी शान्ति होजाती है। सोंठ दूधमें पीस कर इसका नस्य लेनेसे सब दोषोंसे उत्पन्न शिरोरोगकी शान्ति होती है। गुंजा (रत्ती) व करंजवेके बीजको पानीके साथ घिस कर इसका नस्य लेनेसे शिरदर्द आराम होजाता है।

वायविडङ्गको गोमूत्रमें पीस कर इसका नस्य लेनेसे **क्रिमि-**

जनित शिरकी पीड़ा नष्ट होजाती है। दूध वा कच्चे नारियलका पानी अथवा शीतल जलमें चीनी घोल कर उसको नाकके रास्ते पीने से सूर्यावर्त व अर्धकपाली रोगका निवारण होता है।

पीपल, नागरमोथा, सोंठ, मुलेठी, सौंफ, नीलोफर व कूठ इन सब चीजोंको जलमें पीस कर लेप करनेसे शिर दर्द आराम होजाता है

शिररोगमें जलन होने पर पुराना घी सौ बार धोकर शिरमें मलने से पित्तज शिरोरोग की शान्ति होती है।

देवदारु, तगर, कूठ, जटामांसी व सोंठ इन चीजोंका लेप करनेसे सब प्रकारके शिरोरोगका निवारण होता है।

दालचीनी या दालचीनीके तेलका लेप करनेसे कफज शिरोरोग का निवारण होता है।

दालचीनीका चूर्ण व रससिन्दूरके साथ थोड़ा २ अफीम सेवन करनेसे निश्चय ही शिरदर्द आराम होजाता है। अफीमकी मात्रा १ रत्ती व आधा रत्ती होना चाहिए। छोटे बालकोंको चौथाई रत्ती वा इससे भी कम। अनुपान-दूध।

दस्त साफ न होनेसे भी शिरदर्द होजाता है ऐसे समय जिस प्रकारसे रोगीका कोष्ठ साफ हो, ऐसा उपाय अवलम्बन करना चाहिए एरण्ड तैल व निशोथके चूर्णका जुल्लाब देना चाहिए। कोष्ठशुद्धि कारक आहार तजवीज करना चाहिए।

**शिरशूलादि वज्र रस व चन्द्रकान्तरस**—ये शिरोरोगकी प्रसिद्ध औषधियाँ हैं। अनुपान-बकरीका दूध, जल, शहद आदि।

**षड्बिन्दु तैल**—इसका नस्य लेनेसे व मलनेसे सब प्रकारका शिरोरोग आराम होजाता है।

**महादशमूल तैल**—कफप्रधान शिरोरोगमें इस तेलका नस्य व अभ्यङ्ग करनेसे विशेष उपकार होता है।

# गुल्मरोग ( वायुगोला )।

प्रश्न—गुल्म किसको कहते हैं ? और वह किस कारणसे होता है?

उत्तर—आहार विहार आदिके अनियमसे और चिन्ता, शोक आदि कारणोंसे वात आदि दोष कुपित होकर पार्श्व हृदय, नाभि व वस्तिदेश ( मूत्राशय ) में गोलेकी आकृतिसा उत्पन्न कर देता है, उसको ही गुल्मरोग कहते हैं।

प्रश्न—वात आदि दोष शरीरमेंके किस पदार्थसे गुल्मरोग उत्पन्न करते हैं ?

उत्तर—इस बातको एक दृष्टान्त द्वारा समझाया जाता है, सुनो-जलमेंसे जिस प्रकार बुद्बुद ( बुलबुले ) उठते हैं, प्रकुपित वात आदि दोषोंसे भी उसी प्रकार बुलबुलेके आकारका गुल्म उत्पन्न होता है। जलके बुलबुले जिस प्रकार जलसे भिन्न पदार्थ नहीं होते, केवल जल का रूपान्तर मात्र होता है, उसी प्रकार गुल्म भी वात आदि दोषोंसे स्वतन्त्र कोई दूसरी वस्तु नहीं होती वह भी वात आदि दोषोंका रूपान्तर मात्र होता है।

प्रश्न—पित्त और कफ ये तो आकृति वाले द्रव पदार्थ होते हैं, इनसे तो आपके कहनेके अनुसार बुद्बुदाकारसे गुल्मका उत्पन्न होना संभव है, परन्तु वायु तो अमूर्त ( आकृति-रूप रहित ) पदार्थ है, तब ऐसे अमूर्त पदार्थसे गोला कैसे बन सकता है ?

उत्तर—इस प्रश्नका उत्तर भी एक दृष्टान्त द्वारा दिया जाता है सुनो-तुमने कभी प्रबल आँधी उठनेके समय वायुको गोल २ चक्कर मारते हुए देखा होगा वह आँधीका झञ्झावात जिस प्रकार बड़े वेगसे गोलाकार हो उठता है, उसी प्रकार कोष्ठका प्रकुपित वायु भी बड़े जोर से पेटके ऊपरकी तरफ गोलाकार होकर उठता है। इसी तरह झञ्झा-वात जिस प्रकार स्थान २ पर सरक २ के घूमता है। यह वातज गुल्मरोग भी उसी प्रकार पेटमें इधर उधर घूमता है। पित्तज व कफज गुल्मकी तरह एक स्थान पर स्थिर नहीं रहता। वात गुल्मकी आकृति

भी सब समय एकसाँ नहीं रहती, कभी छोटे आकारकी और कभी बड़े आकारकी, कभी गोलेके समान और कभी लम्बोतरा ( दीर्घाकार ) होता है। इसका दर्द भी एकसाँ नहीं होता, कभी सुई चुभोनेके समान धीमा २ दर्द और कभी शूल चुभोनेके समान प्रबल वेदना होती है।

प्रश्न—वातज गुल्मकी अवस्था और लक्षण समझ गया हूँ, अब पित्तज व कफज गुल्मके लक्षण उपदेश कीजिये?

उत्तर—**पित्तजगुल्म स्पर्शासह** अर्थात् उसमें इतना दर्द होता है, कि-थोड़ासा छूने पर भी असह्य वेदना अनुभूत होती है। पित्तज गुल्म रोगमें जलन भी होती है। **कफज गुल्म**—कड़ा ( कठिन ) होता है और उसमें थोड़ा २ दर्द होता है।

इसके अतिरिक्त और एक प्रकारका गुल्मरोग होता है, वह स्त्रियों को ही हुआ करता है, उसको "**रक्त गुल्म**" कहते हैं। प्रसव होने ( बच्चा जनने ) के बाद या गर्भस्राव ( गर्भ गिरने ) के अथवा ऋतुस्राव ( माहवारी ) के समय अनियमित आहार विहार आदि के सेवन करनेसे वायु कुपित होकर रक्तको परिग्रह ( आश्रय ) करके गर्भाशयमें गोलाकार रक्तगुल्म उत्पन्न कर देता है। इसमें दाह और जलन अनुभूत होती है और गर्भके सब लक्षण विद्यमान रहते हैं, अर्थात् मासिकधर्मका बन्द रहना, स्तनोंके अग्रभागका काला पड़ जाना, दौहृद अर्थात् विविध प्रकारकी इच्छायें होना, आलस्य और पाण्डुवर्णता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। रक्तजगुल्म रोगमें गर्भका भ्रम होजाता है। इस लिए प्रसङ्गवश यहाँ पर रक्तज गुल्म और गर्भमें परस्पर क्या भेद होता है यह दिखाया जाता है। गर्भके स्पन्दन ( इधर उधर उछलने ) के समय गर्भके हाथ पैर आदि विशेषर अङ्ग स्पन्दित होते हैं और उससे किसी तरहकी तकलीफ मालूम नहीं देती। रक्तज गुल्ममें हाथ, पैर आदि अङ्ग प्रत्यङ्ग न होनेके कारण सारेका सारा पिंड स्पन्दित होता है ( उछलता है ) और उसके उछलनेके समय दर्द मालूम देता है। इस प्रकार भेद होनेपर भी आयुर्वेदके प्रवर्त्तक

आचार्योंने दश महीने व्यतीत होनेके अनन्तर रक्तगुल्मकी चिकित्सा करनेका उपदेश किया है। भगवान्‌की ऐसी कृपा है, कि-और २ रोग तो प्रायः पुराने होने पर ही असाध्य होते हैं। परन्तु रक्तगुल्म पुराना होनेपर सुखसाध्य होजाता है। †

मलमूत्र व अधोवायुका कष्टसे निकलना, अन्त्रकूजन ( आँतोंमें शब्द होना ) आनाह ( पेटफूलना ) वायुका ऊपरकी तरफ चलना और अरुचि ये लक्षण प्रायः सब तरहके गुल्मरोगमें हुआ करते हैं।

प्रश्न-गुल्मरोगकी चिकित्सा किस प्रकार करते हैं।

उत्तर-गुल्मरोगमें वायुकी प्रधानता होती है। इस लिए सबसे पहिले वायु शमन करनेकी चेष्टा करना चाहिए वायुके शान्त होनेपर और २ दोषोंका सहजमें ही प्रशम होजाता है।

गुल्मरोगीके पेटमें विष्णुतैल आदि किसी वायु-नाशक तेलको मलकर कपडेकी पोटलीमें बँधे हुए उड़दकी दालकी पोटलीसे सेकना चाहिए अथवा वातरोगकी चिकित्सामें कहा हुआ "**नाड़ी स्वेद**" प्रयोग करना चाहिए, **कुम्भीस्वेद, पिण्डस्वेद व इष्टकास्वेद** गुल्मरोगके लिए सर्वश्रेष्ठ उपाय है वायुनाशक गरम क्वाथ व गरम कांजी आदिसे घड़ा भरकर उससे स्वेद देनेका नाम "कुम्भीस्वेद" कहते हैं। पकाये हुए मांस आदिके पिण्ड ( गोले ) से स्वेद देनेको "पिण्डस्वेद" और ईंटका टुकड़ा आग पर लाल गरम करके उसको कांजीमें डुबो कर उससे स्वेद देनेको "इष्टकास्वेद" कहते हैं। फुलालेनके टुकडेसे या खौलते हुए गरम पानीसे बोतल भरकर उससे सेकनेसे भी विशेष लाभ होता है।

गुल्म रोगीको बीच २ में एरण्ड तैलका जुल्लाब देना चाहिए।

---

† किसी २ विद्वान्‌का मत है, कि-रजोरूप रक्त बन्द होकर स्त्रियोंको रक्तगुल्म रोग होता है, परन्तु शुद्ध ( धातुरूप ) शरीरका रक्त बन्द होकर स्त्री और पुरुषके भी रक्तगुल्म रोग हो जा सकता है।

एरण्डतैलकी बस्ति ( एनिमा ) करनेसे भी विशेष लाभ होता है, इस लिए बीच २ में बस्ति प्रयोग भी करना चाहिए।

जम्बीरी निम्बुका रस, हींग, अनारका रस, बिट्नमक व सेंधानमक समान भाग लेकर गरम पानीके साथ सेवन करनेसे वातगुल्म रोग शान्त होजाता है।

सोंठ ४ तोला, धोये तिल १६ तोला व गुड़ ८ तोला एक साथ पीस कर गरम दूधके साथ सेवन करनेसे वातज गुल्मरोग, उदावर्त-रोग व योनिशूलरोग आराम होजाता है।

लहसुन ५ तोला, दूध आधसेर जल २ सेरको पका कर दूधमात्र बाकी रहने पर चूल्हेसे उतार छान कर इस दूधको थोड़ा २ करके ( २ छटाँक मात्रामें ) ४-४ घण्टेके अनन्तर सेवन करनेसे वातगुल्म, उदावर्त व गृध्रसी आदि विविध प्रकारके रोग आराम होजाते हैं। पित्तज गुल्मरोगमें भी एरण्डतैलका जुल्लाब देना चाहिए। पित्तज गुल्मरोग यदि अतिउष्ण कारणोंसे उत्पन्न हुआ हो, तो सबसे पहिले कुष्ट रोगमें कहा हुआ "महातिक्त घृत" कुछ दिन तक सेवन करा कर रोगीको इस प्रकार स्निग्ध करानेके अनन्तर एरण्ड तैलका जुल्लाव देना चाहिए। इससे विशेष उपकार होता है।

कफज गुल्मरोगमें भी वातज गुल्मरोगकी तरह स्वेद देना चाहिए। स्वेद देनेसे गुल्मकी गाँठ कोमल होती है। तिल, अलसी, एरण्डके बीज व राईके बीज इन सब द्रव्योंको पानीके साथ पीस कर लेप तैय्यार करना चाहिए। तदनन्तर इस लेपसे गुल्मकी गाँठके ऊपर लेप लगा कर और कोई लोहेका वर्तन गरम कर उस लेपके ऊपरसे रख कर उससे स्वेद देना चाहिए। अजवायनका चूर्ण व बिट्लवण समान भागका चूर्ण बना कर इस चूर्णको तक्र ( मट्ठा ) में मिला कर सेवन कराना चाहिए। इससे अग्निकी वृद्धि और मल, मूत्र तथा अधोवायु का अनुलोम होगा ( वायु सरने लगेगी ) बिल्वादि पंचमूल ( बेल, खम्भारी, सोनापाठा, पाढल व अरणीकी छाल ) का काढा सेवन

कराना चाहिए। पुराना शहद प्रतिदिन थोड़ा २ करके सेवन कराना चाहिए।

**रक्तगुल्म चिकित्सा**—रक्तगुल्ममें प्रसव काल (दशवाँ महीना) बीत जाने पर रोगिणी स्त्रीको पहिले लिखे अनुसार स्नेह व स्वेद देकर स्निग्ध व स्विन्न करके बीच २ में एरण्ड तैलका जुल्लाब देना या एरण्डतैलका एनिमा प्रयोग करना चाहिए।

सौंफ, करंजवेकी छाल, देवदारु, भारंगी व पीपल इन सब चीजों को समान भाग लेकर व पीस कर (६ माशासे १ तोला तक मात्रामें) धोये तिलोंके काढ़के साथ सेवन करानेसे "रक्तगुल्म" आरोग्य होता है। पुराना गुड़, सोंठ, मिर्च, पीपल, हींग व भारंगी इन सब चीजों का कल्क तिलके साथ सेवन करनेसे भी रक्तगुल्मका निवारण होता है।

**कांकायन गुड़िका व वज्रक्षार**—यह सब प्रकारके गुल्म रोग की बहुत उत्तम औषधियाँ हैं। मात्रा–१ माशासे ३ माशे तक। अनुपान–शीतलगरमदूध व जल। गोमूत्रके साथ यह गुड़िका सेवन करनेसे कफज गुल्म, दूधके साथ सेवन करनेसे पित्तज गुल्म, शराब ( मद्य ) व काँजीके साथ सेवन करनेसे वातज गुल्म और ऊँटके दूधके साथ सेवन करनेसे रक्तगुल्म शान्त होता है।

**दन्ती हरीतकी**—इस महौषधिके सेवन करनेसे सहजमें ही विरेचन होकर सब तरहके गुल्मरोगकी शान्ति होती है। मात्रा–लेहांश ६ माशासे १ तोला और और औषधिमें पकी हुई हरड़ १ नग।

**गुल्मकालानल रस**—इसके सेवन करनेसे सब प्रकारका गुल्मरोग विशेष करके वातगुल्म रोगकी शान्ति होती है। अनुपान–हरड़के भिगोनेका पानी आदि।

**पञ्चानन रस**—यह रक्तगुल्मकी सबसे उत्तम औषधि है। अनुपान–आमलेका रस वा इमलीके पत्तोंका रस।

**धात्रीषट् पल घृत**—यह भी सब प्रकारके गुल्म रोगोंमें विशेष लाभदायक औषधि है। मात्रा व अनुपान पहिलेके समान। वातरोगमें कहे हुए तेल व वटिका आदि औषधियाँ भी विचार पूर्वक इस रोगमें व्यवहार कर सकते हैं।

# हृद्रोग ( दिलकी बीमारी )।

प्रश्न—आपने उपदेश किया है, कि शूलरोगमें वायु प्रधान होता है और गुल्मरोग भी वायु प्रधान होता है। गुरुवर! अब जिज्ञासा है कि और किस २ रोगमें वायुकी प्रधानता रहती है?

उत्तर—यदि सूक्ष्म विवेचन द्वारा निर्णय किया जाय तो एक तरह से सब रोगोंमें ही वायुकी प्रभुता रहती है। यह किसी २ रोगमें साक्षात् भावसे काम करता है और किसी २ रोगमें कारण रूप रह कर कार्य करता है। क्योंकि—पित्त और कफ ये दोनों तथा शरीरमें जितने भी मल पदार्थ रहते हैं वे सबके सब पंगु ( किसी कामके स्वयं करनेमें असमर्थ ) होते हैं, ये पंगु पदार्थ स्वयं किसी शरीरावयवविशेषमें जाकर किसी भी रोगको उत्पन्न नहीं कर सकते, वायु इनको शरीरके जिस भागमें ले जाता है, ये उसी स्थानमें पहुँचाये जाकर रोग उत्पन्न करनेमें समर्थ होते हैं। जैसे—बादल ( मेघ ) पंगु पदार्थ है, वह अपने आप किसी स्थानमें पहुँच कर वर्षा नहीं कर सकता। वायु इसको जिस स्थान पर पहुँचा देता है, उसी जगह पर वर्षता है। आयुर्वेद-शास्त्रमें कहा हुआ है—जिस पुरुषका वायु अपने स्थानमें स्थित—प्रकृतिस्थ—और अव्याहतगति ( बिना किसी रोकके यथेच्छ चल फिर सकता ) हो वह पुरुष नीरोग रह कर एकसौ वर्ष तक जीवित रहता है। इस लिए सब रोगोंमें ही वायुकी प्रधानता रहती है। परन्तु शूल आदि रोगोंमें वायुकी विशेष कार्यकारिता होनेके कारण विशेष प्रधानता रहती है, इसी लिए विशेष लक्ष्य देने योग्य होते हैं। हृद्रोगमें भी वायुकी इसी तरहकी विशेष प्रधानता रहती है।

प्रश्न—हृद्रोग किस कारणसे उत्पन्न होता है? उसके लक्षण और चिकित्सा क्या है?

उत्तर—अति उष्णवीर्य द्रव्य, गुरुपाक द्रव्य और कषाय व तिक्त रस द्रव्योंका अधिक भोजन करना, पहिले किये हुए भोजनके जीर्ण होनेके

पहिले ही पुनर्वार भोजन करना, अति परिश्रम, निरन्तर चिन्ता करना मलमूत्र आदिका वेग रोकना और हृदय पर चोट लगनेसे वात आदि दोष कुपित होकर हृदयमें स्थित रसको दूषित करके हृद्रोगको उत्पन्न कर देते हैं। इस रोगमें हृदय ऐसा मालूम होता है, मानो रस्सियोंसे कसा हुआ हो, सुईसे विंधा हुआ जैसा, दंडेसे मथनेके समान, अस्त्रसे दो टुकड़े करनेके समान, सलाईसे छेदनेके समान और कुल्हाड़ेसे फाड़नेके समान दर्द अनुभव होता है।—जिस समय हृद्रोगका दौरा होता है, उस समय रोगी एकदम अस्थिर ( बेचैन ) होजाता है। यह बहुत भयानक रोग होता है। बहुत समय इससे अकस्मात् मृत्यु हो आ सकती है।

चिकित्सा-हृद्रोगमें अर्जुन ( कोह ) की छाल बहुत उपकारी औषधि है। प्रतिदिन घी, दूध व गुडोदक ( गुड़के पानीके साथ ) अर्जुनकी छालका चूर्ण १ माशा मात्रामें सेवन करना चाहिए। सूजी १ भाग, अर्जुनकी छालका चूर्ण १ भाग, बकरीका दूध ४ भाग और घी व चीनी यथा प्रयोजन, इन सब द्रव्योंको एक साथ पका कर शीतल होने पर उसमें शहद मिला कर रोगीको खिलाना चाहिये।

बारहसिंगेका सींग पुटपाकसे पका कर तथा उसको बारीक पीस कर २ रत्तीसे—१ माशा मात्रामें गौके घीके साथ सेवन कराना चाहिये।

हृद्रोगमें यदि तृषा, दाह, मूर्छा व पसीना आना आदि पित्तके लक्षण हों, तो शीतल औषधियोंसे बने हुए लेप, शीतल पानीका परिषेक ( धार छोड़ना ) व शीतल द्रव्योंका विरेचन व्यवस्था करना चाहिए, और अर्जुनकी छाल, बहेड़ा व मुलेठीके साथ दूध पका कर वह दूध सेवन करनेको देना चाहिए। धारोष्ण दूध भी हृद्रोगमें विशेष उपकारक वस्तु है।

इस रोगमें यदि शरीरका भारीपन, कफका गिरना, अरुचि व अग्निमान्द्य आदि कफके लक्षण हों, तो वमन कारक औषधि व्यवस्था करनी चाहिए। परन्तु रोगी यदि दुर्बल, वृद्ध, बालक व गर्भिणी स्त्री

हो, तो वमन कारक औषधि कभी भी व्यवस्था न करना चाहिए। छोटी इलायचीके दाने व पीपलका चूर्ण घीके साथ मिला कर चाटने को देना चाहिए। दशमूलके क्वाथमें थोड़ासा सेंधानमक व जवाखार मिला कर सेवन कराना चाहिए।

हींग, बच, विड् नमक, सोंठ, पीपल, कूठ, हरड़, चीतेकी जड़, जवाखार, सौंचल नमक व पुष्करमूल ( अभावमें कूठ ) प्रत्येकका चूर्ण समान भाग लेकर एक साथ मिलाकर जौके क्वाथके साथ सेवन करनेसे हृद्रोग व शूलरोगकी शान्ति होती है।

क्रिमियोंसे भी हृद्रोग होजाता है, उससे वमनभाव ( जी मिचलाना ), मुखसे पानी गिरना, सुई चुभने व शूलके समान दर्द, अरुचि, अवसाद व शरीरका घूमना आदि उपद्रव होते हैं। क्रिमिज हृद्रोगमें वायविडंग व कूठके चूर्णके साथ गोमूत्र पीनेको देना चाहिए और विचारपूर्वक क्रिमि रोगमें कही हुई सब औषधियाँ व्यवहार करना चाहिए।

**कल्याण सुन्दर रस, प्रभाकरवटी व हृदयार्णवरस**—हृद्रोगकी प्रधान औषधियाँ हैं। अनुपान—अर्जुनकी छालका क्वाथ व रस अथवा आमलेका चूर्ण व चीनी या गोधूम ( गेहूँ ) का क्वाथ अभाव में गरम जल।

**अर्जुनघृत**—यह हृद्रोगकी सबसे उत्तम औषधि है। मात्रा-६ माशा से २ तोला तक।

## प्रमेहरोग ( धात गिरना )

शिरोरोग और हृद्रोगके विषयमें कह चुके हैं, अब इससे आगे बस्तिगत अर्थात् मूत्राशय जात ( मसानेमें होने वाले ) रोगोंके विषय में उपदेश करते हैं, सुनो—

प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात व अश्मरी ये सब रोग बस्ति देशमें उत्पन्न होते हैं। इनके लक्षण और चिकित्सा आगे क्रमशः वर्णन की जाती है।

**प्रमेह रोगका निदान आदि**—अपने २ प्रकोपक हेतुओंसे वात आदि दोष कुपित होकर, मेद, मांस, वसा, मज्जा, शुक्र व रसादि पदार्थको दूषित करके वस्ति देशमें प्रमेह रोगको उत्पन्न कर देता है। इस रोगमें मूत्र विकृत व विवर्ण होजाता है। उपदंश विष, दुष्टयोनि-गमन, अत्यधिक मैथुन व अवैधउपायों ( हस्तमैथुन आदि ) से वीर्य-क्षय इन कारणोंसे एक और भिन्न प्रकारका प्रमेह रोग होता है। जिसको औपसर्गिक मेह, उष्णवात, अग्निवायु ( सुजाक ) आदि आख्यायें दी गई हैं।

प्रमेह रोगमें कफका प्रकोप अधिक होनेसे मूत्र ईखके रसके समान मीठे रसका होता है, या साफ कांसी, सुफेद काँच आदिके वर्तनमें रखनेसे उसका ऊपरका भाग स्वच्छ और नीचेका भाग गाढ़ा होता है या मूत्रके वासी ( पर्युषित ) होने पर वह गाढ़ा होजाता है, अथवा मूत्र कुछ गाढ़ा व चिपचिपा होता है, या रोगीका मूत्र पिट्ठी घोले हुए जलके समान सुफेद रंगका होता है अथवा लालातन्तु ( लारके रेसे ) युक्त होता है, या बार २ थोड़ा २ करके निकलता है, अथवा बालू ( रेत ) के समान वारीक २ ज़र्रेदार होता है, अथवा स्पर्शमें शीतल, मधुर-आस्वाद व अधिक परिमाणमें उतरता है, या शुक्राभ ( वीर्यकी रंगतका ) वा शुक्रमिश्रित होता है ( इसको शुक्रमेह कहते हैं ) ये सब कफज मेह रोग विचारवान् निपुणवैद्यसे चिकित्सित होने पर साध्य होते हैं।

प्रमेह रोगमें पित्तका प्रकोप अधिक होने पर पेशाबका रंग नीला, काला, हल्दिया ( पीला ) वा लाल होता है, अथवा मूत्रका गन्ध, वर्ण, रस व स्पर्श क्षारजलवत् ( खारके पानीके समान ) होता है और पेशाव करनेके समय मूत्र इन्द्रियमें जलन होती है। ये सब पित्तज मेह रोग याप्य होते हैं अर्थात् औषधि आदिका यथोचित प्रयोग करने पर शान्त होजाते हैं, परन्तु आहार विहारका अनियम करनेसे पुन-र्वार होजाते हैं।

प्रमेह रोगमें **वायुका प्रकोप**—अधिक होने पर मूत्र वसा व मज्जाके समान होता है, अथवा निरन्तर वेगवर्जित पेशाब निकलता है, या कभी पेशाब रुक जाता है, अथवा मूत्र मधु (शहद) के समान मधुर रस व रूक्ष होता है ( इसको मधुमेह कहते हैं, बहुत दिनका पुराना होजाने पर सब प्रकारके प्रमेह ही मधुमेहके रूपमें परिणत हो जाते हैं ) । ये सब वातज मेह रोग असाध्य होते हैं, अर्थात् औषधि आदि किसी उपायसे भी आराम नहीं होते ।

**प्रमेह रोग चिकित्सा**—प्रतिदिन प्रातःकाल शतावरका रस, कच्चादूध मिलाकर सेवन करनेसे, अथवा ढाक ( टेसू ) के फूल १ तोला व चीनी ६ माशे सिलबट्टेसे पीसकर ठंडे पानीके साथ सेवन करनेसे प्रमेह व प्रमेह जनित ज्वाला ( जलन ) आराम होती है ।

शहद व हल्दीके चूर्णके साथ आमलेका रस सेवन करनेसे, अथवा त्रिफला, देवदारु व नागरमोथा इन सब द्रव्योंका काढ़ा बनाकर शहद मिलाकर सेवन करनेसे सब प्रकारका प्रमेह रोग शान्त होजाता है ।

गिलोयका रस वा गिलोयका सत् शहदके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारका प्रमेह रोग शान्त होता है ।

थोड़ासा फटकरीका चूर्ण एक कच्चे नारियलके भीतर डालकर इस नारियलको एक रात कीचड़में दबाकर रखना । दूसरे दिन प्रातःकाल उस नारियलका पानी निकाल कर सेवन करानेसे बहुत दिन का पुराना प्रमेह रोग भी आराम होजाता है ।

कच्चे सेमलकी जड़का रस, गूलरके फलोंका रस, अथवा शहद व हल्दीका चूर्ण इन तीन प्रकारके अनुपानमेंसे किसी एकके साथ २ रत्ती मात्रामें वङ्ग भस्म १ रत्ती वा २ रत्ती मात्रामें सेवन करनेसे प्रमेह रोग शान्त होजाता है ।

औपसर्गिक मेह ( सुजाक ) रोगमें स्त्रीसहवास बिलकुल छोड़ देना चाहिए । क्योंकि ऐसी दशामें मैथुन करनेसे रोग बढ़ता है और सहवासिनी स्त्रीको भी यह रोग उत्पन्न होजाता है ।

अनन्तमूलके क्वाथके साथ जवाखार ४ रत्ती व नौसादर ४ रत्ती मिलाकर सेवन करनेसे सुजाक आराम होजाता है।

काला अनन्तमूल (श्यामालता, सुफेद अनन्तमूल, कुटकी व गोखरू इनके काढ़ेमें शुद्ध गन्धक २ रत्ती और नौसादर २ रत्ती डाल कर सेवन करनेसे औपसर्गिक मेह शान्त होजाता है।

बबूलके गोंदको पीसकर पानीमें भिगोकर रखना। प्रातःकाल उस पानीके साथ ४ रत्ती मात्रामें जवाखारका चूर्ण सेवन करनेसे शुक्रदुष्ट प्रमेह रोग शान्त हो जाता है।

कवावचीनीका चूर्ण सब प्रकारके प्रमेह रोगोंकी अव्यर्थ महौषधि है। इसको प्रतिदिन प्रातःकाल व सायंकालके समय १ माशा मात्रामें पानीके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारका प्रमेह रोग शान्त होजाता है।

त्रिफला, बबूलकी छाल व बड़की छाल इनका काढ़ा पिचकारीके साथ लिङ्गरन्ध्र (पेशाबके रास्ते) में प्रयोग करना चाहिए।

अर्जुनकी छाल व लालचन्दनका काढा या कूठ, अगर व कसेरू का काढा अथवा पानकी जड़के छिलके, कूठ व शैवाल (काई) इन का क्वाथ सेवन करनेसे शुक्रमेह रोग आरोग्य होजाता है।

रातको सोनेसे पहिले कवावचीनीका चूर्ण १ माशा व २ माशा मात्रा में सेवन करनेसे स्वप्नदोष आराम होजाता है। कपूर २ रत्ती अफीम २ चावल मिलाकर सेवन करनेसे भी स्वप्नदोष आराम होजाता है।

**कुशावलेह**—इसके व्यवहारसे सब प्रकारका प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात व अश्मरी रोग आराम होजाता है। मात्रा-६ माशासे १ तोला तक अनुपान-दूध व जल।

**वङ्गेश्वर वा स्वर्णवङ्ग**—इनको प्रमेह रोगकी प्रथम अवस्थामें प्रयोग करनेसे विशेष लाभ होता है। अनुपान-गूलरका रस व शहद। अधिक जलन होने पर हल्दीका रस व शहद।

**बृहद्वङ्गेश्वर व बृहत् सोमनाथरस**—पेशाबका रंग लाल व सुफेद होने पर या अधिक उतरने पर इन औषधियोंका प्रयोग करना

चाहिए। अनुपान-सेमलका चूर्ण व शहद, पेशाब अधिक आने पर पक्के गूलरके फलका चूर्ण व शहद।

**वसन्ततिलक व वसन्तकुसुमाकर रस**—जब किसी औषधिसे कोई लाभ न हो, तब ये ही औषधियाँ वैद्य और रोगी दोनों का अवलम्ब होती हैं। इनके सेवन करनेसे सब प्रकारका मेह, बहु-मूत्र, ध्वजभङ्ग और इन रोगोंके सब प्रकारके उपद्रवोंका निवारण होता है। अनुपान-घी, चीनी, शहद या पहिले लिखे अनुसार।

**प्रमेह मिहिर तैल**-इसके मर्दनसे सब प्रकारका प्रमेह रोग शान्त होता है।

**दाड़िमाद्य घृत**-इसको प्रमेह रोगमें व्यवस्था करना चाहिए। मात्रा-६ माशा। अनुपान-दूध

**बहुमूत्र रोग**-इस रोगसे सारे शरीरमें स्थित समग्र जलमय पदार्थ विकृत व स्थानच्युत होकर मूत्रमार्गमें उपस्थित होकर पेशाबके रास्ते अत्यधिक परिमाणमें निकल कर शरीरसे बाहर होता है। वह निर्मल स्वच्छ, शीतल व गन्धरहित होता है। पेशाब करनेके समय किसी प्रकारका दर्द नहीं मालूम होता, परन्तु दुर्बलता, मस्तिष्ककी शिथिलता, मुख व तालूका सूखना ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं। इस रोगके बढ़ जाने पर शरीर दुबला, शरीरमें दुर्गन्ध, पसीना, हाथ पैरोंमें जलन, अंगोंकी शिथिलता, अत्यन्तदाह व दारुण प्यास आदि उपद्रव प्रकट होजाते हैं। यह बहुत भयानक रोग होता है। इस रोगसे दुष्ट स्फोटक ( कार्वङ्कल ) आदि उपद्रव उपस्थित होकर रोगीको अति विपन्न कर देते हैं।

**बहुमूत्ररोगकी चिकित्सा**—पका केला १ अदद, आमलेका रस १ तोला, शहद ४ माशा, चीनी ४ माशा व दूध १ पाव एकसाथ मिला कर सेवन करनेसे बहुमूत्र रोग आराम होजाता है। पका केला १ अदद, विदारीकन्दका रस १ तोला, शतावरका रस १ तोला और दूध १ पाव एक साथ मिला कर सेवन करनेसे बहुमूत्र रोगका निवारण

होता है। कच्चे ताड़ व कच्चे खजूरकी जड़का रस और पका केला दूधके साथ प्रातःकाल सेवन करनेसे बहुमूत्र रोग आराम होजाता है।

**तारकेश्वररस, बृहत् सोमनाथरस व हेमनाथरस**—ये बहुमूत्र रोगकी महौषधियाँ हैं। इनके सेवन करनेसे प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र मूत्राघात रोगोंका निवारण होता है। वस्तिगत सम्पूर्ण रोगोंमें ये औषधियाँ सर्वदा वृद्धवैद्यगण व्यवहार करते हैं। अनुपान गिलोयका रस, पत्थरचट्टेके पत्तोंका रस, बबूलके पत्तोंका रस, गूलरका रस, गूलरके बीजोंका चूर्ण, कबाबचीनीका चूर्ण आदि। पेशाब अधिक आने पर जंगली तोरईको भून कर उसका रस वा अरहरके पत्तोंका रस व शहद प्रमेह रोगमें कहेहुए "वंगेश्वर" आदि रस भी इसमें प्रयोग करने चाहियें।

बहुमूत्र रोगमें अफीमका थोड़ी मात्रामें सेवन करना उत्तम होता है। मात्रा-यथायोग्य।

**स्वल्प व बृहत् धात्रीघृत और कल्याणघृत**—यह तीनों औषधियाँ ही बहुमूत्र रोगमें बहुत लाभदायक होती हैं। मात्रा व अनुपान पहिलेके समान।

## मूत्रकृच्छ्र व मूत्राघात रोग।

वात आदि दोषोंके प्रकोपसे मूत्राघात व मूत्रकृच्छ्र रोग उत्पन्न होता है मूत्रकृच्छ्र रोगमें मूत्रका वेग वार २ होता है और पेशाब बहुत थोड़ा २ व बूँद २ करके होता है। **वायुका प्रकोप** अधिक होने पर मूत्राशय व लिङ्गमें अधिक दर्द होता है। **पित्तका प्रकोप** अधिक होने पर अत्यधिक जलनके साथ बार २ बड़े कष्टसे पीला व लाल-रंगका पेशाब उतरता है। **कफका प्रकोप** अधिक होने पर लिङ्ग व वस्तिदेशमें गुरुत्व ( भारीपन ) व शोथ होता है तथा मूत्र पिच्छिल ( चिपचिपा ) होता है। तीनों दोषोंका ही प्रकोप अधिक होने पर तीनों दोषोंके मिलित लक्षण होते हैं।

मूत्राघात बहुत ही कष्टदायक रोग होता है। इस रोगसे बीच २ में पेशाब बिलकुल बन्द होजाता है। पेशाब रुक जाने पर रोगी मृत्यु-

दायक यंत्रणा अनुभव करता है। मूत्रकृच्छ्र वा मूत्राघात रोगमें भेद केवल यह होता है-कि-मूत्रकृच्छ्र रोगमें जलन अधिक और मूत्रविबद्धता कम होती है, पर मूत्राघात रोगमें जलन आदि दर्द कम तथा विबद्धता अधिक होती है।

**मूत्रकृच्छ्र रोगकी चिकित्सा**—नारियलके फूल चावलोंके धोवनके साथ सेवन करनेसे, या पेठेके रसमें थोड़ासा जवाखार ( न मिलने पर शोरा ) व चीनी मिला कर सेवन करनेसे, अथवा आमले का रस गुड़के साथ सेवन करनेसे मूत्रकृच्छ्र व दाह आराम होजाता है।

गोखरूके काढ़ेमें थोड़ासा जवाखार मिला कर सेवन करनेसे मल-विबद्धताके कारण हुआ मूत्रकृच्छ्र रोग आराम होजाता है।

**पञ्चतृणमूलका क्काथ**—कुश, कास, सर, दाभ व काले ईखकी जड़ समान भाग लेकर काढ़ा बना कर सेवन करनेसे पित्त जनित मूत्रकृच्छ्र रोगकी शान्ति होती है। इस पञ्चतृण मूलके साथ दूध [illegible] कर सेवन करनेसे लिंगसे रक्तस्राव ( खून गिरना ) बन्द हो[illegible] है।

गोखरूके बीज व जड़ और खीरेके बीज समानभाग लेकर कांजी से पीस कर मसानेके ऊपर इसका लेप करनेसे मूत्रकृच्छ्र रोगमें विशेष लाभ होता है। पत्थरचट्टे के पत्ते व शोरा पीस कर लेप करनेसे भी मूत्रकृच्छ्र रोगकी शान्ति होती है।

**मूत्रकृच्छ्रान्तक रस व तारकेश्वर**—ये मूत्रकृच्छ्र रोग की महौषधियाँ हैं। अनुपान-शहद। औषधि सेवन करनेके अनन्तर पक्के गूलरके फलका चूर्ण १ तोला वा २ तोला शहदमें मिला कर चटाना चाहिये। बकरीका दूध, चीनी व ईखका रस पथ्य है। "वङ्गेश्वर" आदि रस भी इस रोगमें व्यवस्था करना चाहिए।

**मूत्राघात ( पेशाव रुकना ) चिकित्सा**—मूत्रकृच्छ्र रोगमें जो औषधियाँ कही गई हैं, मूत्राघात रोगमें भी वे सब औषधियाँ व्यवस्था करना चाहिए।

खीरेके बीज २ तोला व सेंधा नमक २ माशा ४ तोला कांजीके साथ पीस कर सेवन करनेसे मूत्राघात रोग आराम होजाता है।

पेठेके रसमें जवाखार व पुराना गुड़ मिला कर सेवन करनेसे मूत्राघात, अश्मरी (पथरी) व शर्करा (रेग निकलना) रोग शांत होजाता है

पत्थर चट्टेकी जड़ कांजीके साथ पीस कर नाभिमें उसका लेप करनेसे मूत्राघात रोगमें शान्ति होजाती है।

चावलोंके धोवनमें लालचन्दन व चीनी मिला कर सेवन करनेसे मूत्राघात रोगमें लाभ होता है।

"मूत्रकृच्छ्रान्तक रस व तारकेश्वर"—यह मूत्राघात रोगमें भी विशेष हितकर है। अनुपान-पहिलेके समान।

**यहाँ पर वक्तव्य**—प्रमेह, बहुमूत्र, मूत्रकृच्छ्र व मूत्राघात रोगमें "वंगेश्वर व बृहद्वंगेश्वर" आदि रस घटित जो औषधियाँ कही गई हैं। इनके वंग आदि धातु उपकरण होनेके कारण ये बस्ति देशमें उत्पन्न समस्त रोगोंको नष्ट करनेमें समर्थ होसकते हैं। इस लिए विचार पूर्वक विशेष २ अनुपानके साथ ये समस्त औषधियाँ प्रमेह, बहुमूत्र, मूत्रकृच्छ्र व मूत्राघात और सब प्रकारके मूत्रदोष व शुक्रदोषोंमें व्यवहार करना चाहिए।

## अश्मरी (पथरी) रोग।

बस्ति देशमें प्राप्त मूत्र व शुक्र अथवा पित्त व कफ वायुके द्वारा शोषित हो (सूख) कर अश्मरीके रूपमें परिणत होजाते हैं। जिस प्रकार गौका पित्त क्रमशः वायुके द्वारा सूख कर "गौरोचन" के रूपमें परिणत होजाता है, पथरी रोग भी इसी प्रकारसे उत्पन्न होता है।

**पथरीके साधारण लक्षण**—नाभि, सीवन (गुदासे लेकर लिंगमूल तक सिलाईके समान जो भाग) और नाभिके निचले हिस्से में बहुत दर्द होता है। पथरीके कारण मूत्र मार्गके रुक जानेसे मूत्र सच्छिद्रधार (टूटीधार) से निकलता है, परन्तु वायुके वेगसे उस

के इधर उधर होजाने पर अर्थात् पेशावके रास्तेसे अलग पड़ जाने पर बिना किसी कष्टके ईषल्लोहित ( कुछ लाली लिए हुए ) स्वच्छ मूत्र निकलता है। पथरी रोगमें **वायुका प्रकोप** अधिक होने पर रोगी दाँतोंको पीसता है, पेशाव करते समय शरीर काँपता है, दर्दसे चिल्लाता हुआ लिङ्ग व नाभिको हाथसे पकड़ कर दबाता है। **पित्त का प्रकोप**—अधिक होने पर बस्तिदेश ( मसानेके ऊपर ) दाह होती है, और ऐसा मालूम होता है मानो पथरी खारमें पक रही हो। **कफका प्रकोप** अधिक होने पर बस्ति देशमें सुईसे बींधनेके समान दर्द होता है और उस स्थान पर बोझसा मालूम देता है।

शुक्र ( मणि ) का वेग रोकनेसे "**शुक्राश्मरी**" रोग उत्पन्न होता है। क्योंकि-मैथुनके वेगके कारण अपने स्थानसे गिरा हुआ वीर्य मैथुनके अभावसे बाहर न निकल सकनेके कारण लिंग व अण्डकोषके बीचमें स्थित बस्तिके मुखमें वायु द्वारा संगृहीत व शोषित होकर अश्मरीके आकारमें परिणत होजाता है। शुक्राश्मरी उत्पन्न होने पर बस्तिदेशमें शूलके समान दर्द, मूत्रकृच्छ्र ता व अण्डकोषोंमें शोथ ये लक्षण उपस्थित होते हैं। इस रोगके उत्पन्न होनेके बादसे ही उसमें वीर्य आकर सञ्चित होता रहता है। परन्तु यदि उसको मसला जावे तो वह वायु द्वारा छोटे २ हिस्सोंमें विभक्त होकर शर्करा व सिकता रूपमें परिणत होजाता है। **शर्करा व सिकतामें भेद सिर्फ यह है**-कि शर्करा से सिकताके कण बहुत बारीक होते हैं। वायुके अनुलोम होने पर यह शर्करा व सिकता मूत्रके साथ निकलती रहनेके कारण रोगीको कुछ भी कष्ट नहीं मालूम देता, किन्तु वायु प्रतिलोम होने पर उसके बाहर न निकल सकनेके कारण रोगीको बहुत कष्ट होता है।

**चिकित्सा**—पथरी बहुत भयानक यन्त्रणादायक रोग होता है। इसके बढ़ जाने पर यह प्रायः औषधि सेवनसे आराम नहीं होता। इसी लिए आयुर्वेद शास्त्रमें इस रोगको यमके समान कहा गया है।

यह शस्त्रसाध्य रोग होता है। परन्तु प्रथम अवस्थामें औषधि सेवन से ही रोग आराम होजाता है।

**बृहद्वरुणादि क्वाथ**—वरनेकी छाल, सोंठ, गोखरू, मूसली, उड़द और कुशादि तृणपञ्चमूल ( कुश, कास, सर, दाभ व काले ईख की जड़ ) इनके काढ़ेमें चीनी २ माशा व जवाखार २ माशा मिला कर सेवन करनेसे अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, वस्तिशूल व लिंगशूल आराम होजाता है।

**वरुणादि क्वाथ**—वरनेकी छाल, सोंठ, गोखरूके बीज इनके काढ़ेमें जवाखार २ माशे मिला कर पुराने गुड़के साथ सेवन करनेसे पथरी आराम होजाती है।

शहद व बकरीके दूधमें गोखरूके बीजोंका चूर्ण मिला कर सेवन करनेसे अश्मरी रोग नष्ट होजाता है। मूशली व गंगेरन ( गुलसकरी ) को पीस कर बासी पानीके साथ सेवन करनेसे भी अश्मरी रोग नष्ट होजाता है।

नारियलकी गिरी ४ माशा व जवाखार ४ माशा पानीके साथ पीस कर प्रातःकाल सेवन करनेसे अश्मरी रोग आराम होजाता है।

**पाषाणभिन्न रस**—इसके व्यवहारसे पथरी रोग आराम हो जाता है। मात्रा-२ रत्ती।

**आनन्दयोग**—इसके सेवनसे अश्मरी व शर्करा रोग नष्ट हो जाते हैं। मात्रा-२ रत्ती। अनुपान-भेड़ व बकरीका दूध।

**वरुणाद्यघृत**—इस घृतके सेवन करनेसे अश्मरी, शर्करा, मूत्राघात मूत्रकृच्छ्र व मूत्ररोध रोग आराम होजाते हैं। मात्रा-६ माशासे २ तोला तक। अनुपान-दहीका मट्ठा व पुराना गुड़।

**कुलत्थाद्यघृत**—इसके व्यवहारसे सब तरहके मूत्र सम्बन्धी रोग आराम होजाते हैं। मात्रा-६ माशासे २ तोला तक। अनुपान-भेड़ व बकरीका दूध।

# प्रदर ( पैरवा वा पेड़े ) रोग।

जिस प्रकार वीर्यकी दुष्टिसे पुरुषोंका शुक्रमेह रोग होजाता है, उसी प्रकार रज (मासिकधर्म) की दुष्टिसे स्त्रियोंका प्रदर रोग उत्पन्न होजाता है। इस लिए यहाँ पर गुह्य रोगोंके वर्णनके प्रसंगमें प्रदररोग का वर्णन किया जाता है।

प्रश्न-स्त्रियोंको क्या शुक्रमेह रोग नहीं होता?

उत्तर—इस विषयमें मतभेद है। बहुतोंका मत है-कि-स्त्रियोंके वीर्य उत्पन्न नहीं होता, अर्थात् आहारजात रस यथा क्रमसे रस, रक्त, मांस मेद, अस्थि व मज्जा धातुमें परिणत होकर शेष अवस्थामें पुरुषोंके शुक्र और स्त्रियोंके रजोरूपमें परिणत होता है, इसलिए स्त्रियों के शुक्र न होने पर शुक्रमेह नहीं हो सकता। जिन स्त्रियोंके योनि द्वारसे विकृत वीर्यके समान स्राव होता है, वह शुक्रमेह नहीं, बल्कि वह रजका विकार प्रदर होता है। दूसरे पक्षमें किसी २ का मत है-कि-स्त्रियोंके आहारजात रस क्रमशः मज्जारूपमें परिणत होनेके अनंतर उसका थोड़ासा भाग शुक्र और अधिकांश भागसे रज बनता है। इस लिए स्त्रियोंके भी शुक्र होता है, और उन्हें शुक्रमेह रोग भी होजाता है। इनके मतमें पुरुषोंके शरीरमें ७ धातु और स्त्रियोंके शरीरमें ८ धातु होते हैं

प्रश्न-प्रदर रोग किन कारणोंसे उत्पन्न होता है, उसके लक्षण और चिकित्सा किस प्रकार की जाती है, कृपाकर इसका उपदेश कीजिये?

उत्तर—विरुद्ध भोजन ( जैसे दूध व मछली एक साथ खाना विरुद्ध है ), अजीर्णमें पुनर्वार भोजन करना, उपवास ( भूखा रहना ) अधिक मैथुन, गर्भपात, अधिक रास्ता चलना व शोक आदि कारणों से ऋतुशोणित दुष्ट होकर प्रदर रोग उत्पन्न कर देता है।

ऋतुसमयमें मासिक-स्राव अत्यधिक मात्रामें निकलनेसे, अथवा बहुत दिनके बाद निकलनेसे या ऋतुकालके अतिरिक्त और २ समय ( बीच २ में रक्त-स्राव होने पर या आर्तव लक्षणोंसे विपरीत लक्षण लिए होने पर, उसको प्रदर या असृग्दर रोग नामसे कहा जाता है।

असृक् अर्थात् रक्त ( खून ) अधिक प्रच्युत होता ( गिरता ) है इस लिए प्रदरका दूसरा नाम "असृग्दर" दिया जाता है। प्रदररोगमें कफकी अधिकता होने पर-योनि मार्गसे पिच्छिल ( चिपचिपा ) पाण्डुवर्ण वा मांस धोये पानीके समान स्राव होता है। पित्तकी अधिकता होने पर—नीला, पीला, काला व लालरंगका व उष्ण ( गरम ) स्राव होता है और उसमें "चिमचिम" के समान दर्द होता है। वायुकी अधिकता होने पर-अरुण वर्ण ( लाल रंग ) फेनयुक्त अथवा मांस धोये जलके समान स्राव निकलता है, और उसमें सुई बींधनेके समान दर्द होता है। वात आदि तीनों दोषोंकी ही अधिकता होने पर घी, शहद वा हरतालके रंगका अथवा मज्जाके समान अति दुर्गन्धित रक्तस्राव होता है। प्रदरके ये असाध्य लक्षण होते हैं।

प्रश्न—विशुद्ध ऋतु शोणितके लक्षण क्या होते हैं ?

उत्तर—ऋतु-शोणित यदि यथा समय पर प्रतिमास ठीक २ परिमाणमें निकले और वह पाँच दिन नियमित निकले, उसका रंग लाखके रसके समान लाल हो, और उस ऋतु शोणितसे रंगा हुआ कपड़ा पानी से धोने पर उसमें धब्बा ( दाग ) न रहे। इसके अतिरिक्त ऋतु समयमें किसी प्रकारका दर्द व यन्त्रणा अनुभव न हो, तो आर्तवशोणितको विशुद्ध समझना चाहिए।

अब इससे आगे प्रदरकी चिकित्सा कही जाती है, सुनो—

चौलाई व कुशकी जड़को पीसकर चावलोंके धोवनके साथ सेवन करनेसे प्रदररोग आराम होजाता है। अशोककी छाल २ तोला, दूध १ पाव व जल १ सेर एक साथ मिला कर पकाना, जब सब पानी सूख जाय केवल दूध बाकी रहे उतार छान कर इसको प्रातःकाल सेवन करनेसे प्रबल प्रदर रोग भी शान्त होजाता है।

शहदमें मिला कर गूलरके फलोंका चूर्ण सेवन करना और दूध व चीनी मिलाकर चावलोंका पथ्य सेवन करनेसे प्रदर रोग आराम होता है।

खरैंटीकी जड़को बकरीके दूधके साथ, अथवा कुश व खरैंटी दोनोंकी जड़ चावलोंके धोवनके साथ पीसकर सेवन करनेसे भी प्रदर आराम होजाता है। घीके साथ लाखका रस सेवन करनेसे भी प्रदरको आराम होजाता है।

**दार्व्यादि क्वाथ**–दारुहल्दी, रसौत, चिरायता, अडूसा, नागरमोथा, वेलगिरी, लाल चन्दन व कमलके फूल इनका काढा बना कर शहद मिलाके सेवन करनेसे सब प्रकारका प्रदर रोग व प्रदरजनित वेदनायें आराम होजाती हैं।

रक्तपित्त, रक्तातिसार व रक्तार्श ( खूनी बवासीर ) रोगमें कही हुई औषधियाँ विचार पूर्वक प्रदररोगमें व्यवहार करना चाहिए। "कुटजाष्टक" रक्तप्रदर रोगकी भी महौषधि है (रक्तातिसारमें देखो)।

**पुष्यानुग चूर्ण**–यह सब प्रकारके प्रदर रोगकी प्रत्यक्ष फल दायक औषधि है। मात्रा-४ रत्तीसे १ माशा तक। अनुपान-शहद व चावलोंके धोनेका पानी।

**प्रदरारि लौह**–इसके सेवनसे सब प्रकारका प्रदर रोग नष्ट होता है। मात्रा-१ रत्ती। अनुपान-कुशकी जड़ पानीसे घिसकर तथा पानीमें घोलके उसके साथ सेवन करना।

**प्रदरान्तक रस व शिलाजतु वटी**–यह सब प्रकारके प्रदर रोगकी उत्तम औषधि हैं। अनुपान-घी, शहद, चीनी अथवा अशोक की छालका क्वाथ या रस या अनारका रस।

**अशोकघृत व शीतकल्याण घृत**–सब प्रकारके प्रदर रोगमें विशेष लाभदायक हैं। इनके सेवन करानेसे सुफेद, पीला, नीला, लाल आदि सब प्रकारका प्रदर रोग आराम होता है। मात्रा-६ माशा से १ तोला। अनुपान-गरम दूध।

## बाधक रोग ( हैजबन्द होना )

ऊपर प्रदर रोगका वर्णन कर आये हैं, अब यहाँ पर प्रदर रोगके ही प्रकार भेद बाधक रोगके विषयमें कहते हैं, सुनो—

कुपित वायु ऋतुके समय रजोमार्गको रोक कर बाहर निकलने वाले रजको ठीक २ तरहसे जैसे निकलना चाहिए वैसा न निकल सकनेके कारण वस्तिदेश ( मसाने )में कमरमें व उरूप्रदेश(चूतड़ों) में भयंकर दर्द उत्पन्न कर देता है। इसको बाधक रोग कहते हैं। बाधक रोगमें ऋतुशोणितके अच्छी तरहसे न निकल सकनेके कारण पेटमें कभी २ गुल्म ( गोले ) के समान आकृतिका होना, हृदय व मस्तिष्कमें शूल, शिरका घूमना, हमेशा दिल मिचलाना, आँखोंके आगे अंधेरी आना, रजः पदार्थका बिल्कुल न होना व कम होना, रजकी विकृति, अरुचि, दुर्बलता, आलस्य व मनका उदास रहना आदि उपद्रव उपस्थित होते हैं। इस रोगके कारण सन्तान उत्पन्न होना असम्भवसा होजाता है, यहाँ तक कि-उपचार न करनेसे अधिक संख्यक स्त्रियाँ बाँझ तक होजाती हैं।

चिकित्सा—ऋतु समयमें पेट आदि स्थानोंमें अत्यधिक दर्द उपस्थित होनेपर दर्दकी जगह पर तार्पीन व सरसोंका तेल मलकर "दशमूल" ( बेल, सोनापाठा, खम्भारी, पाढल व अरणिकी जड़, शालपर्णी, पृष्टपर्णी, कटेली, बड़ी कटेली व गोखरू ) के पानीका सेक देना चाहिए, अर्थात् प्रत्येक चीज १ छटाँक लेकर उसको ४।५ सेर पानीमें पकाकर उस पानीमें फुलालेन या कम्बलका टुकड़ा भिगोकर उससे सेकना चाहिए। दशमूलके न मिलने पर केवल गरम पानीका सेक भी दिया जा सकता है। इससे वायु शान्त होकर दर्द आराम हो जाता है, और रज भी यथावत् निकलने लगेगा।

इस रोगमें वायुसे रोका हुआ ऋतुशोणित अच्छी तरहसे न निकल सकनेके कारण वह विकृत होकर जरायु ( गर्भाशय ) को भी विकृत कर देता है। इस लिए जिस उपायसे शीघ्र ही वायु शान्त होजाय, ऋतुशोणित और गर्भाशय भी शुद्ध होजाय ऐसी तजबीज करना चाहिए।

कांकायन गुड़िका-और प्रदररोगमें कहा हुआ प्रदरारिलौह

प्रदरान्तक रस, शिलाजतु वटिका, अशोक घृत-व शीत-कल्याण घृत-इन औषधियोंको वृद्ध वैद्यगण इस रोगमें प्रयोग किया करते हैं। क्योंकि-इन औषधियोंसे वायुका प्रशम होता है, आर्तवकी शुद्धि होती है और जरायु भी शुद्ध होजाता है। अत एव इन औषधियोंको वाधक रोगमें संकोच रहित होकर व्यवहार करना चाहिए।

## गर्भिणी रोग।

यहाँ पर स्त्री रोगके वर्णनके प्रसंगमें गर्भिणीके रोगोंका वर्णन किया जाता है, सुनो—

गर्भ रहनेके पहिले महिनेमें यदि गर्भिणीको रक्तस्राव हो ( खून गिरे ) तो उसको रोकनेके लिए-मुलेठी, क्षीरकाकोली व देवदार, दूसरे महीनेमें रक्तस्राव होने पर-चौपतिया, काले तिल, मंजीठ व शतावर, तीसरे महीनेमें होनेपर-बांदा, क्षीरकाकोली, नीलोफर व अनन्तमूल, चौथे महीनेमें होनेपर-अनन्तमूल, सुफेद, काला अनन्तमूल, रायसन, भारंगी व मुलेटी, पाँचवें महीनेमें रक्तस्राव होनेपर कटेली, बड़ी कटेली, खम्भारीके फल, वट आदि ( बड़, गूलर, पीपल वेंत व पिलखन ) क्षीरी वृक्षोंकी छाल वा कोंपल तथा घी, छठे महीने में होनेपर-पिठवन, खरेटी, सहजनेके बीज, गोखरू व मुलेठी, सातवें महीनेमें-सिंघाड़ा, कमलकी जड, किसमिस, कसेरू मुलेठी व चीनी आठवें महीनेमें-कैथवेल, वेल, कटेली, बडी कटेली व ईखकी जड, और पटोलपत्र, नवें महीनेमें मुलेठी, अनन्तमूल, क्षीरकाकोली व काला अनन्तमूल जौ कूटकर क्षीरपाक विधि × से पकाकर गर्भिणी

---

× क्षीरपाक विधि-सब औषधियाँ मिलाकर २ तोला,-दूध १ पाव, पानी १ सेर मिलाकर पकाना, जब सब पानी जलजाय केवल दूध बाकी रहे, उतार छानकर चीनी आदि, प्रक्षेप द्रव्य पीछेसे मिलाकर सेवन कराना चाहिए।

स्त्रीको सेवन कराने चाहियें। ऊपर हर महीनेमें देनेके लिए जो सब प्रयोग लिखे गये हैं, उन सबको इस प्रकार क्षीरपाक विधिसे पका कर सेवन करानेसे रक्तस्राव होना बिल्कुल बन्द होजाता है।

ऊपर गर्भिणीके असमयमें अस्वाभाविक खूनके गिरनेको रोकनेका उपाय बता चुके हैं अब गर्भिणीके असमयमें दर्द होनेपर, उसके निवारणकी चिकित्सा कहते हैं।

यदि पहिले महीनेमें वेदना उपस्थित हो, तो सुफेद चन्दन, सौंफ मोतियाके फूल व चीनी इन सब चीजोंको समान लेकर तण्डुलोदक (चावलोंके धोवन) के साथ पीसकर उसमें दूध मिलाकर पीने लायक पतला बनाकर पिलाना चाहिए। अथवा—तिल, पद्माख, कमलकी जड़, व शालीके चावल दूधके साथ पीसकर चीनी, शहद व पर्याप्त दूधमें घोलकर सेवन कराना चाहिए। इससे यह अस्वाभाविक प्रसव वेदना दूर होजायेगी और चलितगर्भ स्थिर होजायेगा। पथ्य दूध चावल।

दूसरे महीनेमें इस प्रकारका दर्द उपस्थित होनेपर—कमल, सिंघाड़ा व कशेरूको तण्डुलोदकसे पीस कर चावलोंके धोवनमें घोल कर पिलाना चाहिए।

तीसरे महीनेमें—काकोली, क्षीरकाकोली व आमले पीसकर गरम पानीके साथ सेवन करना चाहिए।

चौथे महीनेमें—कमल, कमलकी जड़, कटेली, गोखरू इन सब चीजों को अथवा गोखरू कटेली, नेत्रवाला व नीलोफर इन सब चीजोंको पीस कर सेवन करानेसे लाभ होता है।

पाँचवें महीनेमें—नीलोफर व क्षीरकाकोली दूधके साथ पीस कर और उसमें दूध, घी व शहद मिलाकर सेवन कराना चाहिए। अथवा नीलोफर, ग्वारपाठेका गूदा व काकोली शीतल जलके साथ पीसकर और दूधमें घोल कर सेवन कराना चाहिए। इनसे वेदना दूर होकर गर्भ स्थिर हो जावेगा।

छठे महीनेमें वेदना उपस्थित होने पर–बिजौरे निम्बूके बीज, फूल-फिरंग, लालचन्दन व नीलोफर दूधमें पीसकर सेवन कराना चाहिए।

सातवें महीनेमें दर्द उपस्थित होने पर शतावर व कमलकी जड़ दूधके साथ पीसकर अथवा कैथवेल, सुपारीकी जड़, धानके खील व चीनी ठंडे पानीके साथ पीसकर सेवन कराना चाहिए। इससे अकाल गर्भवेदना दूर होजावेगी।

आठवें महीनेमें वेदना उपस्थित होने पर तण्डुलोदकमें धनिया पीसकर अथवा ठंडे पानीमें ढाकके पत्ते पीसकर सेवन कराना चाहिए

नवें महीनेमें दर्द उपस्थित होने पर–एरण्डकी जड़ व काकोली ठंडे पानीके साथ पीसकर अथवा ढाकके बीज काकोली व पियावाँसे ( गुलखैरी ) की जड़ काँजीके साथ पीसकर सेवन कराना चाहिए।

दशवें महीनेमें–नीलोफर, मुलेठी, नागरमोथा व चीनी दूधके साथ पीसकर और दूधमें घोलकर सेवन कराना चाहिए। परन्तु आठवें नवें दशवें महीनेमें वेदना उपस्थित होने पर वह स्वाभाविक प्रसववेदना है वा नहीं जानकर औषधि सेवन कराना चाहिए। स्वाभाविक प्रसव वेदना होने पर औषधि सेवनकी आवश्यकता नहीं होती।

**असमयमें गर्भपातके लक्षण उपस्थित होने पर—** कसेरू, सिंघाड़ा, कमलकी केसर, कमल, मुद्गपर्णी व मुलेठी इन सब चीजोंके कल्कमें दूध पकाकर उसमें चीनी मिलाके सेवन करानेसे यह उपद्रव शीघ्र शान्त होजाता है। पथ्य दूध चावल खिलाना चाहिए।

बकरीका दूध १ पाव, शहद २ माशा और कुम्हारके घड़े बनाने की मिट्टीकी कीचड़ ४ माशा एक साथ मिलाकर सेवन करानेसे गर्भ-पात होना बन्द होजाता है।

प्रश्न—गर्भावस्थामें ज्वर आदि रोग होने पर क्या उनकी विशेष चिकित्सा है?

उत्तर-विशेष कोई भी चिकित्सा नहीं है, इस समयमें ऐसा चाहे कोई भी रोग हो जाय, उसकी उस रोगके अनुसार साधारण चिकित्सा करना चाहिए। परन्तु जिस औषधिसे अधिक दस्त व कै आती हों और जिन २ औषधियोंमें मीठा तेलिया आदि विषैली चीजें हों, ऐसी औषधियाँ प्रयोग न करना चाहिए। गर्भिणी चिकित्साके लिए कुछ विशेष औषधियाँ कहता हूँ, सुनो—

ज्वराधिकारमें चक्रपाणीने कहा है-गर्भिणीके ज्वरशान्तिके लिए "सिंहास्यादि, गुडूच्यादि अथवा पंचमूलीकषाय" शहद मिला कर सेवन कराने चाहियें। इनमेंसे किसी एक काढ़ेके सेवन करनेसे गर्भिणी का बुखार शीघ्र ही आराम होजाता है। काढ़ोंके नुसखे नीचे दिये जाते हैं। जैसे—

**सिंहास्यादि**-अड़ूसेकी छाल, गिलोय व कटेली।

**गुडूच्यादि**-गिलोय, अतीस, धनिया, सोंठ वेलगिरी, नागरमोथा, नेत्रवाला, पाठा, चिरायता, इन्द्रजौ, लालचन्दन, खसकी जड़ व पद्माख।

**पञ्चमूली**-पंचमूलकी पाँच चीजें और खरेटी, वेलगिरी गिलोय, नागरमोथा, सोंठ, पाठा, चिरायता, नेत्रवाला, कुड़की छाल व इन्द्रजौ (यहाँ पर पंचमूल कहनेसे समझना चाहिए—कि "पित्तज्वर" में "स्वल्प (छोटा) पंचमूल" शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, बड़ी कटेली, छोटी कटेली और गोखरू ये पाँच चीजें लेनी चाहियें, और "वातकफ" ज्वरमें "बृहत् (बड़ा) पंचमूल"-वेल, सोनापाठा, खम्भारी, पाढल, व अरणि इन पाँच द्रव्योंकी छाल लेना चाहिए।

**लवङ्गादि चूर्ण**-लौंग, सुहागेकी खील, नागरमोथा, धायके फूल, वेलकी गिरी, धनिया, जायफल, रूमीमस्तगी, सोया अनारके छिलके, जीरा, सेंधानमक, मोचरस, नीलोफरकी जड़, रसौत, अभ्रक-भस्म, वराहक्रान्ता, लालचन्दन, सोंठ अतीस, काकड़ासिंगी, कत्था व नेत्र व नेत्रवाला प्रत्येकका समान भाग चूर्ण लेकर भृङ्गराज (भंगरेके)

रसकी तीन भावना देकर (३ दिन तक भंगरेका रस डालकर खरल करके) छायामें सुखाके रखना। इसके सेवन करनेसे गर्भवती स्त्रीका विविध वर्णका अतिसार, आम, रक्तातिसार, संग्रह ग्रहणी, ज्वर, शोथ व शूल रोग आराम हो जाते हैं। अनुपान-बकरीका दूध। मात्रा ४ रत्तीसे २ माशा तक।

**गर्भचिन्तामणि रस**—इसके सेवन करनेसे गर्भवती स्त्रीका ज्वर, दाह व प्रदर रोग आराम होता है। यह सूतिका रोगकी भी उत्तम औषधि है। अनुपान जिस रोगके लिए जो व्यवस्था करना हो वह ही उचित है।

**गर्भपीयूष वल्लीरस**—यह औषधि गर्भवतीके प्रायः सब रोगों में व्यवहार की जाती है। अनुपान रोगके अनुसार।

## सूतिका रोग ( प्रसूत )

प्रश्न-प्रसङ्ग क्रमसे यहाँ पर पूछना चाहता हूँ, कि "सूतिका" किस को कहते हैं ? और सूतिका रोग कैसा होता है ?

उत्तर-प्रसव (बच्चा जननेके) के डेढ़ महीनेतक "प्रसूता" स्त्रीको ही "सूतिका" नामसे कहा जाता है। किसी २ विद्वान्‌के मतमें बच्चा जनने के बाद फिरसे ऋतु ( माहवारी ) न होने तक स्त्रीको "सूतिका" कहना चाहिए, सारांश यह-कि प्रसवके बाद जब तक गर्भाशय, जननेन्द्रिय व प्रसूताका समस्त शरीर बलवान् व पहिलेके समान आकार प्रकारमें न होजाँय, तब तक प्रसूताको सूतिका नामसे कहा जाता है। साधारणतः डेढ़ मास बीतने पर अक्सर "बच्चेदानी" आदि समस्त इन्द्रियाँ बलवान् व प्रकृतिस्थ हो जाती हैं। इस लिए पंडितोंने प्रसवके बाद डेढ़ महीने तकके समयको ही सूतिकाकाल कहकर निर्देश किया है। इसके अतिरिक्त साधारणतः ऋतु भी डेढ़ मासके बादसे पुनर्वार आरम्भ होजाते हैं। इस लिए दोनों मतोंमें कुछ भी भेद नहीं प्रतीत होता, परन्तु कहीं २ पर इसके विपरीत भी देखनेमें आता है।

बच्चा जननेके बाद स्त्रीको ज्वर, अतिसार आदि कोई भी रोग होजाय, वह सूतिका नामसे कहा जाता है। ज्वर, कम्प, प्यास, शरीर का भारीपन, हड्फूटन, अतिसार व शोथ साधारणतः सूतिकाको ये ही रोग हुआ करते हैं। इस लिए इन रोगोंको ही सूतिका नामसे कहा जाता है। जापेकी दशामें जितने भी रोग होते हैं वे सबके सब "कृच्छ्र-साध्य" ( मुश्किलसे आराम होने वाले ) होते हैं, ये सहसा आराम होनेमें नहीं आते।

प्रश्न—क्या सूतिका रोगकी चिकित्सा किसी भिन्न नियमसे की जाती है ?

उत्तर—इस पुस्तकमें पहिले जो ज्वर, अतिसार आदि रोगोंकी चिकित्सा कही गई है, सूतिकाके ज्वर, अतिसार आदिकी उनके अनुसार विचारपूर्वक चिकित्सा करनेसे बहुत समय उपकार होते देखा गया है, किन्तु सूतिका रोगके उपसर्ग स्वरूप ज्वर आदि रोगोंकी चिकित्सामें यह विशेषता अवश्य रखनी पड़ती है, ( चाहे रोगिणी किसी प्रकृतिकी हो ) कि प्रसूति समयमें अधिक बढ़े हुए वायुको मध्यनजर रख कर इन ज्वर आदिकी चिकित्सा की जाय। इसके लिए कुछ विशेष लाभदायक शास्त्रोंमें वर्णित प्रयोग नीचे लिखेजाते हैं, सुनो

**सूतिका दशमूल पाचन**—शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, बड़ी कटेली, छोटी कटेली, गोखरू, पियाबाँसा ( नीलेफूलका ), प्रसारणी, सोंठ, गिलोय व नागरमोथा इनका काढ़ा बना कर सेवन करनेसे सूतिका अवस्थाके ज्वर अतिसार आदि सब रोग आराम होजाते हैं। यह सूतिका रोगके लिए विशेष फलदायक औषधि है।

**सौभाग्यशुण्ठीमोदक व जीरकाद्य मोदक**—इनके सेवन करानेसे सूतिकाके ज्वर व प्रबल उदर रोग आदि आराम होजाते हैं। मात्रा-६ माशासे १ तोला तक। अनुपान बकरीका दूध व जल।

**सूतिकारि रस व बृहत् सूतिका विनोद रस**—इनके सेवन करानेसे ज्वर, तृष्णा, अरुचि व शोथ आदि सूतिकाके रोग नष्ट होजाते हैं। अनुपान—पीपलका चूर्ण व शहद अथवा भुने हुए जीरेका चूर्ण व शहद आदि।

# बाल ( दूध पीने वाले बच्चों के ) रोग ।

प्रश्न-गुरुवर ! यहाँ पर एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ-बहुत छोटे ( दूध पीने वाले ) बच्चेको ज्वर, अतिसार आदि रोग होने पर क्या उनको किसी विशेष नियमसे चिकित्सा की जाती है ?

उत्तर-इन रोगोंकी इस अवस्थामें कोई विशेष चिकित्सा नहीं है। ज्वर आदि रोगोंमें पहिले जो औषधियाँ बता आये हैं । वे औषधियाँ छोटे बालकोंको निःसंकोच व्यवहार करानी चाहियें, किन्तु विचार पूर्वक बहुत ही कम मात्रामें व्यवहार करने चाहियें । जैसे-एक वर्ष तक आयु वाले बच्चेको सोलहवाँ भाग ( युवा पुरुषके लिए जो मात्रा जिस औषधिकी निर्धारित की गई है, उसका सोलहवाँ भाग, जैसे-१ रत्ती मात्रा वाली दवाका आधा चावल और १ माशा मात्राकी दवा आधा रत्ती ) । १-३ वर्ष तक अष्टमांश ( आठवाँ भाग ), ३-६ वर्ष तक चतुर्थांश ( चौथाई ) मात्रामें ६-१२ वर्ष तक आधी मात्रामें और १२ वर्षके अनन्तर पूर्ण मात्रामें औषधि प्रयोग करना चाहिए । यह एक साधारण नियम बताया गया है, परन्तु मात्राके विषयमें यह ही एक निश्चित नियम न जानना चाहिए, क्योंकि-हम तुम्हें पहिले ही बता चुके हैं, कि देश, काल पात्र व रोगकी अवस्थाको जानकर चिकित्सक लोग औषधिकी मात्रा निश्चित किया करते हैं ।

स्तन्यपायी ( केवल दूध पीने वाले ) बालकोंकी औषधिके विषयमें शास्त्रोंमें जो कुछ विशेष कहा गया है, वह कहते हैं सुनो—

ज्वर आदि किसी भी रोगमें स्तनपायी बालकको लंघन करानेकी आवश्यकता होने पर बच्चेकी माता या धायको ( जिसका वह दूध पीता हो ) लंघन कराना चाहिए । ऐसे बालकको लंघन भूल कर भी न कराना चाहिए । बच्चेके लिए और सब कुछ निषेध किया जा-सकता है, परन्तु दूधका निषेध न करना चाहिए । यदि स्तन दुग्ध दूषित हो, तो शिशुको स्तनपान न करा कर उसके बदलेमें बकरी आदिका दूध पिलाना चाहिए ।

नवजात बालक यदि स्तनपान न करे, तो आमला व हल्दीका चूर्ण घी व शहदमें मिलाकर बालककी जबान पर लेप करना चाहिए।

जो बालक दूध पीकर के ( वमन ) कर दे, उसको कटेली व बड़ी कटेलीके फूलका रस सेवन कराना चाहिए। गौका दूध पीते ही वमन कर डालने पर दूधमें ३। ४ बूँद चूनेका पानी सेवन कराना चाहिए।

स्तन दुग्धके अभावमें बकरीका दूध पिलाना चाहिए। बालकके गलेमें कफके चिपक जाने पर सोंठ, पीपल, कालीमिर्च, हरड़, हल्दी व बच पीस कर उपयुक्त मात्रामें दूधमें मिलाकर सेवन कराना चाहिए। आमकी गुठलीकी गिरी, धानके खील व सेंधानमक पीस कर शहद के साथ चटानेसे बालकके "वमन" आराम होजाते हैं।

चीनी, शहद व निम्बूके रसके साथ पीपल व कालीमिर्चका चूर्ण मिला कर चटानेसे बालककी हिचकी व वमनका नाश होता है।

बालककी नाभिके उठने या फूलने पर एक छोटासा गीली मिट्टी का गोला बना कर उसको कोयलोंकी आँचमें कोयलेके समान लाल गरम करके उसको दूधमें बुझा कर तथा चिमटेसे पकड़ पकड़ कर उसका भपारा नाभि पर देनेसे आराम होजाता है।

नाभिके पक जाने पर हल्दी, लोध, प्रियंगू ( फूलफिरंग ) व मुलेठी इनके कल्कके साथ सरसोंका तेल पका कर इस तेलको नाभि पर चुपड़ना चाहिए। जितना तेल पकाना हो, ऊपर लिखा कल्क तेलका चौथाई लेना चाहिए।

**चातुर्भद्रिका**—बालकके ज्वर, अतिसार, श्वास, कास व वमन रोगके लिए यह सबसे उत्तम औषधि है, प्रयोग यथा—

नागरमोथा, पीपल, अतीस व काकड़ासिंगी समान भाग लेकर चूर्ण बना कर रखना। इस "चातुर्भद्रिका" को शहदके साथ चटा कर सेवन करानेसे विशेष लाभ होता है।

**लवङ्गचतुस्सम व दाड़िमचतुस्सम**—बालकोंके आमातिसार ( आमके दस्त ) में विशेष लाभदायक है।

"लवङ्ग चतुस्सम"-लौंग, जायफल, जीरा सुफेद व सुहागेकी खील इन चार द्रव्योंका समान भाग चूर्ण बना कर रखना। यह दूध पीने वाले बालकोंके आमके दस्तोंकी सबसे उत्तम औषधि है।

इन्हीं चार औषधियोंका चूर्ण यदि अनारके भीतर भरके उसको अच्छी तरह कपड़ मिट्टी या मैदासे लपेट करके कोयलोंकी आँचमें बाहरसे लाल होने तक पका कर निकाल कर, ठण्डा होने पर पीस कर रखना। उसको बकरीके दूधके साथ व्यवहार करानेसे आमके व खूनके दस्तोंमें विशेषलाभ होता है। मात्रा-आधा रत्तीसे २ रत्तीतक। इसको ही "दाड़िम्ब चतुस्सम" कहते हैं।

तिल व मुलेठी समान भाग लेकर पीस कर उसमें थोड़ासा तिल का तेल, चीनी व शहद मिलाकर सेवन करानेसे शिशुओंका "**रक्ता-तिसार**" आराम होजाता है।

अंकोल ( ढेरा ) की जड़ व बड़की जड़को पीसकर चावलोंके धोवनके साथ सेवन करानेसे बालकोंका दुानवार **अतिसार व ग्रहणी रोग** आराम होजाता है।

सुफेद जीरा व रूमीमस्तगीका चूर्ण वेलके पत्तोंके रसके साथ या केवल रूमीमस्तगीका चूर्ण गुड़के साथ सेवन करानेसे आम-रक्त व इसके कारण उत्पन्न दर्द आराम होजाता है।

जामुनकी छाल व पत्तोंका रस समान भाग बकरीका दूध मिला कर सेवन करानेसे छोटे बालकोंका **अतिसार व ग्रहणी रोग** आराम होजाता है।

आम्रातक ( अंबाड़ा ) आम व जामुनकी छालका चूर्ण बनाकर शहदके साथ चटानेसे बच्चोंका **अतिसार** आराम होजाता है।

पीपल, कालीमिर्च, चीनी, शहद, छोटी इलायची व सेंधानमक समान भाग लेकर चटनी बना कर चटानेसे बालकका "**मूत्रकृच्छ्र**" रोग ( पेशाब रुक २ के आना ) आराम होजाता है।

दारुहल्दी, नागरमोथा व गेरूमिट्टीको बकरीके दूधके साथ रगड़ कर बालकके नेत्रोंके बाहर लेप करनेसे आँख दुखनी आराम होजाता है।

स्तनपायी बालक यदि दूषित स्तनोंका दूध पी जाय, तो उसको अतिसार आदि रोग हो जाते हैं। इस लिए बच्चेकी माता व धायका दूध दूषित होने पर उसको विरेचन करानेके लिए बालककी माता व धायको "हरिद्रादि" व "वचादि" गणका क्वाथ बना कर सेवन कराना चाहिए।

**हरिद्रादि गण**—हल्दी, दारुहल्दी शालपर्णी, इन्द्रजौ व मुलेठी।

**वचादि गण**—बच, नागरमोथा, अतीस, हरड़, देवदारु व नागकेशर।

मनशिल, शंखनाभिभस्म, पीपल व रसौत इन सबको शहदके साथ पीस कर वर्तियाँ बना कर रखना, इस वर्त्तिको स्तनदूधके साथ घिस कर आँजनेसे बालकोंके **सब प्रकारके नेत्र रोग** आराम हो जाते हैं।

वायविडंग, हरताल, मनशिल, दारुहल्दी, लाख, लालचन्दन व गेरूमिट्टी इनका बारीक कपड़ छन चूर्ण बना कर शहदके साथ मिला कर आँजनेसे बालकोंके आँखके **रोये कुकरे व प्रवाल** आराम हो जाते हैं।

तिलका तेल १ सेर। कल्कके लिए-खरेटी, कूठ, हरताल व मनशिल प्रत्येक ४ तोला और पकानेके लिए जल ४ सेर मिला कर तेल पकानेकी विधिसे तेल पकाना चाहिए। इसको कानोंमें डालनेसे बालकोंका पूतिकर्ण ( कानसे पीप बहना ) आराम होजाता है।

बच्चोंके दाँत निकलनेके समय उदरामय ( पेटकी कई तरहकी बीमारियाँ ) ज्वर व आक्षेप ( दौरा पड़ना ) आदि बहुतसे रोग हो जाते हैं। इस अवस्थामें विशेष चिकित्सा अवलम्बन करने या और किसी तरहका कष्ट देनेकी आवश्यकता अक्सर नहीं हुआ करती, क्योंकि-दाँतोंके निकल आने पर उस समयके ये रोग अपने आपसे

आराम होजाते हैं। सिर्फ दाँतोंके ऊपरसे मसूढ़ोंको थोड़ासा नश्तर द्वारा छेद देनेसे दाँत विना कष्टके बहुत जल्दी निकल आते हैं।

बालकोंको एक तरहकी दौरेकी बीमारी हुआ करती है। इसको साधारण बोलचालमें "मसान-भूनात-परछावा" नामसे कहा करते हैं। यह बहुत कष्टदायक और शीघ्र प्राण लेने वाला रोग हुआ करता है। इस रोगका दौरा उपस्थित होने पर बालकके आँख व मुख पर ठंडे पानीके छींटे देने चाहिए, उसके शिरकी तरफ पंखा झलना चाहिए, और उसको पकड़ कर लिटाये रखना चाहिये। पुराना गाय का घी उसके शरीर और शिर पर मलना, पैरोंमें तार्पीनका तेल मलना और गरम पानीसे सेकना चाहिये। भुकवर्षी ( अलिभ आयल् ) व एरण्डके तेलका जुल्लाब देना चाहिये तथा एरण्ड तैलकी पिचकारी देकर दस्त साफ कराना चाहिए। हल्दीका एक टुकड़ा भून कर उसका सेक बालकके दोनों भ्रू ( भवों ) के ऊपर देना चाहिये।

यह दौरा दिनमें २। ३। ४ बार तक उठा करता है। दौरेका वेग दूर होजाने पर एक रत्ती व आधा रत्ती "मकरध्वज" ( न मिलने पर "रससिन्दूर" ) शहदमें मिला कर सेवन कराना चाहिए।

दौरा दूर होनेके बाद यदि बुखार होजाय, तो बहुत बड़ी सावधानीसे ज्वरकी चिकित्सा करनी चाहिये, क्योंकि-इस बुखारमें अकसर सन्निपात ( सरसाम ) के लक्षण उपस्थित होकर बालकके प्राणोंका संशय तक होजाता है।

## नेत्र ( आँखके ) रोग।

आँखें देखनेमें तो, बहुत छोटी दिखाई देती हैं, किन्तु उनके भीतर बहुत बड़े २ महत्वके काम होते हैं। हमारे आचार्य प्रवरने नेत्रोंका वर्णन बड़े सुन्दर स्पष्ट रूपसे किया है नेत्रोंमें पाँच मण्डल होते हैं, छः सन्धि ( जोड़ ) और उपर्युपरि ( एकके ऊपर दूसरा ) छः पटल होते हैं। इन मंडल आदि स्थानोंमें ७६ प्रकारके

रोग होते हैं। सुश्रुत संहितामें इन प्रत्येक रोगोंका विशेष वर्णन किया हुआ है, परन्तु वर्णन लिखा रहनेसे ही उनका निर्णय करना असंभवसा होता है। क्योंकि-जो योगाभ्यासकी तरह निरन्तर नेत्ररोगोंकी परीक्षा करते रहते हैं, वे ही बहुत दिनके अभ्यासके अनन्तर नेत्र रोगोंकी परीक्षा करनेमे कृतकार्य होते हैं। इसके अतिरिक्त पटलगत अधिक संख्यक रोग शस्त्रसाध्य होते हैं तथा नेत्र शरीरका बहुत कोमल भाग है, थोड़ीसी असावधानीसे नष्ट होजाता है। इस लिए नेत्ररोगोंकी परीक्षा व चिकित्सामें बहुत बड़ी अभिज्ञता व सावधानीकी आवश्यकता होती है। बिना समझे बूझे हर किसीकी चिकित्सा करना भी उचित नहीं, और न हर किसीसे चिकित्सा करना ही उचित होता है। नेत्र चिकित्सा अतिकठिन होनेके कारण ही "गवर्नमेण्ट मेडिकल कालेजों" में नेत्र चिकित्साके लिये स्वतन्त्र प्रबन्ध रहता है। मालूम होता है हमारे देशमें भी यह बात इस लिये प्रचलित है-कि नेत्र रोग की शिक्षा देनेसे गुरु शिष्य दोनोंके ही नेत्र रोग होजाता है।

प्रश्न-गुरुवर! तब क्या आप मुझको नेत्र रोगकी चिकित्सा आदि का उपदेश न करेंगे?

उत्तर-उपदेश तो करूँगा, परन्तु प्रत्येक मण्डल व मण्डलगत प्रत्येक सन्धि व सन्धिगत और प्रत्येक पटल व पटलगत रोगका वर्णन करना तथा उनकी स्वतन्त्र २ चिकित्सा कहना बहुत कठिन काम है, और इतने गम्भीर और विस्तृत उपदेशका कुछ विशेष लाभ भी नहीं दीखता। क्योंकि शारीर ज्ञानके बिना केवल रोगका वर्णन करनेसे बहुत बड़े परिश्रमका न होनेके बराबर फल होगा। इस लिये यहाँ पर तुम्हें ७६ प्रकारके नेत्र रोगोंमेंसे भेषजसाध्य ( औषधियोंसे आराम होने वाले ) सुगम २ कुछ रोगोंकी चिकित्सा कहता हूँ, सुनो—

**चिकित्सा**-"नेत्राभिष्यन्द" ( आँखोंके दुखने पर ) गुलाबका अर्क व फिटकरीके पानीसे आँखें धोना चाहियें। हल्दीसे रँगे हुए कपड़ेसे आँख पोंछनी चाहिये। धूपमें बाहर न फिरना चाहिये, यदि

बाहर निकलना ही हो, तो नीला व पीले रंगका परदा या चश्मा पहिन कर निकलना चाहिए।

शुद्ध रसौत स्त्रीके स्तनदुग्धमें घिस कर आँखमें डालना चाहिये। इसके व्यवहारसे दाह, आँसू बहना व दर्द शीघ्र आराम होजाता है। कनेरके कच्चे पत्तोंको तोड़नेसे जो रस निकलता है, उसको आँखमें डालनेसे दर्द शान्त होजाता है।

सेंधानमक, दारूहल्दी, गेरूमिट्टी, हरड़, व रसौत एक साथ पीस कर आँखोंके बाहर लेप करनेसे नेत्र रोग दूर होजाते हैं।

हरड़, बहेड़ा व आमला इनके बीजोंकी गिरी समान भाग लेकर तथा जलके साथ पीस कर मटर प्रमाण गोली बना कर रखना। इस गोलीको पानीमें घिस कर आँखोंमें आँजनेसे नेत्रोंसे पानी बहना बन्द होजाता है।

निर्मलीके फल शहदमें घिस कर और उसमें कुछ कपूर मिला कर अंजन करनेसे नेत्रोंका दुखना आराम होजाता है।

कपूरका चूर्ण बड़के दूधमें घिस कर उसका अंजन लगानेसे आँखका "फोला" आराम होजाता है।

काले सुर्मेको तपा २ कर ७ बार त्रिफलेके काढ़ेमें और ७ बार स्त्रीके दूधमें बुझावा देकर बारीक रगड़ कर रखना। यह सुर्मा सब प्रकारके नेत्र रोगोंमें व्यवहार करना चाहिये।

रसौत, हल्दी, दारूहल्दी, चमेलीके फूल व नीमके पत्ते इन सब चीजोंको गोबरके रसमें पीसकर तथा गोली बनाकर रखना। इस गोलीको घिसकर आँखोंके भीतर आँजनेसे नक्तान्ध्य ( रतौंधी ) दूर होजाता है। बकरीका पेशाब सेवन करनेसे भी "रतौंधी" आराम होजाती है।

**चन्द्रोदयावर्ती व दृष्टिप्रदावर्ती**—इन औषधियोंको पानी में घिसकर सलाईसे आँखोंमें आँजनेसे आँखोंकी खुजली, मांसवृद्धि, फोला व रात्र्यन्धता आदि आराम होजाते हैं।

त्रिफलाद्य घृत व त्रैफलघृत—इन घृतोंके सेवन करनेसे सब प्रकारके नेत्र रोगोंमें लाभ होता है। आयुर्वेद शास्त्रमें इन दोनों औषधियोंके विशेष गुण वर्णन किये गये हैं। मात्रा १-२ तोला तक अनुपान—दूध।

नयनामृत लौह—इसको आँजनेसे विविध प्रकारके नेत्र रोग आराम होते हैं।

सप्तामृत रस—इसके सेवन करनेसे चक्षुक्षत ( आँखमेंका घाव ), रात्र्यन्धता आदि बहुत से रोग आराम होते हैं। अनुपान घी व शहद के साथ सायंकालके समय सेवन करना चाहिए।

## कर्ण ( कानके ) रोग।

कर्णशूल ( कानका दर्द )—कुपित वायु कर्णस्रोतमें अतिकष्टदायक शूल उत्पन्न कर देता है। इसी तरह और २ कानके रोगोंमें वायु ही प्रधान रहता है, पित्त व कफ उसके अनुबल ( आश्रित ) रहते हैं। कानमें दाह, खुजली आदि लक्षणोंसे इन ( पित्त-कफ ) का अनुबन्ध समझना चाहिए।

कर्णनाद—कुपित वायु ही कानके स्रोत ( छेद ) में तूर्य, भेरी, मृदङ्ग, बाँसुरी व शंख आदिके शब्दके समान विविध प्रकारका शब्द उत्पन्न कर देता है, इसको ही कर्णनाद रोग कहते हैं।

वाधिर्य ( बहरापन )—केवल वायु अथवा कफ संयुक्त वायु कानके स्रोतको ढक कर "बहरापन" (ऊँचा सुनाई देना या बिल्कुल ही न सुनाई देना ) रोग उत्पन्न कर देता है अर्थात् मनुष्यको बहरा बना देता है।

कर्णस्राव ( कानका बहना )—मस्तकमें चोट लगना, पानी में डूबना अथवा कानके भीतर किसी फोड़ेके पक जानेके कारण वायु के कुपित होकर कानको प्रपीड़ित करने ( दबाव देने ) से उससे पीव व जल बहने लगता है, इसीको "कर्णस्राव" कहते हैं।

**कर्णकण्डू ( खुजली )**—कुपित वायु कफके साथ मिलकर कानमें खुजली उत्पन्न कर देता है।

**कर्णगूथ ( कानमें मैल जमना )**—कानमेंका कफ पित्त की गर्मीसे सूखकर कानमें मैल उत्पन्न कर देता है।

**कर्णपाक ( कानका पकना )**—कर्णस्रोतमें पित्तके प्रकुपित होनेके कारण कानके क्लिन्न ( रिसता हुआ ) और पूतिभावापन्न ( सड़ांद लिए ) होने पर, उसको "कर्णपाक" नामसे कहते है।

**पूतिकर्णक ( कानकी बदबू )**—कानके भीतर उत्पन्न हुए स्फोटक आदिके पकने अथवा कानमें जलके चले जाने पर, कानसे दुर्गन्धित पीप निकलते रहनेको "पूतिकर्णक" कहते हैं।

**चिकित्सा**—लहसुन, अद्रक, सहजनेकी छाल, मूली व केलेका पेड़ इनमेंसे किसी एकका रस थोड़ासा गरम करके कानमें डालनेसे अथवा हुलहुल ( जरव्या ) के रसमें थोड़ासा शहद व सेंधानमक मिलाकर या गोमूत्र गरम कर कानमें डालनेसे अथवा थूहरके पत्तों को आँकके पत्तों से बाँधकर और उसके ऊपरसे मिट्टीका लेप कर तथा उसको आग पर भून कर उसका जो रस निकले उसमेंसे थोड़ा सा गरम कर कानमें डालनेसे कानका दर्द आराम होजाता है। बकरी के पेशाबमें थोड़ासा सेंधा नमक मिलाकर और मामूली गरम कर कानमें भरनेसे कानका भयानक दर्द, कानोंमें शब्द होना, क्लेदस्राव ( पीप आदिका बहना ) आराम होजाता है।

बहरेपनके लिए "वातव्याधि" में कहे हुए "माष तैल" आदि कानमें डालना चाहिए। चमेली ( जाई ) के पत्तोंके रसके साथ सरसों का तेल पकाकर वह तेल कानमें डालनेसे "पूतिकर्ण" व "कर्णस्राव" रोग आराम होजाता है।

कच्चे आमके पत्ते, जामुनके पत्ते, कैथबेलके पत्ते, कपासके फल व अद्रक इनके रसमें शहद मिलाकर कानमें डालनेसे "कर्णस्राव" आराम होजाता है।

दीपिका तैल-बेल, सोनापाठा, खम्भारी, पाढल व अरणि इन पाँचों वृक्षोंकी आठ अंगुल नापकी एक २ लकड़ी लेकर उन सबको एक कपड़ेके टुकड़ेमें लपट कर तथा उस कपड़े समेत लकड़ीकी वत्ती को तेलसे तर भिगोकर आग लगाकर जलाना। उससे जो तेलके बूँद नीचे टपकेंगे, वह इकट्ठा कर शीशीमें भरके रखना। उस तेलको थोड़ा सा गरम कर कानमें डालनेसे कानका दर्द शीघ्र ही आराम होजाता है। इसीको "दीपिका तैल" कहते हैं।

**शम्बूकादि तैल**—घोंघोंके भीतरका मांस निकाल कर उनको कड़वे तेलमें जलाकर तेल छानकर शीशी भरके रखना। इस तेलको कानोंमें डालनेसे कानका घाव व नासूर तक आराम हो जाता है।

## नासा ( नाक के ) रोग।

प्रतिश्याय ( जुखाम )—अधिक ठंडापानी पीना, ठण्ड लगना, ओसमें रहना, रोना, नाकके छिद्रोंमें धूल व धुएँका प्रवेश होना, दिन में सोना, रातमें जागना, अजीर्ण व ऋतुविपर्यय ( मौसमके ठीक न होने ) आदि कारणोंसे मस्तकका कफ गाढ़ा होने पर वायु कुपित हो कर प्रतिश्याय रोगको उत्पन्न कर देता है। इस रोगमें पित्त, कफ व रक्तका भी अनुबन्ध रहता है।

इस रोगके होनेके पहिले शिरका भारीपन, स्तब्धता ( अकड़न ) शरीरका टूटना, रोमाञ्च और नाक-मुखसे पानी वहना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं।

प्रतिश्याय रोगमें "वायुका प्रकोप" होने पर नाकका स्वर रुका हुआ और ढका हुआसा मालूम देता है, नाकसे पतला पानीकी आकारमें कफ बहता है, गला, तालु व होठ सूखना, कनपटीके पास सुईसे वींधनेके समान दर्द, अधिक छींकें आती हैं, मुखका स्वाद फीका और स्वर भङ्ग होजाता है।

**पित्तका प्रकोप होने पर**-पीले रंगका गरम २ कफ नाकसे गिरता है, रोगी दुबला, पाण्डुवर्ण व दाह पीड़ित होता है और उसके

नाक मुखसे ऐसा मालूम होता है, मानो धुएँके साथ अग्नि बाहरको निकल रही हो। **कफका प्रकोप होने पर**—नाकसे अधिक मात्रा में सुफेद रंगका व शीतल कफ निकलता है, रोगीका शरीर व मुख नेत्र सुफेदी लिए होता है, शिर भारी, गला और होंठ, तालु व मस्तकमें खुजली होती है। **त्रिदोषका प्रकोप होने पर**—निश्वासमें दुर्गंध घ्राणशक्तिका लोप और नाक कभी गीली तथा कभी सूखी, कभी बन्द और कभी खुल जाती है। इस तरहका प्रतिश्याय कष्टसाध्य होता है। प्रतिश्यायमें **रक्तका प्रकोप होने पर**—नाकसे खून गिरना आँखों लाली, मुख व साँसमें दुर्गन्ध और घ्राण ( सूँघनेकी ) शक्ति लुप्त हो जाती है।

**पीनस वा अपीनस**—इस रोगमें वायुसे कफ सूख जानेके कारण नाक कभी बन्द कभी सूखी और कभी गीली होती है। इसमें सूँघनेकी शक्ति और आस्वादनकी शक्ति नष्ट होजाती है। मुख, नाक से धुँआसा निकलता है। यह रोग वात कफसे होता है।

**पूतिनस्य**—दुष्ट रक्त, पित्त व कफ द्वारा तालु मूलमें वायु दुर्गंधित होकर मुख व नाकसे निकलता है। इसको ही पूतिनस्य रोग नामसे कहते हैं।

**नासापाक**—दुष्ट पित्त नासिकाका पाक उपस्थित करके नासिका को क्लेदयुक्त व दुर्गन्ध युक्त कर देता है। इसको ही नासापाक रोग कहते हैं।

**चिकित्सा**—जयन्ती ( जयत ) के पत्ते पुटपाक कर सेंधानमक व तेलके साथ प्रति दिन सेवन करनेसे प्रतिश्यायरोग नष्ट होजाता है।

कालीमिर्च व सोंठका चूर्ण मिला कर दही या और कोई खट्टी चीज खानेसे नया जुखाम आराम होजाता है और कफ पक जाता है। नये जुखाममें इमलीके पत्ते डाल कर पकाया हुआ पानी सेवन करने से विशेष लाभ होता है।

भोजन कर चुकनेके बाद ही नमकके साथ अच्छी तरह पकाई हुई

गरमागरम उड़दकी दाल सेवन करनेसे सब दोषोंसे उत्पन्न व बहुत दिनका पुराना प्रतिश्याय आराम होजाता है।

पीपल, सहजनेके बीज, वायविडङ्ग व कालीमिर्च इन सबके चूर्णका नस्य सूँघनेसे प्रतिश्याय आराम होजाता है। दारुहल्दी, इंगुदी (हिंगोट) की जड़ व दन्तीकी जड़का चूर्ण चिरचिटेके रसके साथ पीसकर इसकी वर्ती बना कर रखना चाहिए। इस वर्तीका धूम ग्रहण करनेसे जुखाम आराम होजाता है।

**व्योषाद्य चूर्ण**—व्योष (सोंठ, मिर्च, पीपल), चीतेकी जड़, तालीशपत्र, इमली, अम्लवेत, चव व काला जीरा प्रत्येक १ तोला। इलायची, दालचीनी व तेजपात प्रत्येक २ माशा, पुराना गुड़ ९ तोला ६ माशा। इन सब चीजोंको एक साथ पीसकर चूर्ण बनाकर रखना। इस चूर्णको १-३ माशा तक गरम पानीके साथ सेवन करनेसे पीनस व उसके उपद्रव-श्वास कास आदि आराम होजाते हैं।

**पाठादि तैल**-इस तेलका नस्य लेनेसे पका हुआ पीनस रोग आराम होजाता है।

**व्याघ्री तैल**-इसका नस्य लेनेसे पूतिनस्य व नासापाक रोग आराम होते हैं।

## दन्त रोग व मुख रोग।

इससे आगे दन्तरोगकी चिकित्सा और रोगकी पहिचानके लिए कहीं २ पर रोगके लक्षण आदि भी वर्णन करूँगा, सुनो--

करंजवा, कनेर, आँक, चमेली, अर्जुन (कोह) व असन (विजयसार) आदिकी गीली लकड़ीका दाँतन करनेसे दाँत मजबूत होते हैं।

नीले कटसरैय्याके पत्तोंके क्वाथका गंडूष (कुल्ली) करनेसे और तिल व वचको चबानेसे दाँतोंका "चीस मारना" आराम होजाता है।

नये "दन्तपुप्पुट" (दाँतोंकी जड़का सोजा) रोगमें जोंक आदि से खून कढ़वा कर पाँचों नमक व जवाखार शहदके साथ मिला कर उस जगह पर मलना चाहिए। दो या तीन दाँतोंकी जड़में सोजा होने

पर उसका नाम दन्तपुप्पुट रोग कहते हैं। यह कफ रक्तज रोग होता है।

शहद, पीपलका चूर्ण और घी एकत्र मिला कर मुखमें रखनेसे "दन्तशूल" आराम होजाता है।

"दन्तवेष्ट" ( मसूड़े ) में घाव होने पर लालचन्दन, मुलेठी व लाखका चूर्ण शहदमें मिला कर घावकी जगह पर मलना और वट, पीपल आदि पञ्चक्षीरी वृक्षोंकी छालके काढ़ेमें घी चीनी व शहद मिला कर कुल्ला करना चाहिये।

"शोषिर" रोगमें रक्तमोक्षण करवा कर लोध, नागरमोथा व रसौत, शहदमें मिला कर उस जगह पर लेप करना चाहिए, और वट आदि क्षीरी वृक्षोंके काथकी कुल्ली कराना चाहिए दाँत की जड़में कष्टदायक शोथ होकर उससे लाला निकलते रहनेको "शोषिर" रोग कहते हैं। यह भी कफ-रक्तज रोग है।

"शीताद" रोगमें रक्तमोक्षण कराके सोंठ व त्रिफला के काथकी कुल्ली करना चाहिए। प्रियंगू, नागरमोथा व त्रिफला पीस कर रोगकी जगह पर लेप करना चाहिए। मसूड़ेसे अकस्मात् रक्तस्राव होने पर और दाँतोंके नीचेका मास क्रमशः सड़ कर दुर्गन्ध, क्लेदयुक्त, कृष्णवर्ण व कोमल होकर झिरते ( गिरते ) रहना इन लक्षणों वाले रोगको "शीताद" कहते हैं। यह कफरक्तज रोग है।

"उपकुश" रोगमें शोथकी जगह पर गूलरके पत्ते आदिसे घिस कर उस जगहसे रक्तमोक्षण कराना चाहिए, और शहदमें मिला कर पाँचों नमक व त्रिकटुका चूर्ण रोगकी जगह पर मलना तथा पीपल, सुफेद सरसों सोंठ व समुद्रफल इनको गरम पानीमें पीस कर इस पानीका गण्डूष धारण करना चाहिए। "दन्तवेष्ट" रोगमें दाह व पाक उपस्थित होकर दाँतोंके गिरनेको "उपकुश" रोग कहते हैं। यह रक्तपित्तज रोग होता है।

दन्तमूलमें नाड़िव्रण ( नासूर ) होने पर-नासूरकी चिकित्सा करना चाहिए ( नासूरकी चिकित्सा आगे कही जायेगी )। जिस दाँत

की जड़में नासूर उत्पन्न हो, यदि वह ऊपरकी पंक्तिमें न हो, तो उस दाँत को उखाड़कर उसमें चीरकर उसमेंका पीप आदि निकाल देना चाहिए।

दशनसंस्कारचूर्ण—सोंठ, हरड़, नागरमोथा, कत्था, कपूर, सुपारीकी भस्म, कालीमिर्च, लौंग व दालचीनी प्रत्येकका चूर्ण समान भाग और सेलखड़ीका चूर्ण इन सबके समान मिला कर रखना, इस चूर्णका प्रतिदिन दाँतों पर मलनेसे सब प्रकारके दाँत व मुखके रोग आराम होते हैं।

यहाँ पर वक्तव्य—तालुमें व गलेके भीतर **गलशुण्ठी, तुण्डिकेरी रोहिणी,** उपजिह्वा व वलय आदि जो विविध प्रकारके शोथ उत्पन्न होते हैं, प्रायः ये सब बहुत ही कष्टदायक होते हैं। शस्त्रकर्मसे ही विशेषतः इनकी चिकित्सा की जाती है, जो इस निबन्धका विषय नहीं है। इस लिए यहाँ पर उनका उल्लेख कर फजूल ही ग्रन्थ-बाहुल्य नहीं करना चाहते।

मुखके भीतर घाव होने पर गौका घी गरम कर लगाना चाहिए, या चमेलीके पत्ते वा गुमेके पत्तोंके साथ गायका घी पका कर यह घी घावकी जगह पर चुपड़ना चाहिए। इसके अतिरिक्त "क्षतचिकित्सा" में कहे हुए घी तैल आदि भी प्रयोग करना चाहिए।

अधिक चूना खानेसे मुखमें दाह होने पर तेल व काँजी मुखमें रखना चाहिए।

खदिरादि वटिका—यह मुखरोगकी सबसे उत्तम औषधि है इस वटिकाको मुखमें रखकर रस चूसनेसे दाँत, होंठ, मुख जिह्वा व तालुके रोग आराम होते हैं।

## स्वरभङ्ग ( आवाज ) बैठना आदि रोग।

प्रश्न—गुरुवर! मैं पूछना चाहता हूँ कि स्वरभङ्ग (आवाजका बैठना) अरुचि, वमन प्यास व दाह प्रायः ये सब ही रोगोंके उपद्रव रूपसे प्रकट होते हैं और प्रधान रोगके नाश होने पर इनका भी नाश होते देख

जाता है, परन्तु जब बिना किसी और रोगके संसर्गके ये स्वयं रोग रूप से उत्पन्न होते हैं, तब इनकी चिकित्सा किस विधिसे की जाती है ?

यथाक्रमसे स्वतन्त्र स्वरभंग आदि रोगोंकी चिकित्सा कहता हूँ, सुनो—

"**स्वरभङ्ग चिकित्सा**—कत्था तेलमें मिला कर अथवा हरड़ व पीपलका चूर्ण या हरड़ व सोंठका चूर्ण मुखमें रखनेसे स्वरभंग रोगमें विशेष लाभ होता है। बेरके हरे पत्ते पीसकर और उनको घी में भूनकर चाटनेसे स्वरभङ्ग व खाँसी दूर होजाती है।

कस्तूरी, छोटी इलायची, लौंग व वंशलोचन इन सब चीजोंका चूर्ण बनाकर घी व शहदके साथ मिलाकर चाटनेसे स्वरभङ्ग व आवाजका बैठना आराम होजाता है। ब्राह्मीके पत्ते घीमें भूनकर सेवन करनेसे स्वरभङ्ग रोगमें विशेष लाभ होता है।

**भैरवरस व त्र्यम्बकाभ्र**—ये दोनों स्वरभङ्गकी महौषधियाँ हैं। इनके सेवन करनेसे स्वरभङ्ग कास व श्वास दूर होजाते हैं। अनुपान ब्राह्मीका रस अथवा सोंठ, पीपल व शहद।

**सारस्वत ( ब्राह्मी ) घृत**—इसके सेवन करनेसे सब तरहका स्वरभङ्ग रोग आराम होजाता है। मात्रा-६ माशा से २ तोला तक। अनुपान-शीत-गरम दूध।

"**अरुचि चिकित्सा**"—प्रतिदिन दुपहरके भोजनके पहिले अद्रक व सेंधानमक सेवन करनेसे भोजनमें रुचि होजाती है। यह अरुचिकी परमोत्तम औषधि है। पुरानी इमली व गुड़ पानीमें घोल कर उसमें दालचीनी, छोटी इलायची व काली मिर्चका चूर्ण मिला कर मुखमें केवल धारण करनेसे (चाटने) से अरुचि शान्त होती है।

"**इमलीका पन्ना**"—सेवन करनेसे अरुचि आराम होजाती है।

"बनानेकी विधि"-अच्छी पकी हुई इमली ५ तोला, चीनी २० तोला, धनियेका चूर्ण ६ माशा, अद्रक ६ माशा और दालचीनी, इलायची,

छोटी व नागकेशर प्रत्येकका चूर्ण १ माशा और पानी १ सेरके अन्दाज लेकर इन सब चीजोंको एक नये मिट्टीके वर्तनमें रखकर मसलना चाहिए। इसके बाद उसमें थोड़ासा गरम दूध मिलाकर और छान कर किसी मिट्टी पत्थर या लकड़ीके वर्तनमें रखकर उसको अगर आदि सुगन्धित द्रव्योंकी धूनी देकर व कपूर आदि सुगन्धित द्रव्य डालकर सुवासित करके २ घण्टे तक वैसेका वैसा रखे रहना चाहिए, फिर उसको जब इच्छा हो सेवन करना।

**"वमन ( कै ) चिकित्सा**—सुफेद चन्दन घिसी हुई ६ माशा व आमलेका रस २ तोला शहदके साथ मिलाकर या सुफेद चन्दन, खश, नेत्रवाला, सोंठ व अडूसे की छाल इन सब चीजोंको समान भाग लेकर चावलोंके धोवन और शहदके साथ सेवन करनेसे कै आना बन्द होजाता है। पित्त पापड़ेका रस व हरड़का चूर्ण शहदके साथ मिलाकर सेवन करनेसे भी वमन रोग शान्त होजाता है।

गिलोय, त्रिफला, नीमकी छाल व पटोलपत्र इनका काढा शहदके साथ मिलाकर सेवन करनेसे **"अम्लपित्तजनितवमनरोग"** दूर होजाता है।

जामुन व बेरकी गुठलीकी गिरी शहदके साथ सेवन करनेसे भी वमन रोग आराम होजाता है। रातको गिलोय पानीमें भिगोकर रखना प्रातःकाल उस पानीको शहद मिलाकर सेवन करनेसे बहुत भयानक वमन भी रुक जाते हैं।

पीपलकी सूखी छाल जलाकर उसको पानीमें बुझाकर उस जल को सेवन करते ही दुर्निवार वमन रोग भी शान्त होजाता है।

आमलेका रस १ तोला और कैतवेलका रस १ तोला इन दोनोंको मिलाकर उसमें थोड़ासा पीपल, मिर्चका चूर्ण व शहद मिलाकर सेवन करनेसे प्रबल वमन भी बन्द होजाते हैं।

बड़ी इलायचीके चिकने बीज पानीमें मसलकर बादको उस पानी

के साथ खसकी जड़ रगड़कर इस जलको सेवन करनेसे वमन रोग दूर होजाता है।

गुलाब इतर व कपूर आदि सुगन्धित द्रव्य और कागजी व गलगल निम्बूका रस पीना या इनके पत्ते सूँघनेसे भी लाभ होता है।

**"तृष्णा ( प्यास ) व दाह रोग चिकित्सा"**—ज्वर रोग की चिकित्सामें पहिले लिखा हुआ "षडङ्ग पानी" सेवन करनेसे प्यास व दाह शान्त हो जाती है। धनियेका काढा या शीतकषाय प्रातःकाल सेवन करनेसे प्यास दाह रोग आराम हो जाता है। काँजी सेवन करनेसे मुखका सूखना दूर हो जाता है। खशकी जड़ व सुफेद चन्दन काँजीमें पीस कर शरीर पर लेप करनेसे दाह व प्यास शान्त हो जाती है।

सौ बार पानीसे धोया हुआ घी शरीर पर मलनेसे भी दाह और प्यास शान्त होजाती है।

प्यास या दाहकी शान्तिके लिये शीतल जलका सेक, ठण्डे पानी में गोते लगाना व पंखेसे हवा करना लाभदायक है।

**गुडूची व बृहद् गुडूची तैल**—इनमेंसे किसी एकके मलने से दाह रोग शान्त होजाता है।

# वृद्धि रोग।

## ( एकशिरा, कुरण्ड व अन्त्रवृद्धि )

**एकशिरा व कुरण्ड**—आहार विहार आदिके अनियमसे वायु कुपित होकर पहिले वंक्षणमें जाकर वहाँसे मुष्क ( अंडकोषों ) में जाकर अण्डकोषकी धमनियें। पीड़ित करता है। इससे उस नाड़ीमें दर्द और सूजन होजाता है। इसको ही एकशिरा रोग कहते हैं इस रोगमें कभी वायु दाहिनी तरफके अण्डकोषकी नाड़ीको और कभी बाँई नाड़ीको तथा कभी दोनों तरफकी दोनों नसोंका आश्रय कर इन दोनों अण्डकोषकी नसोंमें दर्द व सूजन कर देता है।

यदि वह एकाशिरारोग बार २ हो, और बहुत दिन तक रहे और रोग के आरम्भ होते ही उसके इलाज करानेमें उपेक्षा की जाय अर्थात् इस रोगके आरम्भ होते ही उसकी यथोचित चिकित्सा व पथ्य आदिका प्रबन्ध न किया जाय, तो क्रमशः अण्डकोष फूल कर ताड़के फल या कद्दू के बराबर तक बड़ा होजाता है। किसी २ के इतना अधिक बड़ा होजाता है, कि उसका वजन २५। ३० सेर तक होजाता है। इस रोग के अधिक बढ़ जाने पर रोगी बिल्कुल अकर्मण्य व पुरुषार्थ हीन हो जाता है। इसकी इस प्रकार अत्यधिक बढी हुई दशाको ही "कुरण्ड" नामसे कहा जाता है। यह कुरण्ड अतिकृच्छ्रसाध्य व असाध्य रोग होता है।

एकशिरा व कुरण्ड रोग चिकित्सा—एकशिरा व कुरंड रोगमें ऐसी औषधियाँ व्यवहार करना चाहिए जिससे प्रति दिन दस्त साफ होता रहे और ज्वर बढ़ने न पावे। पानी व पानी वाली चीजें अधिक न खाना चाहिए, ऐसी चीजें जितनी ही कम खाई जाँय या न खाई जाँय उतना ही अच्छा होता है। एकादशी, पूर्णिमा, व अमावास्याके दिन व्रत रखकर फलाहार करना इस रोगमें विशेष लाभदायक होता है।

बच व सुफेदसरसों या सहजनेंकी छाल व सुफेदसरसों पीसकर लेप करनेसे अण्डकोषोंकी सूजन आराम होजाती है। त्रिफलाके काढ़ेमें गोमूत्र मिलाकर प्रतिदिन सेवन करनेसे अण्डकोषोंकी सोजिस आराम होजाती है।

बालकके दाहिने अंडकोषमें कुरण्ड रोग हो, तो दाहिने कानका ऊपरका हिस्सा और बाँये अण्डकोषमें हो, तो बायें कानका ऊपरका हिस्सा बींध ( छेद करा ) देना चाहिए।

कुरण्ड बहुत दुःसाध्य रोग होता है। प्रायः जड़से आराम नहीं होता। कुरण्ड रोगमें जलका संचय ( इकट्ठा ) होने पर शस्त्रसे बींध कर जल बाहर निकाल देना चाहिए और फुलालैनका कपड़ा लपेट कर बाँध रखना चाहिए। इस रोगमें मांस बढ़ जाने पर शस्त्रचिकित्सा

करनी चाहिए, प्रायः औषधिप्रयोगसे कुछ लाभ नहीं होता शस्त्र चिकित्सा अभी वैद्यराजोंके हस्तगत नहीं है वैद्योंने बहुत समय पहिले से शस्त्रचिकित्सा करना छोड़ दिया है। इस लिए उसके विषयमें यहाँ पर कुछ कहना निरर्थक होगा।

सुफेद आँकको जड़की छाल कांजीमें पीस कर लेप करनेसे एकशिरा व कुरण्ड रोग आराम होजाता है। गौका घी २ तोला व सेंधा नमक ६ माशा घोंघोंके बीचमें रख कर ७ दिन तक सूर्यकी गरमीमें रख कर पकाना चाहिए। बस सात दिन बाद घोंघोंमेंसे निकाल शीशीमें भर कर रखना इस घीको एकशिरा व कुरण्ड रोगमें मालिश करनेसे लाभ होते देखा गया है।

घी व सेंधानमकको ताँबेके बर्तनमें रख कर धूपमें गरम करना चाहिए। फिर इसको भेड़के बालोंसे घिसना और इस प्रकार करनेसे उस बर्तनमेंसे जो मैल निकले उसको कुरण्ड व एकशिरा रोगमें मलना चाहिए। इसके व्यवहारसे अण्डकोषकी सूजन आराम होजाती है।

साफ सरसोंके तेलमें कपूर मिला कर अण्डकोषों पर मालिश करनेसे एकशिरा रोगमें विशेष लाभ होता है।

एकशिरा व कुरण्ड रोगमें अण्डकोषोंका झुलते रहना ठीक नहीं होता। इस लिए हर समय जाँघिया या लँगोट कसकर रखना चाहिए कभी २ केवल जाँघिया पहननेसे ही अण्डकोषकी सूजन आराम होते देखी गई है।

**वृद्धिहर रस**—इसके सेवन करनेसे एकशिरा व कुरण्डरोग आराम होजाता है। अनुपान—दूध व त्रिफलाका पानी।

"**अन्त्रवृद्धि**"—वायुको बढ़ाने वाला आहार, ठण्डे पानीमें तैरना मलमूत्रका वेग रोकना, या वेग न होने पर जोर लगाना अधिक बोझ उठाना व कठिन व्यायाम आदिका करना इन सब कारणोंसे वायु क्षुब्ध ( विक्षिप्त ) होकर छोटी आँतके कुछ हिस्सेको विकृत कर उस को अपनी जगहसे नीचेकी तरफ़ जंघासे ( वंक्षण सन्धि ) की ओर

ले जाकर वहाँ पर गाँठ ( ग्रन्थि ) की तरह शोथ उत्पन्न कर इस अवस्थामें कुछ दिन तक वहाँ पर टिका रहता है। यदि इस समय इसकी यथावत् चिकित्सा न की जाय, तो वह अण्डकोषमें जाकर अण्डकोषको बढ़ा कर उसको भारी ( स्फीत ), दर्द वाला और जकड़ ( स्तम्भित कर ) देता है। अण्डकोषको दबानेसे वायु शब्दके साथ ऊपरकी तरफ चढ़ पड़ता है और छोड़ देने पर फिर वहीं पर आकर वैसेका वैसा शोथ कर देता है। इस प्रकारके इस रोगको ही "अन्त्र वृद्धि" रोग कहते हैं। वायु जितने दिन तक इस दशामें वंक्षण स्थान में रहता है, तब तक अन्त्रवृद्धि चिकित्साधीन अर्थात् इलाज करने पर आरोग्य होसकती है, परन्तु अण्डकोषोंमें प्राप्त होने पर वह असाध्य होजाती है। यह रोग बहुत दुःखदायक व अतिभयानक होता है, यहाँ तक कि-कभी २ इस रोगसे एकाएक प्राणान्त तक होते देखा गया है।

**अन्त्रवृद्धि चिकित्सा**—अन्त्रवृद्धिके निवारणके लिए कुण्डल-बन्धनी धारण करना और सेक ( स्वेद ) देना, भेद ( शस्त्रकर्म ) आदि क्रियायें करना चाहिए। ,'ट्रस्'' नामक जो यन्त्र आज कल डाक्टर लोग अन्त्रवृद्धिमें व्यवहार करते हैं। कुण्डलबन्धनी प्रायः इसीके समान हुआ करती है। इस लिए कुण्डलबन्धनीके अभावमें "ट्रस" व्यवहार करनेसे ही कुण्डलबन्धनीका काम सिद्ध होजाता है। असाध्य अवस्थामें अन्त्रवृद्धिके प्रतिषेधके लिए एकमात्र यही उपाय है।

खरेटीके पंचांगके साथ एरण्डका तेल पका कर सेवन करनेसे अफारा व वेदनाके समेत अन्त्रवृद्धि रोग शांत होजाता है।

धतूरेके पत्ते व पोस्तका डोरा काँजीमें पीस कर और आग पर गरम करके लेप करनेसे अन्त्रवृद्धि, एकशिरा व कुरण्ड रोगमें विशेष लाभ होता है।

**शशिशेखर रस**—यह अन्त्रवृद्धिकी परमोत्तम औषधि है। इसके सेवन करनेसे एकशिरा व कुरण्डरोग भी शांत होजाता है। अनुपान—त्रिफलाका जल व दूध।

गन्धर्व हस्ततैल—इस तेलके मलने व सेवन करनेसे अन्त्रवृद्धि रोग नष्ट होजाता है। एकशिरा व कुरण्डरोगमें भी इससे अधिक लाभ होता है।

नोट-यह बात याद रहे-कि-यह रोग जब तक जंघासे ( वंक्षण-सन्धि ) में रहे, तब तक ही चिकित्सासे फललाभकी आशा की जा-सकती है, परन्तु अण्डकोषमें प्राप्त होने पर फिर उसके प्रतीकारकी अक्सर कम आशा रहती है। बस फिर तो "ट्रूप" पर ही एकमात्र भरोसा रखना चाहिए।

## श्लीपद ( फीलपाँव ) रोग।

फीलपावरोगके उत्पन्न होनेके पहिले जंघासोंमें दर्दके साथ सोजिश व ज्वर उत्पन्न होता है। फिर क्रमशः सोजा नीचेकी तरफ बढ़ना आरम्भ होता है। इसको ही फीलपाँव रोग कहते हैं। किसी २ का मत है,कि-हाथ, कान नेत्र, लिंग व होठोंमें भी श्लीपद रोग होजासकता है। "वायुके प्रकोपसे"-श्लीपद रोग काले रंगका, रूखा, फूटा हुआ व दर्द लिये होता है और अकस्मात् वेदना व प्रायः ही ज्वर भी होता है। "पित्तके प्रकोपसे"-कोमल, पीले रंगका और जलन व बुखार भी होता है। "कफके प्रकोपसे"-कड़ा, चिकना, सुफेद व पाण्डु वर्णका होता है। सब प्रकारके श्लीपद रोगमें ही कफकी प्रधानता रहती है, जानना चाहिए।

चिकित्सा—वृद्धि रोगकी तरह इसमें भी जल व जलीयद्रव्य कम खाना और एकादशी आदि तिथियोंमें उपवासकरना चाहिए। जिस तरहसे दस्त साफ होता रहे और ज्वर न होने पावे इस ओर विशेष ध्यान रखना चाहिए।

सुफेद आँककी जड़को काँजीमें पीस कर लेप करनेसे फीलपाँव शान्त होजाता है। धतूरेकी जड़, एरण्डकी जड़, सम्हालू, पुनर्नवा, सहजनेकी जड़की छाल व सरसों "अथवा" चीतेकी जड़ व देवदार गोमूत्रमें पीसकर और उसे गरमकर लेप करनेसे बहुत दिनका पुराना

श्लीपद रोग भी सूख कर आराम होजाता है। इस रोगमें यदि पि
अधिकता हो तो मँजीठ, मुलेठी, रायसन, गिलोय व सोंठ इन
चीजोंको कांजीमें पीस कर लेप करना चाहिए।

कांजी व गोमूत्र के साथ विधायरेकी छाल का चूर्ण अथवा गो
साथ पुराना गुड़ व हल्दीका चूर्ण सेवन करनेसे श्लीपद और
कोढ़ तक आराम होजाते हैं।

खरटी व ताड़का रस मिला कर लेप करनेसे श्लीपद आरा
जाता है। सरवालीकी छाल के क्वाथमें थोड़ासा गोमूत्र मिलाकर
करनेसे विशेष लाभ होता है।

गिलोयके क्वाथमें अथवा करंजवेके पत्तोंके रसमें सरसोंका
मिला कर सेवन करनेसे श्लीपद आराम होजाता है।

**वृद्धदारक समचूर्ण**—त्रिकटु, त्रिफला, चव्य, दारुह
कनेरकी छाल, गोखरू, गोरखमुण्डी व गिलोय प्रत्येकका चूर्ण स
भाग और विधायरेका चूर्ण सबके समान भाग लेकर सबको
साथ मिला कर आधा तोला मात्रामें कांजीके साथ सेवन क
श्लीपद व आमवात आदि रोग नष्ट होजाते हैं।

**नित्यानन्द रस**—यह श्लीपद रोगकी सबसे उत्तम औष
वृद्धि, अन्त्रवृद्धि, अर्बुद, गलगंड व कंठमाला आदि वातकफज
भी रोग होते हैं, उन सबों यह प्रयोग किया जाता है। अनुपा
शीतल जल।

**विडङ्गादि तैल**—इस तेलके मलनेसे व सेवन करनेसे श्ले
रोग नष्ट होजाता है।

## गलगण्ड व कंठमाला रोग।

वायु, कफ व मेद विकृत होकर गलेमें छोटा या बड़ा अण्डको
आकृतिका जो स्थाई शोथ ( गाँठ या सूजन ) उत्पन्न कर देते
इसीको "गलगण्ड ( घिघलड़ ) रोग कहते हैं। इसी तर
विकृत चर्बी ( मेद ) व कफ बगल, गर्दनकी मोटी शिराओं, गल

जंघासें ( वंक्षण सन्धि ) में वेर या आमलेकी आकृतिके जो बहुतसे गण्ड ( फोड़े या गाँठे ) उत्पन्न कर देते हैं, उसको **"गण्डमाला वा कण्ठमाला"** नामसे कहा जाता है।

**चिकित्सा**—हस्तिकर्ण पलासकी जड़को चावलोंके धोवनमें रगड़ कर "अथवा" सुफेद सरसों, सहजनेके बीज, मूलीके बीज, शणके बीज, राई व जौ इन सब चीजोंको खट्टी मट्ठा ( लस्सी ) में पीस कर लेप करनेसे गलगण्ड व कण्ठमाला रोग आराम होजाता है।

इन्द्रायणकी जड़ अथवा सुफेद कोयल ( अपराजिता ) की जड़ गोमूत्रमें पीस कर लेप करनेसे गलगण्ड व कण्ठमाला आराम होजाती है।

हुलहुलके बीज व लहसुन पीस कर लेप करनेसे गलगण्ड व कण्ठमाला फट जाती है। और खून व पीप निकल कर बह जानेसे गलगण्ड व कण्ठमाला रोग आराम होजाते हैं।

पन्नेकी भस्म सरसोंके तेलमें पीस कर लेप करनेसे गलगण्ड व कण्ठमाला रोग आराम होजाते हैं।

कचनारकी छाल चावलोंके पानीमें पीस कर और उसमें थोड़ासा सोंठका चूर्ण मिला कर सेवन करनेसे गलगण्ड व कण्ठमाला रोग नष्ट होजाता है।

सोंठके चूर्णके साथ कचनारकी छालका काढ़ा अथवा शहद मिला कर वरनेकी छालका काढा सेवन करनेसे गलगण्ड व कण्ठमाला रोग आराम होजाता है।

भैंसके पेशाबमें एक मास तक मण्डूर रख कर बादको उसको सकोरोंमें बन्द कर गजपुटमें भस्म बना कर रखना। इस भस्मको शहद मिला कर २-४ रत्ती तक सेवन करनेसे गलगण्ड व गण्डमाला रोग आराम होजाता है।

**सिन्दूरादि तैल**—इस तेलके मलने या चुपड़नेसे गलगण्ड व कण्ठमाला आराम होजाती है।

## अर्बुद ( अदीठ वा रसौली ) रोग ।

कुपित हुए वात आदि दोष रक्त मांसको दूषित करके शरीरके किसी भागमें गोलाकार अचल, अल्पवेदनायुक्त वा वेदनारहित, अन्तरमूल जो मांसोच्छ्रय ( मासका गुट्ठल ) उत्पन्न कर देते हैं, इसीको अर्बुद या रसौली रोग कहते हैं। यह धीरे २ बहुत दिनोंमें जाकर बढता है, और प्रायः यह आराम नहीं होता।

**चिकित्सा**—गलगण्ड रोगमें कहे हुए प्रलेप अर्बुद रोगमें भी प्रयोग किये जा सकते हैं। सहजनेके बीज, मूलीके बीज, सुफेद सरसों, तुलसी. जौ व कनेरकी जड़ मट्ठे के साथ पीस कर लेप करनेसे अर्बुद रोग नष्ट होजाता है।

रसौलीके आरम्भमें बड़का दूध, कूठ व मनिहारीनमक पीस कर लेप करके ऊपरसे बड़के पत्ते बाँध रखनेसे रसौली बहुत शीघ्र ही बैठ जाती है।

मूली व हल्दीके क्षारमें शंखका चूर्ण मिलाकर लेप करनेसे रसौली बैठ जाती है। हल्दी, लोध, लालचन्दन, घरका धुँआ व मनसिल इन सब चीजोंको शहदके साथ पीस कर लेप करनेसे अदीठ या रसौली बैठ जाती है।

कुरण्ड, अन्त्रवृद्धि, श्लीपद, गलगण्ड व अर्बुद ये सब रोग बहुत कठिन उपचार साध्य होते हैं। अधिक दिनके पुराने होने पर प्रायः ही औषधिसे उनका प्रतिकार नहीं होता अर्थात् ये रोग पुराने पड़ने पर असाध्य होजाते हैं।

## ब्रध्न ( बध—गाँठ ) रोग ।

प्रसङ्ग वश अब बदगाँठ रोगका वर्णन करते हैं, सुनो—

बात आदि दोष कुपित होकर जंघासे ( वंक्षणसन्धि ) के जोड़में की गाँठको फुला देता है। इससे ज्वर व शूल चुभनेके समान चबके दार दर्द होता है। पण्डितोंने इसको ही ब्रध्न रोग नामसे कहा है।

आतशक ( उपदंश ) के विषसे अक्सर बद् गाँठ फूल उठती है। इस प्रकारकी बद्गाँठ बहुतसी दुःखदायक होती है। यह प्रायः ही पकती है और रोगीको कभी २ महीनों या वर्षों तक अपने दुष्कर्मका फल स्वरूप इस रोगकी नरकयन्त्रणा भुगतनी पड़ती है।

**चिकित्सा**—बद गाँठके उठनेके समय बड़का दूध लगा देनेसे वह बैठ जाता है। गुड़ और चूना अथवा सहजनेका गोंद व चीनी मिला कर लेप करनेसे बद्गाँठ रोग आराम होजाता है। भेड़ीके दूधमें गेहूँके दानें पीस कर और उसको गरम कर लेप करनेसे बद्गाँठका दर्द आराम होजाता है।

कालाजीरा, हाऊबेर, कूठ, गेहूँ व बेरकी गिरी प्रत्येक समान भाग लेकर काँजीमें पीस कर और गरम कर लेप करनेसे ब्रध्न आराम हो जाता है।

एक कौआ मार कर उसी समय उसका पेट फाड़ कर उसके भीतर ब्रध्नको घुसा कर बाँध रखनेसे उसी समय बदगाँठ दर्द आराम हो जाता है कई बारका अनुभूत है।

यदि बद्गाँठ बैठे नहीं बल्कि पक जाय, तो अस्त्रप्रयोग कर उसके भीतरका रक्त व पीप साफ कर उसके बाद घाव ( क्षत ) की चिकित्साके अनुसार उस घावकी चिकित्सा करना चाहिए।

## विद्रधि ( मोगली फोड़ा ) व व्रणशोथ।

इससे पहिले न पकने वाले वृद्धि, श्लीपद आदि शोथोंका उपदेश कर चुके हैं, अब पकने वाले विद्रधि व व्रणशोथका वर्णन किया जाता है, सुनो—

**विद्रधि व विस्फोटक**—कुपित वात आदि दोष हड्डीका आश्रय करके त्वचा, मांस, रक्त व मेदको दूषित करके शरीरके किसी भागमें बहुत गहरी जड़ वाले ( अत्यन्तगाढमूल ) अतिवेदनायुक्त और गोलाकार जो शोथ उत्पन्न कर देते है, उसको विद्रधि अर्थात् मोगली

फोड़ा कहते हैं। और शरीरके किसी एक भागमें अथवा सारे शरीरमें आगसे जलनेके समान बहुत जलन व वेदनायुक्त जो स्फोटक उत्पन्न होते हैं उनको विस्फोटक कहा जाता है। इसमें ज्वर हुआ करता है और रक्त व पित्तका प्रकोप अधिकसे अधिक रहता है।

**व्रणशोथ**—व्रण शब्दका अर्थ क्षत या घाव होता है। घाव होनेके पहिले जो शोथ या सोजिश होती है, उसको ही व्रणशोथ कहते हैं।

**विद्रधि चिकित्सा**—नीचे लिखे कुछ प्रयोग अपक्व विद्रधिमें विशेष फलदायक होते हैं। जौ, गेहूँ व मूँगको पकाकर और पीसकर लेप करनेसे अपक्व विद्रधि बैठ जाती है। सहजनेकी जड़की छालके लेपसे भी विशेष लाभ होता है। इक्षमूलको पीसकर और घीमें मिला कर और आगमें गरम कर लेप करनेसे अपक्व विद्रधि बैठ जाती है। यदि इन लेपोंसे न बैठे, तो व्रणशोथमें कही हुई चिकित्सा करनी चाहिए

**विस्फोटक चिकित्सा**—इन्द्रजौको चावलोंके धोवनसे पीसकर लेप करनेसे विस्फोटक शान्त होजाते हैं। कालीमिर्च पानीमें पीसकर लेप करनेसे या उपलोंकी राखका लेप करनेसे अथवा चूल्हेकी जली मिट्टीका लेप करनेसे विस्फोटक शान्त होजाते हैं।

चिरायता, नीमकी छाल, मुलेठी, नागरमोथा, अडूसेकी छाल, पटोलपत्र, पित्तपापड़ा, खशकी जड़, त्रिफला व इन्द्रजौ इनका क्वाथ सेवन करनेसे सब प्रकारका विस्फोटक आराम होजाता है।

गिलोय, पटोलपत्र, चिरायता, अडूसेकी छाल, नीमकी छाल, पित्तपापड़ा, खैरकी लकड़ी व नागरमोथा इन सबका क्वाथ सेवन करनेसे विस्फोटक जनित ज्वर आराम होजाता है।

लालचन्दन, नागकेशर, अनन्तमूल, चौलाईकी जड़, सिरसकी छाल व जाईके पत्ते इनका लेप करनेसे, अथवा नीलोफर, लालचन्दन, लोध, खशकी जड़, अनन्तमूल व श्यामालता इन सब चीजोंके लेपसे विस्फोटकका दाह आराम होजाता है।

विस्फोटक रोगमें रक्तदुष्टि नाशक व पित्तको शमन करने वाली

औषधियाँ विचारपूर्वक प्रयोग करना चाहिए, और विस्फोटकके पकने पर व्रणकी सी चिकित्सा करना चाहिए।

**विशेषवक्तव्य**–शरीरके भीतर, यकृत्, प्लीहा आदि स्थानों में जो विद्रधि उत्पन्न होती है, वह अति भयानक समझना चाहिए, और वह प्रायः ही औषधिसाध्य नहीं होती। शस्त्रचिकित्साके आधीन होती है। इस लिए यहाँ पर उसका वर्णन नहीं किया गया है।

**व्रणशोथचिकित्सा**–व्रणशोथमें सबसे पहिले शोथनाशक लेप करना चाहिए, फिर क्रमशः उपनाह, भेदन, विदारण, पीड़न, शोधन व रोपण औषधियाँ तजवीज करना चाहिए। व्रणशोथकी इन चिकित्सा विधियोंका नीचे वर्णन किया जाता है।

**प्रलेप**–व्रणशोथकी प्रथम अवस्थामें धतूरेकी जड़ पीसकर उसमें सेंधानमक मिलाकर उसको गरम करके लेप करनेसे विशेष लाभ होता है। लहोड़ा ( सरवाल ) की छाल काँजीके साथ पीसकर लेप करनेसे वात प्रधान व्रणशोथ आराम होजाता है। दूब, मुलेठी व लाल-चन्दनका लेप करनेसे पित्त प्रधान व्रणशोथ आराम होजाता है। बड़, गूलर, पीपल व पिलखन इनकी छालको पीसकर लेप करनेसे कफ प्रधान व्रणशोथ आराम होजाता है।

**लेप करनेके साधारण नियम**–रातके समय लेप न करना चाहिए। एक बार लगाये हुए लेपके गिर जाने पर उसको फिर दुबारा न लगाना चाहिए। बनाकर बासी रखा हुआ लेप व्यवहार न करना चाहिए। लेपके सूख जाने पर उसको निकाल कर अलग कर देना चाहिए। परन्तु व्रणको पकानेके लिए जो लेप लगाये जाते हैं, उसके सूखने पर भी उनको न उतारना चाहिए ) तथा घावके मुखपर लेप न करना चाहिए।

**उपनाह ( पुलटिस )**–शणके बीज, मूलीके बीज, राई, सहजने के बीज, तिल व सरसों और जौ, गेहूँ आदि किसी भी एककी पुल-टिश बनाकर लगानेसे व्रणशोथ और विस्फोटक आदि शीघ्रही पक

जाते हैं। इनके आरम्भमें ही पुटलिश लगानेसे व्रणशोथ बैठ भी जाता है। ऊपर लिखे हुए शणके बीज आदि पीसकर उनमें घी मिलाकर और आँचपर गरम कर बार २ लेप करना चाहिए।

खरीफेके पत्ते, नीमके पत्ते, बनतुलसीके बीज या पत्ते लेकर और सिलबट्टेसे बारीक रगड़ कर बादको पर्याप्त घी मिलाकर गाढा लेप करनेसे व्रणशोथ आदि पक जाते हैं।

गन्दे बिरोजेकी पट्टी लगानेसे बैठने वाला शोथ बैठ जाता है और पकने वाला हो, तो पक जाता है। छोटी हंसपदीके पत्तोंका लेप करनेसे व्रणशोथ आदि पक जाते हैं, और फूटकर उनसे पीप निकल कर बाहर बह जाता है।

स्फोटक वा व्रणशोथके पकजाने पर अस्त्र प्रयोग करना ही उचित होता है। अस्त्रप्रयोगसे पीप आदिके निकल जाने पर, वह शीघ्र ही आराम होजाता है, परन्तु रोगी यदि दुर्बल व डरपोक हो और फोड़ा यदि मर्मस्थानमें जहाँ पर की अस्त्रप्रयोग न किया जा सके उत्पन्न हुआ हो, तो भेदन-औषधि प्रयोग करना चाहिए।

**भेदन**—करंजवा, भिलावा, दन्तीकी जड़, चीतेकी जड़ कनेर की जड़ और कबूतर, कौआ वा चीलकी विष्ठा आदि इन सब चीजोंका लेप प्रयोग करनेसे पका हुआ फोड़ा फूटकर बह जाता है।

**दारण**—गौका दाँत पानीसे घिस कर उसका एक बूँद व्रणशोथ पर लगानेसे बहुत कठिन शोथ भी पक कर बह जाता है। साँपकी काँचलीकी भस्म करके उसमें सरसोंका तेल मिलाकर लेप करनेसे शोथ विदीर्ण होजाता है।

**पीड़न**—लिसौड़ा व सेमल आदि पिच्छिल द्रव्योंकी छाल और जौ, गेहूँ, उड़द व राई इनका लेप करनेसे पका हुआ शोथ सिकुड़ कर पीप आदिको एक जगह एकत्रित कर देता है।

**शोधन** पटोलपत्र व नीमके पत्तोंके क्वाथसे या त्रिफलाके क्वाथसे घावको धोनेसे या अनन्तमूल पीसकर लेपकरनेसे घाव शुद्ध होजाता है

**शोधन**—करेलेके पत्ते, चालता ( शालिञ्च ) व तुलसीके पत्ते इनमें से किसी एकका लेप करनेसे घावमें अंकुर आकर वह भर जाता है। मनुष्यके शिरकी हड्डी गोमूत्रके साथ पीसकर लेप करनेसे असाध्य घाव भी भर जाता है। लोहेके कुदालसे गलगल निम्बूमें छेदकर उसका रस निकाल कर उस रसमें आँककी जड़ घिसकर लेप करनेसे असाध्य घाव भी भर जाता है। अहपादिका ( व हापरमाली गढ़० ठेऊ ) के दूधका लेप करनेसे बहुत दिनका पुराना घाव भी आराम होजाता है

**व्रणराक्षस तैल**-यह तेल व्रणशोथ नाड़ीव्रण व विस्फोटक आदि सब प्रकारके कठिनसे कठिन घावोंकी एकमात्र औषधि है।

## नाड़ीव्रण ( नासूर ) चिकित्सा।

व्रणशोथकी चिकित्साका उपदेश ऊपर किया जा चुका है, अब नाड़ीव्रणकी उत्पत्ति व चिकित्सा कहता हूँ, सुनो—

जो अहित आचरण करने वाला मूर्ख आदमी अपक या पीपसे भरे हुए पके हुए शोथकी उपेक्षा करता है अर्थात् यथाविधि शोधन, पीडन आदि क्रमसे चिकित्सा नहीं कराता, उसके उस शोथमेंका संचित पीप क्रमशः त्वचा, मांस, शिरा, स्नायु, अस्थि, सन्धि व मर्म आदि स्थानोंको विदीर्ण कर उनके भीतर प्रवेश कर जाता है। यह लताकी भाँति या छेद वाली नाड़ियोंकी भाँति प्रवेश कर जाता है इसीसे इस को नाड़ीव्रण नामसे कहते हैं।

**चिकित्सा**—घावकी नाली जितनी दूर भीतर तक गई हो, सलाई ( शलाका ) आदिसे उसका निश्चय कर और उसके बाद शस्त्रसे वहाँ तक चीरा देकर काट देना चाहिए। फिर उसके बाद व्रणचिकित्सा में कही हुई शोधन आदि क्रियायें करना चाहिए। जहाँ पर पहिले लिखे मुताबिक चीरा न दिया जासके वहाँ पर नीचे लिखी औषधियों का प्रयोग करना चाहिए।

अमलतासके पत्ते, हल्दी व मँजीठ इन सबका चूर्ण समान भाग ले कर गोमूत्रके साथ पकाकर उसमें शहद व घी मिलाकर उसकी गरमा-

गरम रहते बत्ती बना कर रखना। कोई २ सूत पर ऊपरसे लेप कर बत्ती बनाना पसन्द करते हैं। इस बत्तीको सुखा कर घावके भीतर भरके रखनेसे घावका पीप आदि भी निकल जावेगा और उसकी नाड़ी भी सूख जावेगी। सेंधानमक और शहद मिलाकर और उसको आँच पर पका कर बत्ती तैय्यार कर घावके भीतर भर कर रखनेसे नासूर आराम होजाता है।

हाफरमाली ( अष्टपादिका गढ़ देऊ ) का दूध भी नासूरकी सबसे उत्तम औषधि है।

हरे केलेका पत्ता लेकर उसके एक किनारेके कुछ हिस्से पर सुई या काँटेसे बिल्कुल पास २ छेद करने और फिर उसके ऊपर हुलहुल के छिलके बिछा कर फिर उस पत्तेका बाकी हिस्सा उसके ऊपरसे ढाँक देना। इसके बाद पत्तेका छेद वाला हिस्सा घावके ऊपर रख कर कपड़ेसे बाँध कर रखना चाहिए। दूसरे दिन इसको बदल कर रखना चाहिये। इस प्रकार ५। ७ दिन करनेसे बहुत भयानक नासूर भी भर आता है। यह नाड़िव्रणकी प्रत्यक्ष फलदायक औषधि है।

मेंढ़के बालोंकी भस्म और कद्दूका टुकड़ा लेकर इन दोनोंके साथ कड़वा तेल पका कर रखना। इस तेलमें रुई भिगो कर नासूरके ऊपर रख देनेसे नासूर भर जाता है।

"व्रणराक्षस तैल" इसकी सबसे उत्तम औषधि है। "हंसपादि तैल" भी नासूरकी सर्वश्रेष्ठ औषधियोंमेंसे एक है।

## भगन्दर ( सीवनका फोड़ा )।

ऊपर नाड़िव्रणके बारेमें उपदेश दे चुका हूँ। भगन्दर भी नाड़िव्रणका ही रूपान्तर है, इस लिए प्रसंगवश यहाँ पर भगन्दरके विषयमें वर्णन करता हूँ, सुनो—

पाखानेके रास्ते ( गुह्यद्वार ) के चारों तरफ दो अंगुल प्रमाण स्थानके भीतर सीवनमें बहुत बड़ी तकलीफ देने वाला घाव उत्पन्न होकर यदि वह पक कर नासूरके रूपमें परिणत होजाय, तो उसको

भगन्दर रोग कहा जाता है। इस भगन्दर रोगकी नाड़ी क्रमशः इस प्रकार होजाती है, कि-कभी २ घावके मुखसे मल, मूत्र और शुक्र तक निकलने लगते हैं। यहाँ तक कि-यह भगन्दरका घाव बहुत मुख वाला होकर गुह्यद्वारको शतपोनक अर्थात् छलनीके आकारका कर देता है। चाहे किसी तरहका भी भगन्दर हो यह अतिकष्टदायक या अतिकष्टसाध्य अथवा असाध्य होता है।

**चिकित्सा**–ऊपर लिखित गुह्यद्वारके उस स्थान पर यन्त्रणा दायक व्रणके उत्पन्न होते ही बड़के पत्ते, पुराने कुँवेकी ईंटका चूर्ण सोंठ, गिलोय और सांठ इन सब द्रव्योंको एक साथ पीस कर घाव पर लगाना चाहिए।

जाईके पत्ते, कच्चे बड़के पत्ते, गिलोय, सोंठ व सेंधानमकको मट्ठे में पीस कर लेप करनेसे भगन्दर रोग शान्त होजाता है। प्रति दिन त्रिफलाके क्वाथसे भगन्दरका घाव धोना चाहिए।

पके चावलोंको अँगुलियोंसे नरम लोईसा बना कर उसका गोला बना कर उसको कोयलोंकी आँचमें पकाना। जब बाहरसे जलते कोयले के समान लाल होजाय। उसको निकाल कर ठण्डा होने पर उसका खूब महीन बारीक चूर्ण बना कर रखना। इसी प्रकार इससे आठवाँ हिस्सा नीलाथोता तवेमें भून कर बारीक पीस कर दोनों चूर्णोंको मिला कर रखना। इस चूर्णको २। ४ दिन तक घाव पर लगानेसे घावके पीप या राद बहना बन्द होजावेगा और घाव लाल रंगका होकर शीघ्र ही भर आवेगा। विद्रधि, नाड़ीव्रण व भगन्दर आदि सब प्रकार के घावोंके भरनेके लिए इस चूर्ण ( अवगुण्ठन ) का प्रयोग करना चाहिए

**सुखानेवाला मरहम**–फटकरीकी खील १ तोला, कत्था ५ माशा अफीम २॥ माशा घी व मोम आधी छटाँक इन सबको एकसाथ मिला कर और रगड़ कर रूईके फाये अथवा कपड़ेमें लगाकर उसको प्रातःकाल व सायंकाल घावके ऊपर लगानेसे सब प्रकारका पुराना घाव सूख जाता है। विद्रधि, नाड़ीव्रण, भगन्दर व आतशक आदिके

घाव और कोईसे भी पुराने घावके सुखानेके लिये यह मरहम प्रयोग करना चाहिए।

एक पीतलके वर्तनमें गायका घी रखकर उसको आग पर चढ़ाना फिर उसमें कुछ थोड़ेसे हुलहुलके पत्ते डाल कर पकाना, जब पत्ते जल जावें, तब घीको चूल्हेसे उतार छान कर रखना। इस घीको घाव पर चुपड़नेसे सब प्रकारके घाव सूख जाते हैं, (हुलहुलके पत्ते न मिलने पर जाईके पत्ते भी व्यवहार किये जासकते हैं)। मुखके भीतरके घावों की यह सबसे उत्तम औषधि है।

"व्रणराक्षस तेल" भगन्दर रोगमें भी व्यवहार करना चाहिए। नारियलका तेल चुपड़नेसे भी विशेष लाभ होता है भगन्दर भी जब नासूर विशेष ही होता है, तब विचारपूर्वक नाड़ीव्रण रोगमें लिखित औषधियाँ भगन्दरमें और भगन्दरमें कही औषधियाँ नाड़िव्रणमें प्रयोग करनी चाहियें।

## उपदंश ( आतशक ) रोग।

यहाँ पर दुष्टक्षतोंका प्रसंग वर्णन किया जारहा है। इस लिए आतशकके दुष्ट घावोंका वर्णन भी किया जाता है, सुनो—

दुष्टयोनि गमन आदि कारणोंसे लिङ्गमें जो दुष्ट स्फोटक उत्पन्न होते हैं, उसको उपदंश रोग कहा जाता है। दुष्ट लिङ्गके संस्पर्शसे स्त्रियोंको भी उपदंश होजाता है। उपदंशके घावमें सूईसे बींधनेके समान या चीरनेके समान दर्द, टपटप ( चबके चलना ), दाह, क्लेद व शोथ उपस्थित होता है। उपदंशका घाव बड़ा भयानक होता है। इससे सारी इन्द्रिय पककर अलग तक होजाती है। स्त्री पुरुषमेंसे किसी एकको उपदंश होने पर उन दोनोंके आपसमें संसर्ग ( सहवास ) करने से दूसरेको भी यह रोग होजाता है। सुजाक, प्रमेह पिड़का व बद-गाँठ ये रोग प्रायः ही उपदंश रोगके वंशधर ( जातिबिरादरी ) के होते हैं। ( लिंगेन्द्रिय पर पसीनेकी फुन्सियोंके समान जो फुन्सियाँ होजाती हैं, उनको ही प्रमेह पिडका नामसे कहा जाता है )।

**चिकित्सा**—त्रिफलाका काढ़ा, नीमके पत्तोंका अथवा काढ़ा भंगरेके रससे उपदंशका घाव धोना चाहिए। उपदंशमें लिंगके पकने पर जयत, कनेर, आँक व अमलतास इनके पत्तोंके क्वाथसे घावको धोना चाहिए बबूल ( कीकर ) के पत्तोंका चूर्ण वा अनारके छिलकोंका चूर्ण अथवा मनुष्यके शरीरकी हड्डीका चूर्ण उपदंशके घाव पर बुरकनेसे उपदंश का घाव सूख जाता है। हर्ड़, आमले वा बहेड़ेके छिलके समान भाग लेकर एक हाँडीमें रखकर हाँडीके मुखको सकोरेसे अच्छी तरह कपड़ मिट्टीसे बन्द कर उसको चूल्हे पर चढ़ा कर अन्तर्धूमसे जलाना चाहिये। इस भस्मको शहदके साथ मिला कर उपदंशके घाव पर लेप करना चाहिये इसका लेप करनेसे उपदंशका घाव सूख जाता है।

सुफेद कत्था आधा पाव हरिण शृङ्ग भस्म आधा पाव पीली कौड़ी भस्म एक छटाँक मोम ऽ=। वा मक्खन ऽ। भर लेकर एक साथ मिला कर उसको घाव पर चुपड़नेसे घाव सूख जाता है।

उपदंशका विष शरीरमें फैल जाने पर और शरीर पर पिड़िकायें उत्पन्न होने पर नीचे लिखा धूम प्रयोग करना चाहिये, अर्थात् इसका भपारा लेना चाहिये इस भपारेसे उपदंशका विष नष्ट होजाता है।—बेरकी जड़की छाल, आँककी जड़की छाल, खिरचिरेका जड, भारंगी वा शुद्ध सिंगरफ समान भाग लेकर पानीमें पीस कर वा सुखा कर रखना चाहिये। इसकी चुटकी जलते कोयलोंमें डाल कर इसका भपारा लेना चाहिए। इस भपारेसे उपदंश विष नष्ट होता है कज्जली ४ तोला वायविडंगका चूर्ण २ तोला एक साथ पीसकर ७ टिकिया बनाकर रखना चाहिये। प्रतिदिन १-१-टिकियाको नई चिलम और नारियलमें भरकर इसका धूम पीनेसे एक सप्ताहमें ही उपदंशका विष नष्ट होजाता है। इस तरह भपारा लेनेसे मसूड़े वा मुख सूज जाते हैं लार गिरती है यह बहुत कष्टदायक चिकित्सा है इसमें गरम पानी और दूध सेवन करना चाहिये।

**रसकपूर सेवन करनेकी विधी**—मैदाको गूँद कर इसकी

एक टिकिया बनाकर उसमें ४ रत्ती रसकपूर रख कर उसको उस तरहसे लेप करना चाहिये कि जिससे रसकपूर उसके भीतर न रहे तदनन्तर उसके ऊपर लौंगका चूर्ण लगाकर ऐसी सावधानीसे निगल कर खाना चाहिये कि जिससे दाँत या मुहमें न लगने पावे इसके सेवन करनेके बाद पान खाना चाहिये औषध सेवन करनेके समय साग सब्जी खट्टा, परिश्रम, व धूपमें चलना वर्जित करना चाहिये।

## सद्योव्रण व अग्निदग्धक्षत।

घावके प्रसंगमें तुम्हें यहाँ पर सद्योव्रण अर्थात शस्त्र आदिके चोट से जो घाव हो जाते हैं उसका और आगसे जलनेके घावकी चिकित्सा का उपदेश कहता हूँ, सुनो-

**सद्योव्रण चिकित्सा**-हथियार आदिके चोट लगनेसे गहरा घाव होजाने पर घावमें सौ बार धोये हुए घीमें कपूरका चूर्ण भरकर पट्टी बाँध देना चाहिये इससे घावका दर्द या पकना बन्द होकर घाव में अंकुर आजावेंगे सद्योव्रणमें अत्यधिक दर्द होने पर मुलेठीके क्वाथ के साथ घी पका कर उस घीको घाव पर चुपड़ना चाहिये ( गाय घी ऽ। मुलेठीका कल्क ४ तोला पकानेके लिये जल १ सेर ) । घावमेंसे खून गिरने पर जलकी पट्टी बाँधना चाहिये। इससे रक्तका गिरना बन्द होजाता है। चिरचिटेका रस डालनेसे रक्तस्राव बन्द होजाता है

दूब चबा कर अथवा कोयलोंका चूर्ण या चीनी घावमें प्रयोग करनेसे रक्तस्राव दूर होजाता है।

इसी प्रकार एक सप्ताह चिकित्सा करनेके पश्चात् व्रणशोथके समान चिकित्सा करनी चाहिये।

**अग्निदग्धक्षत ( आगसे जलनेके घावकी ) चिकित्सा**-

चूनेका पानी या नारियलका तेल मिला कर उसमें थोड़ासा कपूर डालकर रखना चाहिये। इसको आगके जले हुये घावों पर लगानेसे जलन शीघ्र दूर होजाती है। घाव पर शहद चुपड़ कर उसके ऊपर

से जौका चूर्ण लगानेसे जलन उसी समय दूर होजाती है। खीरेका गुड़ चुपड़ कर जौका चूर्ण लगानेसे भी जलन बन्द होजाती पुरी तलनेसे बचे हुए घीके लगानेसे सब प्रकारका घाव सूख जाता है।

पुराना होने पर इसमें भी विचार पूर्वक पूर्वोक्त क्षतनिवारक औषधियाँ प्रयोग करना चाहिये।

## श्वित्र ( सुफेद कोढ़ ) रोग।

बाह्य दृश्य ( बाहर शरीर पर दिखाई देने वाले रोगोंके प्रसङ्गमें यहाँ पर मैं तुम्हें श्वित्र रोगका उपदेश देता हूँ, सुनो-

वात आदि दोष जिन २ कारणोंसे कुपित होकर कुष्ठ रोग उत्पन्न करते हैं। ये उन्हीं कारणोंसे कुपित होकर श्वित्र रोगको भी उत्पन्न करदेते हैं। इसी लिये कुष्ठरोगकी बहुतसी प्रलेप आदि औषधियाँ धवल रोगमें भी प्रयोग की जाती हैं। इसी कारण पण्डित लोग कुष्ठ रोगके अन्तर्गत इसकी गणना करके इसको " श्वित्र कुष्ठ " नामसे कहते हैं।

वातज श्वित्र-रूक्ष, व अरुणवर्ण, पित्तज श्वित्र व ताम्रवर्ण वा बीचमें सुफेद और किनारेसे लाल वर्ण और थोड़ा दाह युक्त-कफज श्वित्र सुफ़ेद रंग और कण्डू ( खुजली ) युक्त होता है।

चिकित्सा-बावचीके बीज १ तोला, शुद्ध तब-कि हरताल ३ माशा इन दोनोंका गोमूत्रसे पीस कर प्रतिदिन लेप करनेसे सुफेद कोढ़ आराम होजाता है।

हाथीका चमड़ा और चीते बाघका चमड़ा जलाकर इनकी भस्म को सरसोंके तेलमें घोल कर लेप करनेसे और रत्तीके दाने व चीतेकी जड़का चूर्ण कर इसका लेप करनेसे भी श्वित्र रोग आराम होजाता है

मनशिल व चिरचिटेका क्षार मिलाकर लेप करनेसे भी सुफेद कोढ़ आराम होजाता है।

सुफेद कोढ़का मुख सुफेद हो, तो गन्धक, हीराकसीस, हरताल

व त्रिफला इन सब चीजोंको पानीमें पीस कर लेप करनेसे उसका रंग स्वाभाविक होजाता है। यह श्वेत कुष्टकी अनुभवसिद्ध औषधि है।

आमले व खैरके क्वाथमें बाबचीका चूर्ण व शहद डालकर सेवन करनेसे सुफेद कोढ़ आराम होजाता है।

श्वेतारिरस—इसके सेवन करनेसे सुफेद कोढ़ आराम होजाता है। अनुपान-शहद व घी।

**श्वित्र पंचानन तैल**—गूलर आदिके पत्तोंसे सुफेद कोढ वाली जगहको थोड़ा सा रगड़ कर प्रतिदिन इस तेलको लगानेसे सुफेद कोढ़ आराम होजाता है।

कोढ रोगमें लिखे हुए लेप आदि औषधियाँ विचारपूर्वक सुफेद कोढ रोगमें प्रयोग करना चाहिए।

## शीतपित्त ( पित्ती उछलना ) रोग।

अब नीचे शीतपित्त रोगकी चिकित्सा लिखी जाती है, सुनो—

दुष्ट हुए कफ व वायु सञ्चित पित्तके साथ मिल कर शीतल वायुके स्पर्शसे खालके ऊपर भिड़ या ततैयाके काटनेके समान सोजिश उत्पन्न कर देते हैं। इसमें खुजली व सुईसे बींधनेके समान दर्द होता है। इस प्रकारके शोथको शीतपित्त रोग कहते हैं। साधारण बोल चालमें कोई २ इसको आमवात भी कहते हैं। पर यह आमवात नहीं होता। इसके दूसरे भेदको "कोठ" नामसे कहते हैं। कोठ बार २ उठते हैं और बार २ बैठ जाते हैं।

**चिकित्सा**—पुराने गुड़के साथ अद्रकका रस सेवन करनेसे शीतपित्त व उससे होने वाले अग्निमान्द्य आदि लक्षण आराम होजाते हैं।

गुड़के साथ हल्दीका चूर्ण सेवन करनेसे भी शीतपित्त आराम होजाता है।

अरणीकी जड़का चूर्ण घीके साथ ७ दिन तक सेवन करनेसे शीतपित्त व कोठ रोग आराम होजाता है।

दूब व हल्दी एक साथ पीस कर शरीर पर लेप करनेसे शीतपित्त खुजली, दाद व कोठ आराम होजाते हैं।

जवाखार व सेंधानमक सरसोंके तेलमें मिला कर लगानेसे शीत-पित्त रोग आराम होजाता है।

**हरिद्राखण्ड**—यह शीतपित्त, कोठ आदि रोगोंकी सबसे उत्तम औषधि है। मात्रा—१ तोला। अनुपान—जल वा दूध।

## क्षुद्र ( छोटे २ चर्म ) रोग।

अब इसके बाद यहाँ पर मैं तुम्हें कुछ संक्षेपसे क्षुद्र रोगोंके विषय में उपदेश करता हूँ, सुनो—

**दद्रुचिकित्सा**—शुद्ध गन्धकका चूर्ण व बूरा समान भाग मिला कर दादके ऊपर लेप करनेसे २। ४ दिनमें ही दाद आराम होजाता है।

नोट—दाद पर औषधि लगानेके पहिले गूलर आदिके खुरदरे पत्ते से दादकी जगहको रगड़ लेना चाहिए।

पवाड़के बीज, आमला, राल व थूहरका दूध इन सब चीजोंको कांजीसे पीस कर लेप करनेसे दाद आराम होजाता है।

पवाड़के बीज, जीरा व गिलोयकी जड़ पानीके साथ पीस कर लेप करनेसे दाद रोग आराम होजाता है।

पवाड़के बीज, कूठ कड़वा, सेंधानमक, सुफेद सरसों व बाय-विड़ंग इन सबचीजोंका कांजीसे ( कांजी न मिलने पर जलसे ) पीस कर लेप करनेसे दाद रोग आराम होजाता है, इससे सिध्म, विचर्चिका आदि रोग भी आराम होजाते हैं।

**विचर्चिका ( चंबल ) चिकित्सा**—जिसके बीचमें पानी हो ऐसा एक कच्चा नारियलका फल लेकर उसके बीचमें कुछ थोड़से चावल भर कर रखना। कुछ दिन तक उसके वैसे ही रहनेसे उनके सड़ जाने पर, उनको निकाल कर खूब अच्छी तरहसे वारीक पीस कर चंबलके ऊपर लेप लगानेसे चंबलका घाव थोड़े दिनमें ही सूख कर आराम होजाता है। यह प्रयोग खुजलीके लिए भी अनुभव सिद्ध है।

**खुजली आदिकी चिकित्सा**—गन्धकका चूर्ण सरसोंके तेल के साथ मिलाकर और उसको धूपमें रख कर गरम करके लेप करनेसे खुजली, सूखी खाज और चंबल आदि रोग आराम होजाते है।

सिन्दूर व मिर्चकालीके चूर्णको भैंसके मक्खनके साथ मिला कर बार २ लेप करनेसे खुजली आदि चमड़ेके रोग आराम होजाते हैं।

आँकके पत्तोंका रस व हल्दीके कल्कके साथ सरसोंका तेल पका कर इस तेलको खुजली पर लगानेसे खुजली आदि चमड़ेके रोग आराम होजाते हैं।

सुहागा व गोरीसर ( आस्फोता ) की जड़को पीसकर लेप करने करनेसे अलस ( खाऊआ ) रोग आराम होजाता है। खरनारीके ७ पत्तोंसे लपेट कर रखनेसे भी अलसक आराम होजाता है।

लाख, हरड़, गन्धवेल इन सबका लेप बना कर लगानेसे या चमेलीके पत्ते पीसकर इनका लेप करनेसे अलसक रोग आराम होजाता है

करञ्जवेके बीज, हल्दी, हीरा कसीस, मुलेठी, शहद, गोरोचन व हरताल इन सब चीजोंका लेप बनाकर लगानेसे खाऊआ रोग आराम होजाता है।

नीमके पत्तोंके पानीसे धोकर प्रतिदिन उसके ऊपर कत्था लगाने से भी खाऊआ रोग आराम होजाता है।

**सिध्म आदिकी चिकित्सा**—अमलतासके पत्ते कांजीमें पीस कर लेप करनेसे सिध्म व दद्रुरोग आराम होजाते हैं।

कूठ, मूलीके बीज, प्रियंगु, सुफेद सरसों, हल्दी व नागकेशर इन सब चीजोंका लेप बना कर लगानेसे बहुत दिनका पुराना सिध्म रोग भी आराम होजाता है।

जवाखार व गन्धक सरसोंके तेलके साथ या कसौंदीके बीज, मूलीके बीज व गन्धक कांजीके साथ पीस कर लेप करनेसे सिध्मरोग आराम होजाता है। यह सिध्मरोगकी अनुभवसिद्ध औषधि है।

कागजी या गलगल निम्बूके रसके साथ गन्धकका चूर्ण मिला कर लेप करनेसे या सुफेदचन्दन घिसकर लेप करनेसे भी सिध्मरोग आराम होजाता है।

मुख पर जो काले २ चकत्तोंसे दाग होजाते हैं, उनको "न्यच्छ वा व्यङ्ग" रोग नामसे कहते हैं और यदि इसी प्रकारके दाग सारे शरीर पर हों, तो उसको "नीलिका" रोग कहते हैं।

लालचन्दन, मँजीठ, कूठ, लोध्र, प्रियंगु, बड़की नई कोंपल और मसूरकी दाल इन सब चीजोंको पीसकर लेप करनेसे व्यङ्ग व नीलिका रोग आराम होजाते हैं।

बादामकी गिरी व सेमलके तेज काँटे या मसूरकी दाल दूधमें पीस कर लेप करनेसे व्यङ्ग आराम होजाता है।

जवानीके आरंभमें किसी२के मुख पर जो छोटी२ फुन्सियाँ निकल आती हैं, उनको "युवानपिड़का" कहते हैं।

लोध, धनिया व वच या गोरोचन व कालीमिर्च या सुफेद सरसों वच, लोध्र व सेंधानमक पानीके साथ पीस कर लेप करनेसे युवान पिड़का आराम होजाती हैं।

हाथीदाँतकी भस्म सरसोंके तेलमें मिलाकर लेप करनेसे गञ्जकी जगह पर बाल उत्पन्न होजाते हैं। किसी सख्त चीजसे अर्थात् उपले आदिसे गञ्ज ( खल्वाट ) की जगहको रगड़ कर उसमें रत्तीके दाने वा जड़ या गुड़हरके फूलोंकी कलीका लेप करनेसे उस जगह पर बाल उग आते हैं। सिवाय, बड़ी कटेली, रत्तीकी जड़ या फल पीस कर लेप करनेसे गंज आराम होजाता है।

गरम पानीमें हरतालका चूर्ण पीस कर बालोंकी जगह पर लगाने से बाल उड़ जाते हैं। बालोंकी जगह पर "कुसुम्भेका तेल" मलनेसे बाल उग जाते हैं।

प्रतिदिन स्नानके समय मण्डूर व गुड़हरके फूल पानीमें पीसकर शिर पर लेप करनेसे बालोंका पकना ( पलित रोग ) दूर होजाता है।

नीलोफर दूधमें पीस कर उसको कुज्जेमें बन्द करके एक महीने तक मिट्टीमें दबा कर रखना। तदनन्तर वहाँसे निकाल कर उसको बालों पर लगानेसे सुफेद बाल चिकने व काले रङ्गके होजाते हैं।

**शय्या मूत्र ( बिस्तारपर पेशाव करना ) रोगकी चिकित्सा**

पत्थरचट्टेके पत्ते २ तोला, चीनी २ माशा एकसाथ मिलाकर सायंकालके समय सेवन करनेसे यह रोग आराम होजाता है। सायंकालके समय आधा रत्ती या १ रत्ती मात्रामें अफीम सेवन करनेसे भी शय्या-मूत्ररोग आराम होजाता है।

दाद व खुजली आदि क्षुद्र रोगोंमें बहुतसी औषधियाँ लोगोंमें प्रचलित हैं, इसीसे इन रोगोंकी दो एक विशेष औषधियाँ मात्र यहाँ पर कही गई हैं।

## विष चिकित्सा।

पूर्व कालमें आयुर्वेदीय चिकित्साके प्रत्येक अङ्ग उस२ अङ्गके विषयमें विशेषज्ञ संप्रदायके आधीन हुआ करती थी। "धन्वन्तरि" संप्रदाय वाले क्षार, अग्नि, जलौका ( जौंक ) और शस्त्र प्रयोग-साध्य रोगों की चिकित्सा करते थे। "आत्रेय" संप्रदाय वाले-औषधि प्रयोगसे आराम होने वाले ज्वर, अतिसार आदि रोगोंकी चिकित्सा करते थे "अथर्व वेदके ज्ञाता" पुरोहित लोग-बलि, होम स्वस्त्ययन आदिसे, और वैद्य लोग-औषधि प्रयोगसे ग्रह पीड़ा आदि ( औत्पातिक ) रोगों की चिकित्सा करते थे। "विषवैद्य" लोग-जंगम व स्थावर विषयों की चिकित्सा करते थे परन्तु दुर्दैवके आधीन होकर क्रमशः वे समस्त चिकित्सक संप्रदाय और चिकित्सापद्धतियाँ लोपको प्राप्त होगई हैं। इनमेंसे केवल औषधि चिकित्सा मात्र इस समय वैद्योंके हस्तगत है। शस्त्र-क्षार आदि चिकित्सायें, तो बहुत समय पहिलेसे ही हमारे हाथसे निकल चुकी हैं। परन्तु साधारणतया कुछ थोड़ा बहुत शस्त्र-कार्य अब तक भी अनभिज्ञ नाइयोंके हाथमें अवशिष्ट रहा हुआ है। और मद्रासमें क्षार प्रयोग कर अर्श ( बवासीर ) व भगन्दर आदि

कुछ कठिन रोगोंकी चिकित्सा अब तक भी सफलता पूर्वककी जाती है। ग्रहचिकित्सा तो इस समय भेषजसाध्य चिकित्साके ही अन्तर्गत होगई है और विषचिकित्सा तो बिल्कुल लुप्तप्राय होगई है। इसका थोड़ा बहुत जो कुछ बाकी है भी, वह भी अशिक्षित सामान्य लोगोंके हाथमें रहनेके कारण कुछ विशेष नहीं पनपने पाता। यह सब कुछ होते हुए भी जिस प्रकार आज कल प्रचलित और २ रोगोंकी चिकित्साके विषयमें कह आया हूँ, इसी तरह यहाँ पर कुछ थोड़ा बहुत यत्नसाध्य प्रचलित विषचिकित्साके विषयमें भी उपदेश करता हूँ, सुनो—

विष दो प्रकारके होते हैं—जङ्गम व स्थावर विष। सर्प बिच्छू आदि प्राणियोंके विषको "जंगम" विष और पौधे व धातु आदिके विषको "स्थावर" विष कहते हैं।

स्थावर या जंगम विषको खा जाने पर उसी समय वमन ( कै ) कराना चाहिये। क्योंकि-विषको निकालनेके लिए वमनके समान दूसरी अच्छी चीज नहीं है।

साँपने यदि हाथ व पैरमें काट लिया हो, तो उसी समय काटी हुई जगहके ४।५ अंगुल ऊपर रस्सी या कपड़े आदिसे मजबूत कस कर बाँध देनी चाहिए। इससे विष शीघ्र ही सारे शरीरमें नहीं फैलने पाता। जहाँ पर बाँधा न जा सके वहाँ पर काटी हुई जगहको उसी समय शस्त्र आदिसे चीरा देकर खून निकाल लेना चाहिए और अग्नि आदिसे जला देना चाहिए।

सर्पके काटने पर हल्दी, दारुहल्दी,चौलाईकी जड़ व घरका धुँआ इन सबको चावलोंके धोवनके साथ पीस कर और उसको दही व घी से तर करके सेवन कराना चाहिए।

काले ईखकी जड़का नस्य लेनेसे कभी २ सर्पदष्ट रोगी होशमें आकर बच जाता है। बाँझ ककोड़ेकी जड़को बकरीके दूधकी भावना देकर और कांजीमें पीलकर सर्पदष्ट रोगीको इसका नस्य देना चाहिए

कलिहारिकी जड़ पानीमें पीस कर उसका नस्य देनेसे, अथवा

सुहागेकी खील या आँककी जड़ पानीके साथ पीसकर सेवन करनेसे सर्पविषआराम होजाता है।

घरका धुआँ, मंजीठ, हल्दी, व सेंधानमक इनका लेप करनेसे व रक्तमोक्षण करनेसे मूषकविष आराम होजाता है।

दालचीनी व सोंठ समान भाग लेकर इनको बारीक पीस कर चूर्ण बना कर रखना, इस चूर्णको गरम पानीके साथ सेवन करने से सब तरहका मूषकविष आराम होजाता है।

कायफल, असगन्ध, गोभी, हंसपदी, हल्दी दारुहल्दी व गेरूमिट्टी इनका लेप करनेसे नखविष व दन्तविष आराम होजाता है।

गरम गायके घीमें सेंधानमक मिला कर डङ्ककी जगह पर लेप करनेसे बिच्छूका विष नष्ट होजाता है।

शताबर पीस कर अथवा तुलसीके पत्तोंका रस बिच्छूके डंककी जगह पर लगानेसे विष दूर होजाता है। आँकके पत्ते गरम कर बाँध के रखनेसे भी विष नष्ट होजाता है।

बिच्छूके विषमें घी व सेंधानमकसे सेक व मालिश कराना चाहिए, गरम पानी आदिसे परिषेक कराना चाहिए, गरम २ भोजन खिलाना चाहिए और घी पिलाना हितकर होता है। भिड़के विषमें भी यही व्यवस्था करना चाहिए और धूलसे प्रतिलोम भाव ( नीचेसे ऊपरकी तरफ ) से उद्वर्त्तन करना चाहिए और कोई गाढ़ा सा आच्छादन (कपड़े आदिकी पट्टी) गरम पानीसे गरम करके उससे ढांकदेना चाहिए

बिच्छूके विषमें कबूतरकी विष्टा, गलगल निम्बू, सिरसके फूलों का रस, चोरीहली, आँकका दूध, सोंठ, करञ्जवा व शहद इन सबका लेप बना कर प्रयोग करना चाहिए।

कालीमिर्च, सोंठ, नेत्रबाला व नागकेशरको पीस कर लेप करने से मधुमक्षिका ( शहदकी मक्खी ) आदिका विष नष्ट होजाता है।

परवलकी जड़ व नीलकी जड़ पीसकर लेप करनेसे मकड़ी आदि के लारका विष नष्ट होजाता है। हल्दी, दारुहल्दी, बकायनकी छाल

मजीठ व नागकेशर इनका लेप करनेसे भालाका विष आराम होजाता है

महुआ, मुलैठी, कूठ, अनन्तमूल, नेत्रबाला, पाढल, नीम व काला अनन्तमूल इन सब चीजोंको पानीके साथ पीस कर और उसमें शहद मिला कर सेवन करनेसे लूताविष नष्ट होजाता है।

कालासिरस, कोह, शिरीष, लिहसोड़ा व वड़ आदि क्षीरी वृक्ष इनकी छालको क्वाथ, कल्क व चूर्णके रूपमें व्यवहार करनेसे कीट ( कीड़ा ) व लूतेका घाव आराम होजाता है।

इन्द्रजौ, तगर कडुवी. तुम्बी, कुटकी व घघरबेल इस योगका सेवन करनेसे या नस्य लेनेसे बिच्छू, मूषक, लूता व सर्पका विष नष्ट होजाता है। यह अमृतके समान गुणकारक है। इसके सेवन करनेसे संयोगज विषके कारण हुआ अजीर्ण आराम होजाता है।

कृकण्टक ( कनखजूरे ) के विषमें दोषोंके अनुसार ऊपर लिखी अगद ( औषधियों ) मेंसे विचार पूर्वक कोई एक प्रयोग करना चाहिए।

मेंढकके विषमें सिरसका फल थूहरके दूधमें पीस कर लेप करना चाहिए। सुफेद निशोथकी जड़ व सोंठ, मिर्च, पीपलको पीस कर घी मिलाकर इसका लेप करनेसे मत्स्य ( मछली ) का विष नष्ट होजाता है

शृगाल ( गीदड़ ) आदिके काटने पर निष्पीड़न ( निचोड़ना ) आदिसे कटी हुई जगहसे खून निकाल कर गरम २ घीसे उस जगह को जला देना चाहिए, रोगीको पुराना घी पिला देना चाहिए। आँक के दूध वाला शिरोविरेचन ( नस्य ) देना चाहिए। सुफेद पुनर्नवा ( सांठ ) व धतूरेकी जड़ पानीसे घिस कर पिलाना चाहिए ( कोई २ कहते हैं-पुनर्नवा १ भाग और धतूरेकी जड़ आधा भाग,. और कोई २ धतूरेका फल प्रयोग करनेको कहते हैं )।

थूहरके दूधमें सिरसके बीज घिस कर घावकी जगह पर लेप करनेसे कुत्तेका विष नष्ट होजाता है। पोटलीमें भेड़के बाल बाँध कर निगलनेसे, अथवा धतूरेकी जड़ वा अंकोलकी जड़ दूधके साथ पीस कर सेवन करानेसे कुत्तेका विष नष्ट होजाता है।

# अनुक्तरोग ।

प्रश्न-गुरुवर ! आपकी कृपासे बहुतसे रोगोंके विषयमें आपका मनोरम उपदेश सुन चुका हूँ। जितने प्रश्न किये हैं, उन सबका संतोष-जनक सदुत्तर पाया है । प्रसङ्गमें होने पर भी जो मुझे स्मरण न आया, आपने उस प्रसङ्ग पर उस बातको स्वयं स्मरण दिला कर उपदेश किया है । भगवन् ! अब जिज्ञासा करता हूँ-वात आदि दोषोंके विकारसे क्या सिर्फ ऊपर बताये हुए ये ही रोग होते हैं ?

उत्तर-वत्स ! वात आदि दोषोंकी विकृतिसे जितने प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं या उत्पन्न होसकते हैं, उन सबकी गिनती नहीं की जा सकती है । जिस प्रकार सत्व, रज व तम इन तीन गुणोंके विकार से इस दृश्य जगत्की असंख्य वस्तुओंकी उत्पत्ति देखनेमें आती है, उसीप्रकार वायु पित्त व कफ इन तीन दोषोंके विकारसे असंख्य रोगों की उत्पत्ति होती है । इस प्रकारकी विकृतिकी क्या कोई संख्या निर्धा-रित की जा सकती है ? वात आदि दोषोंके प्रकोपके तारतम्यसे और रस, रक्त आदि भिन्न २ वस्तुके साथ भिन्न २ संयोग विशेषसे भिन्न भिन्न प्रकारके सैकड़ों रोग उत्पन्न होते हैं ।

प्रश्न-यदि वात आदि दोषोंके विकारसे असंख्य प्रकारके रोगोंकी उत्पत्ति होती है, तब सब प्रकारके रोगोंके नाम लक्षणका निर्देश व चिकित्सा किस प्रकार की जावेगी ?

उत्तर-सब रोगोंके नाम व लक्षणका निर्देश किसी तरह भी नहीं किया जासकता । क्योंकि-संसार भरकी समस्त वस्तुओंका नाम-लक्षण निर्देश करना जिस प्रकार असम्भव है, वात आदि दोषोंसे उत्पन्न सब प्रकारके रोगोंका नाम-लक्षण निर्देश करना भी उसी प्रकार असम्भव है, और नाम लक्षण निर्देश करनेकी आवश्यकता भी भी क्या है ? क्योंकि-अवतरणिका प्रकरणमें वात आदि दोषोंके प्रकोप के कारण व लक्षण जो बता आये हैं । तुम उन सब कारण व लक्षणों

को स्मरण रख कर अनुक्त रोगोंका दोष विवेचन व स्वरूपतत्व निर्णय कर यथावत् औषधिपथ्य आदि प्रयोग कर सकते हो। बुद्धिमान् वैद्य एक रोगकी औषधिको उसके समान प्रकृतिके अन्यान्य उक्तानुक्त रोगोंमें प्रयोग किया करते हैं।

## दोषवैषम्य ( दोषोंकी विषमता )।

प्रश्न-गुरुवर ! अब एक और बात पूछना चाहता हूँ-आज कल क्षेम कुशलकी बात पूछने पर बहुतसे कहते हैं-भाई तबियत खराब रहती है, भूख ठीक नहीं लगती, दस्त साफ नहीं होता, शरीर बहुत दुबला होगया है और कुछ भी अच्छा नहीं लगता-इस प्रकार बहुतसी अस्वास्थ्यकी बातें गिनाने पर भी स्नान-भोजन आदि और सब रोज के काम काज नियमित करते रहते हैं। गुरुवर ! बताइये, ये सब किस रोगके लक्षण हैं ? और उसका कारण क्या है ?

उत्तर-आहार विहार आदिके व्यतिक्रमसे, शारीरिक व मानसिक परिश्रम अधिक करना, विविध प्रकारकी चिन्ता व ऋतु-विपर्यय ( मौसमके बिगड़ने ) आदि कारणोंसे वात आदि दोषोंकी यत्किंचित्-परिमाणविषमता होनेसे ही इस प्रकारके लक्षण हुआ करते हैं। वात आदि दोषोंके इस प्रकार किंचत् परिमाणमें विषम होजाने पर वे क्रमशः किस प्रकार रोग रूपमें परिणत होजाते हैं, यह बात अवतरणिका प्रकरणमें विशेष रूपसे बताई जा चुकी है। यद्यपि ये लक्षण प्रबल न होने के कारण किसी एक विशेष प्रकारके रोगके प्रकाशक नहीं होते, परन्तु तो भी इनको मृदु रोग लक्षण जानना चाहिए। क्योंकि-आयुर्वेद शास्त्रमें दोषवैषम्यको रोग और दोषसाम्यको आरोग्य कह कर वर्णन किया गया है। यह बात भी पहिले बताई जाचुकी है।

प्रश्न-दोषवैषम्यकी चिकित्सा किस प्रकार की जाती है ?

उत्तर-जिन द्रव्योंसे वायु, पित्त व कफका प्रशम होता है, वे सब अवतरणिका प्रकरणमें बता आये हैं। बुद्धिमान् वैद्यलोग उन सब द्रव्यों मेंसे उपयोगी द्रव्योंका निर्णय कर उनको रोगीकी प्रकृति और देश-

कालके अनुसार क्वाथ, कल्क व चूर्ण आदिके रूपमें प्रयोग करते हैं और उन सब द्रव्योंके साथ दूध-घी-तेल व मोदक आदि पका कर भी प्रयोग करते हैं।

ऋतुहरीतकी-यह दोषवैषम्यकी सबसे उत्तम औषधि है। इसको नियम पूर्वक सेवन करनेसे वायु-पित्त व कफकी समता और वात आदि दोषोंसे उत्पन्न रोगोंका नाश, बल वर्ण व आयुकी वृद्धि और शरीरका रोगीपना दूर होजाता है। सेवन करनेकी विधि-वर्षा ऋतुमें सेंधानमकके साथ, शरद् ऋतुमें बूराके साथ, हेमन्त ऋतुमें सोंठ के साथ, शीतकालमें पीपलके चूर्णके साथ, वसन्त ऋतुमें शहदके साथ और ग्रीष्म ऋतुमें गुड़के साथ हरड़के चूर्णको उचित मात्रामें प्रतिदिन सेवन कराना चाहिए। इसीका नाम ऋतुहरीतकी है।

दूध, घी, तिलका तेल वा ईषदुष्ण जलके साथ असगन्धका कल्क सेवन करनेसे थोड़े दिनमें ही दुबला शरीर हृष्ट पुष्ट होजाता है।

आमला, काले तिल व भंगरा ( भृङ्गराज ) समान भाग लेकर इनका चूर्ण बना कर सेवन करनेसे शरीर रोगरहित होकर इन्द्रिय सबल और बाल काले होजाते हैं।

विधायरेकी जड़के चूर्णको शतावरके रसकी ७ दिन भावना दे कर एक तोला मात्रामें इस चूर्णको घीके साथ १ मास तक सेवन करनेसे मनुष्यके बाल पकने और बालोंका गिरना दूर होकर बुद्धि, मेधा व स्मृतिशक्ति बढ़ जाती है।

प्रातःकाल सूर्योदयसे पहिले बासी पानीका नस्य लेनेसे दृष्टि शक्ति बढ़ती है। इससे पीनस, स्वरभंग और बहुत दिनकी पुरानी खाँसी आराम होजाती है।

सूर्य निकलनेके पहिले इच्छाके अनुसार परिमाणमें बासी पीनेसे वायु व पित्तका प्रशम होकर मनुष्य दीर्घायु होता है।

धारोष्ण दूध अथवा चौगुने पानीके साथ दूध पका कर प्रतिदिन सेवन करनेसे वात आदि दोषोंका प्रशम होता है। इसके सेवन करने

खाँसी, श्वास, कमरका दर्द बवासीर व शोथ आदि विविध प्रकारके रोग शान्त होते हैं।

मकरध्वज व बृहत् चन्द्रोदय मकरध्वज-ये दोष वैषम्य की सबसे उत्तम औषधियाँ हैं। मात्रा १-२ रत्ती। अनुपान-शहद पान का रस, पटोलपत्रका रस, बिहिदानेका रस और त्रिफलाका जल आदि

## वाजीकरण ( पुष्टाई )।

प्रसंगवश अब कुछ अनुभव सिद्ध बाजीकरण औषधियाँ बताते हैं, सुनो-( जिससे वीर्य बढ़े और स्त्रीसम्भोग करनेकी अधिक सामर्थ्य आजावे, उसको "वाजीकरण" कहते हैं, वाजी शब्दका अर्थ घोड़ा होता है, नीचे लिखी औषधियोंसे घोड़ेके समान स्त्रीसम्भोग की सामर्थ्य होती है, इसी लिए इन सबका नाम वाजीकरण है )।

थोड़ासा पीपलका चूर्ण व सेंधानमक मिला कर बकरेके अण्डकोष घीमें भून कर सेवन करनेसे स्त्रीसंभोगकी सामर्थ्य बढ़ती है।

बकरेके अण्डकोषके साथ दूध पका कर उस दूधमें धोये हुए काले तिल भिगो कर सेवन करनसे रतिशक्ति बढ़ती है।

उड़दकी दालको घीमें भूनकर उसको दूधमें पकाकर बूरा मिलाके सेवन करनेसे भी रतिशक्ति बढ़ती है।

शतावर २ तोला, दूध १ पाव जल १ सेर मिला कर पकाना जब पकते २ दूध बाकी रह जाय ( १ पाव रह जाय ) फिर उसको ठण्डा होने पर सेवन करनेसे भी रतिशक्ति बढ़ती है।

पुराने सेमलके पेड़की जड़का रस समान भाग बूरा मिलाकर सेवन करनेसे कुछ दिनमें ही अत्यधिक वीर्यकी वृद्धि होती है।

नये सेमलकी जड़ व मूसली समान भाग चूर्ण बना कर घी व दूधके साथ सेवन करनेसे रमणशक्ति बढ़ती है।

बिदारीकन्दके चूर्णको विदारीकन्दके रसकी ७ भावना देकर घी व शहदके साथ सेवन करनेसे स्त्रीसम्भोगकी सामर्थ्य बढ़ती है।

आमलेके चूर्णको आमलेके रसका ७ भावनायें देकर घी व शहद के साथ सेवन करके उसके ऊपरसे दूध सेवन करते रहनेसे बूढ़ा भी जवानके समान होजाता है।

कौंचके बीज व तालमखानेके बीज समान भाग लेकर इनका चूर्ण बना कर इस चूर्णको घी बूरा वा शहदके साथ मिला कर सेवन करना और उसके ऊपरसे धारोष्ण दूध सेवन करते रहनेसे अधिक रमण करनेसे भी शरीर क्षय नहीं होता।

ताजा मांस व ताजी मछली विशेष करके रुही मछलीको घीमें भून कर सेवन करनेसे स्त्रीसम्भोग करने पर भी वीर्यकी कमी नहीं होने पाती।

हंस, मुर्गी वा मछलीके अण्डोंको पानीमें पका कर और फिर उन को घीमें भून कर सेवन करते रहनेसे भी वीर्यकी वृद्धि होती है।

**रति वल्लभ मोदक**—यह सबसे उत्तम वाजीकरण औषधि है। मात्रा-३ माशासे १ तोला तक। अनुपान-दूध व जल।

**बृहच्चन्द्रोदय मकरध्वज व चन्द्रोदय रस**—यह भी सर्वोत्तम वाजीकरण औषधि है। अनुपान-मक्खन व बूरा अथवा शुक्र-वर्द्धक किसी और द्रव्यके साथ प्रयोग करना चाहिए।

## ध्वजभङ्ग ( लिङ्गका न उठना, सुस्ती )।

रतिशक्तिकी कमीके कारण ध्वजभङ्ग रोग होता है। इस लिए इस प्रसंगमें ध्वजभंग रोगकी चिकित्साका उपदेश करते हैं, सुनो—परन्तु यह भी कह देना हूँ, कि—यह ध्वजभंग अतिकठिनतासे आराम होने वाला रोग होता है, कोई भाग्यशाली ही इससे सहजमें छुटकारा पा सकता है। इस रोगके आरम्भ होते ही योग्य चिकित्सकसे शीघ्र ही चिकित्सा करा लेनेसे यह शीघ्र आराम होसकता है, परन्तु रोगके पुराना पड़ जाने पर इसके आरोग्य होनेकी आशा कम होती है।

वाजीकरणके लिए जो औषधियाँ कही गई हैं, ध्वजभंग रोगमें भी वे सब औषधियाँ यथावश्यक प्रयोग करना चाहिए।

इन्द्रायणकी जड़को बकरीके मूत्रकी ७ दिन तक भावना देकर उसको लिङ्गके ऊपर लेप करनेसे लिङ्गका बांकपन दूर होकर ध्वजभङ्ग रोग आराम होजाता है।

धोये हुए काले तिल व गोखरूके बीजोंका चूर्ण समानभाग लेकर बकरीके दूधमें पकाकर इसके ठंडा होजाने पर उसमें थोड़ासा शहद मिलाकर सेवन करना चाहिये।

तृप्तिकर और बलवर्द्धक आहार, कानोंको प्रिय लगने वाली मनोरम कथायें सुनना, मनोहर संगीत, नवयौवना स्त्रीके साथ आलिङ्गनादि सहवास, सुवासित मद्यपीना, मनोरम फुलवाड़ियों और केलिकाननोंमें घूमना तथा मनको हर समय प्रफुल्ल रखने वाले विषय वाजीकरण व ध्वजभङ्ग रोगमें व्यवहार करना चाहिए।

## अरिष्ट लक्षण ( मृत्युसूचक लक्षण )

हम ऊपर बहुतसे रोगोंका निदान, लक्षण, चिकित्सा और चिकित्साके उपयोगी विशेष ज्ञातव्य विषयोंका क्रमशः वर्णन कर आये हैं। तुम बुद्धिमान् हो, इसलिए हमें विश्वास है, कि-तुम हमारे ऊपरके उपदेशके अनुसार अपनी बुद्धि शक्तिके द्वारा औषधि आदिका यथोचित प्रयोग कर साधारण तथा विशेष प्रकारके सब रोगोंकी चिकित्सा करनेमें समर्थ होसकोगे। अब इससे आगे रोगके अरिष्ट लक्षणोंका उपदेश कर एक तरहसे यह प्रकरण समाप्त हो जावेगा। क्योंकि-जब आयुर्वेदका समस्त फलाफल आयुर्वेदके ज्ञाता वैद्य पर निर्भर है, तब अरिष्ट ज्ञानके विषयमें भी वैद्यको हर समय लब्धप्रतिष्ठ ( विचक्षण ) होना आवश्यक होता है। जो वैद्य अरिष्ट लक्षणोंको नहीं जानते, उनको बहुत समय अपयशका भागी होना पड़ता है। विचक्षण वैद्य रोगीमें अरिष्ट लक्षण प्रकट होते देखकर उस रोगीकी या तो चिकित्सा करना छोड़ देते हैं या रोगीके परिवार वर्गके अनुरोधसे चिकित्सा करते हैं। इससे उनको फिर कोई अपयश नहीं दे सकता।

अरिष्टलक्षण—रूप, इन्द्रिय, स्वर, कान्ति, प्रतिबिम्ब (छाया)

शारीरिक व मानसिक क्रिया और इसी तरह के दूसरे प्राकृतिक बातों के विकृत होनेको ही साधारणतः अरिष्टलक्षण जानना चाहिए।

जिस रोगीके केश व लोम तेल आदि न लगानेपर भी तेल आदि मलनेके समान चिकने दिखाई दें, जिसके नेत्र अत्यन्त अञ्चल या स्तब्ध हों, अन्दर घुसे हुए या बाहर निकले हुए, सिकुड़े हुए या फैले हुए अथवा कुटिल या आँसु बह रहा हो, जिसके भ्रू ( भौं ) सिकुड़े वा फैले हुए हों, जिसके पक्ष्म ( पलक ) विशृङ्खल हों, जिसकी नाक बहुत फैली हुई या सिकुड़ी हुई हो स्फीत या म्लान हो, जिसका नीचेका ओष्ठ नीचेकी तरफ और ऊपरका ओष्ठ ऊपरकी तरफको लमका या तना हुआ हो अथवा जिसके दोनों ओष्ठ पके हुए जामुनके फलके समान काले रङ्गके होगये हों, जिसकी जिह्वा टेढ़ी, अति-चञ्चल, श्वेत वा कृष्णवर्णकी, सूखी हुई, लिपी हुई, किसी प्रकारका स्वाद न मालूम होसके ऐसी और काँटोंसे जैसे भरी हुई हो, जिसकी गर्दन मस्तक धारण करने, पीठ शरीर बोझा थामे रखनेमें और जबाड़े मुखके भीतर दिये हुए अन्नके ग्रासको धारण करनेमें असमर्थ हों, जिसके दाँतोंमें शर्करा लगी हुई हो और काले या ताम्रवर्णके हों, पुष्पित ( सुफेदचिन्ह वाले ), क्लेदयुक्त या सहसा गिर जाँय, जिसके सारे अंग बिना किसी कारणके भारी या हलके हो जाँय, विष खाये बिना जिसके शरीरके छिद्रों ( नाक, मुख आदि ) से रक्त गिरे, जिसका लिङ्ग ऊर्ध्वक्षिप्त ( ऊपरकी तरफको उठा हुआ ) और दोनों अण्डकोष नीचेकी तरफको लमके हुए हों अथवा जिसका लिङ्ग नीचेकी तरफको और अण्डकोष ऊपरकी तरफको उठे हुए हों—ऐसे लक्षण वाले रोगीको कालप्रेरित जानना चाहिए अर्थात् निश्चय कर लेना चाहिए, कि—इस रोगी की मृत्यु उपस्थित है।

जिसकी जिह्वा श्यामवर्ण ( काले रङ्गकी ) मुख दुर्गन्ध वाई आँख अन्दरको घुसी हुई हो, ऐसे रोगीको त्याग करना चाहिए। स्नान कर चन्दन आदि लेप न किये हुए जिस पुरुषका सारा शरीर गीला होने

पर भी यदि पहिले उसकी छाती बिल्कुल शुष्क होजाय तो वह आधे मास तक भी जीवित न रहेगा जानना चाहिये। बिना किसी कारण के जिसके शरीरमें प्राकृत व वैकृतवर्ण, शरीरकी स्थूलता, व कृशता, ग्लानि व हर्ष, रौक्ष्य व स्निग्धता, युगपद् उपस्थित हो, उसकी मृत्यु उपस्थित जानना। खींचने पर भी जिसकी अंगुली घूमे नहीं, छींक व खाँसी आदिसे जिसके अस्वाभाविक ध्वनि हो, जिसका निःश्वास अतिदीर्घ या अति ह्रस्व हो, केवल सुगन्ध या केवल दुर्गन्ध. जिसके स्नात या अस्नात शरीरमें अथवा मैले कपड़ोंमें या घाव आदिमें अस्वाभाविक गन्ध आती हो, उसका जीवित काल एक वर्ष जानना।

शरीरके अति सुरसताके कारण केश कीट (जूँ लिक्षा) वा मक्षिका आदि जिसके शरीर पर चलें अथवा शरीरके अतिविरसताके कारण जिसके शरीरको त्याग करदें ( जूँ आदि ) उसका जीवनकाल एक वर्ष जानना। जिसका शरीर बाहरसे अतिगरम किन्तु अन्दर बिल्कुल ठंडा, अथवा जिसके बाहरसे अति शीतल और शरीरके भीतर अति दाह हो, या एकाएक अधिक पसीना आना या बिल्कुल ही पसीना न आता हो, उसको गतासु जानना चाहिये। जिसकी छाती गरम हो, पेट अति शीतल, दस्त पतला आता हो और अति प्रबल पिपासा हो, उसको प्रेतवत् समझना चाहिये।

जो पुरुष आकाशको घनीभूत और घटपट आदि घन वस्तुको आकाशके समान सूक्ष्म देखे, जो व्यक्ति वायु आदि अमूर्त वस्तुओं को मूर्तिमान् और मूर्तिमान् वस्तुओंको प्रभाहीन देखे, सुफेदको काला आकाशका फूल आदि असत् वस्तुको सत् और सत् वस्तुको असत् और आँखकी कोई बीमारी न होने पर भी चन्द्रमाको बहुरूप विशिष्ट व अकलंक देखे, जो व्यक्ति जागते हुएमें भी राक्षस, गन्धर्व, प्रेत वा इसी तरहके अन्य प्राणी या किसी तरहका विकृत रूप देखे, उसकी मृत्यु निकट समझना चाहिये।

जो पुरुष सप्तर्षि मण्डलके समीप स्थित अरुन्धती उत्तर केन्द्रमें स्थित ध्रुव नक्षत्र, और आकाशगङ्गाको न देख सके, उसकी मृत्यु उसी वर्षमें हो जावेगी।

जो व्यक्ति दोनों कानोंमें अङ्गुली रखने पर धक २ शब्द अनुभव न करे, उसकी मृत्यु निकट समझना चाहिये।

जो व्यक्ति गन्ध, रस, स्पर्श, को विपरीत अनुभव करे अर्थात् सुगन्धको दुर्गन्ध, दुर्गन्धको सुगन्ध, मधुर रसको अम्लरस, और अम्लरसको मधुर, इस प्रकार प्रत्येक रसको अनुभव करे, अथवा गन्ध, रस, आदि कुछ भी अनुभव न करे, उसकी मृत्यु निकट समझनी चाहिये।

जिस रोगीका स्वरहीन, अवसन्न, अव्यक्त, व गद्गद् जो रोगी बोलनेकी इच्छा होते हुए भी बिना कारण बात कह न सके, उस रोगी के आरोग्य होनेकी आशा कम समझनी चाहिये।

जिस रोगीका स्वर दुर्बल, बलवर्णकी हानि और बिना किसी कारणके रोगकी वृद्धि होजाय, उसकी मृत्यु निकट समझनी चाहिये

मेरी मौत निकट है और मैं बचूँगा नहीं, इस प्रकारके कातर स्वर जो रोगी कहे, अथवा इस प्रकार अपनी मृत्युकी बात अपने पास आने जाने वालोंसे जो रोगी सुने, वैद्यको ऐसा रोगी छोड़ देना चाहिये।

शरीरका गठन, परिमाण, वर्ण व प्रभा आदिसे जिसकी मूर्ति अन्यथा भूत होजाय, वह यदि स्वस्थ भी हो तो भी उसको मृत समझना चाहिये। दृष्टान्त-जैसे समान अङ्ग विषम, विषम अङ्ग समान, दीर्घाकृति ह्रस्व, ह्रस्वाकृति दीर्घ, गोरा रङ्ग काला, काला रङ्ग गोरा उज्ज्वल प्रभा मलिन, और मलिन प्रभा उज्वल, आदि विपरीतपना होने पर रोगीकी तो बात ही जुदी रही पर स्वस्थ पुरुषको भी मृतवत् समझना चाहिये।

जो व्यक्ति शिथिलस्कन्ध होकर पदद्वयघर्षण करते २ जमीन पर घमे, जो निरन्तर बहुत परिमाणमें हितजनक अन्न भोजन कर भी

बलहीन हो, जो अल्पभोजी होकर भी बहुतसा मलमूत्र अथवा बहुभोजी होकर भी अल्प मलमूत्र त्याग करे और अल्पाशी होने पर भी कफरोगसे पीड़ित हो, लम्बे साँस छोड़े, व परिलुण्ठन करे ( लोटे ), या जो व्यक्ति उच्छ्वासके अनन्तर धीमा निश्वास छोड़ कर दुःखित हो, अथवा ह्रस्व निश्वास प्रश्वास छोड़े, जिसकी नाड़ी विसमभावसे अतिशय स्पन्दन करे जो प्रपाणिक ( हाथके पहिले भागमें स्थित अवयव विशेष, खवों ) को टेढ़ा करके कष्टसे मस्तक घुमावे, जिसके मस्तकसे पसीना निकले, और सन्धि बन्धन शिथिल होजायँ बलवान् ही हो अथवा दुर्बल हो, जिसको पकड़ कर बैठानेसे बेहोशी हो जाय, जो दोनों पैरोंको विकृत करके चित् होकर सोवे, जो बिस्तर आसन, या भित्ति आदि स्थानोंमें असत् वस्तु ( अनहोनी चीजें ) को ढूँढे ( बिछौने आदिमें टटोले ), जो हँसीकी बात न होने पर भी अकारण हँसे, मूर्छित होजाय दाँतोंके मसूड़े व ऊपरके होठको चाटे विविध शब्द वाला फूत्कार करे, काला, पीला, या लालवर्णका रूप जिसके पश्चादूगामी ( परछाइ में ) हों, जो व्यक्ति चिकित्सक, औषधि, अन्न, पान, गुरु, व मित्रसे द्वेष करे, ऐसे लक्षण वाले रोगियोंको यम के वशवर्ती जानना।

जिसकी गर्दन, ललाट, व हृदय घमक्ति ( पसीनेसे तर ) और शीतल, पर दूसरे अङ्ग उष्ण हों उसकी रक्षा करने वाला केवल भगवान्को जानना, अर्थात् भगवान्के अतिरिक्त उसको वैद्य आदि और कोइ भी आराम नहीं कर सकता।

जिसकी प्रकृति एकाएक बदल जाय, अथवा जिसकी बुद्धि स्वभाव स्मृति, दानशीलता, व बल बिना कारणसे हीन होजाय, उसकी आयु छः मास समझना चाहिये।

केशोत्पाटन ( बाल खींचने ) का दर्द जो अनुभव न करे और गले की किसी बीमारीके बगैर भोजन की हुई चीज जिसके गलेके नीचे न उतरे छः दिनमें उसकी मृत्यु जानना चाहिये। जिसको निरन्तर

तन्द्रा (ऊँघ) आती हो, पर एक बार भी सोये नहीं, जिसके नेत्र चञ्चल हों, उसकी भी मृत्यु निकट जानना। धन, जन, बान्धव, आदि जो सब विषय पहिले आनन्द उत्पन्न करते थे, वे प्रीतिजनक विषय जिसको अच्छे न लगें, उसकी मृत्यु उपस्थित जानना।

जिसके ज्वर आदि रोग, बिना किसी कारणके सर्वलक्षण युक्त हो जायँ, अथवा सर्वलक्षण युक्त रोग, बिना कारण एकदम शान्त हो जायँ, उसकी शीघ्र ही मृत्यु होजाती है।

जिस दुर्बल पुरुषका रोग सहसा निवृत्त हो जाय, आत्रेय मुनि उसके जीवनको संशयापन्न कहते हैं।

हमने तुम्हें साधारण रोगोंके अरिष्ट लक्षण संक्षेपसे कह दिये हैं अब ज्वर आदि विशेष २ रोगोंके विशेष २ अरिष्ट लक्षणोंको कहता हूँ, सुनो—

**ज्वररोगका अरिष्ट लक्षण**—जो ज्वर अधिक बलवान् हो और जिसमें दर्शन श्रवण आदि इन्द्रियोंकी शक्ति शीघ्र ही नष्ट होजाय, ऐसे ज्वरसे रोगीका रक्षा पाना मुश्किल समझना चाहिये। जिस ज्वर में अपने आप बालोंमें सीमन्तकट जाय उस ज्वरसे भी रोगी रक्षा नहीं पा सकता। जिस ज्वरमें रोगी एक दम शय्याशायी (चारपाईमें लेट जाय) विह्वल व मूर्छित हो अथवा बाहरसे शीत लगे और अन्दरसे दाह हो, वह रोगी भी नहीं बचता। जिस ज्वरमें शरीर रोमाञ्चित, चक्षु रक्तवर्ण, हृदयमें शूल चुभोनेके समान दर्द हो, श्वास प्रश्वास केवल मुखसे ही लेवे, इस ज्वरमें रोगीकी मृत्यु निकट ही समझना। जिस ज्वरमें रोगी हिक्का श्वास व तृष्णार्त हो, मूर्च्छायुक्त हो, चञ्चल-नेत्र व अतिक्षीण हो उसको यमालयमें जाना होगा। जिस ज्वरमें रोगी मृतव्यक्तियोंके साथ बातचीत करें, बिछौनेमें जैसे किसी खोई हुई चीजको खोजे, इधर उधर झुक २ के उठाना चाहे, उसको मरा हुआ ही समझना चाहिये।

**अतिसार आदिका अरिष्ट लक्षण**—जिस अतिसार रोगी

का मल पक्के जामुनके समान काला और चिकना हो, या यकृत् खण्ड ( जिगरके टुकड़े ) के समान कृष्ण-लोहित-हो, अथवा कितने ही रङ्ग का व रङ्ग बिरङ्ग हो, अथवा घी तैल चर्वी, मज्जा, (गुद्दी) मांस, दूध, दही, वा मांस धोये जलके समान हो, अथवा शव दुर्गन्धि वा सुगन्धि हो ऐसे रोगीको त्याग देना चाहिए। तृष्णा, दाह, अन्धकार देखना, श्वास हिक्का, पार्श्वशूल, ( पसलियोंमें दर्द ) हड्डियोंमें दर्द इन्द्रियमोह, मनोमोह, चित्तकी अस्थिरता, गुदाके भीतर वलिका पक जाना व प्रलाप, ये सब उपद्रव उपस्थित होने पर, ऐसे रोगीकी भी चिकित्सा न करे। जो अतिसार रोगी गुदाको सिकोड़नेमें असमर्थ हो, बल मांसहीन, अत्यन्त उदराध्मात ( पेटका अफारा ) युक्त हो व शोथ आदि उपद्रवोंसे पीड़ित हो, उसको त्याग कर देना चाहिए। ( ग्रहणी और प्रवाहिका रोगके भी ये ही असाध्य लक्षण हैं )।

**अर्श (ववासीर) रोगके अरिष्ट लक्षण**—जिस अर्श रोगीके हाथ, पैर, मुख, नाभि, गुदा, व दोनों अण्डकोषोंमें शोथ हो और हृदय व पसलियोंमें वेदना हो, ऐसा रोगी त्याग देना चाहिये। ( ये सब लक्षण एक साथ होने पर असाध्य जानना ) जिसके हृदय व पसलियोंमें दर्द हो, मूर्च्छा, वमन, सारे शरीरमें दर्द, ज्वर तृष्णा, व गुदा पक जाय और जिस रोगीको तृष्णा, अरुचि शूल, अत्यन्त रक्तस्राव शोथ व अतिसार उपस्थित हो जाय उस रोगीको भी छोड़ देना चाहिये।

**विसूचिका वा अलसक रोगके अरिष्ट लक्षण**—इन दोनों रोगोंमें यदि दाँत, ओष्ठ, व नाखून, काले हो जाँय, संज्ञा लोप हो जाय, अत्यन्त वमन, दोनों नेत्र कोटरगत, ( भीतर घुस जाँय ) स्वर अति क्षीण, और सब सन्धियाँ शिथिल हो जाँय, इन लक्षणोंके होने पर रोगीकी मृत्यु अनिवार्य समझना। नींद न आना, चित्तकी अस्थिरता, कम्प मुखका रुक जाना, व संज्ञाहीन होजाय, विसूचिका रोगके ये पाँच भयङ्कर उपद्रव हैं।

**पाण्डु व कामलारोगके अरिष्ट लक्षण**—पाण्डु रोगमें यदि

त्रिदोषके ही लक्षण उपस्थित होजाँय और उसमें यदि ज्वर अरुचि वमन वमन वेग ( मिचलाहट ) हो, तृष्णा वा इन्द्रिय शक्ति नाश ये सब उपद्रव प्रकट हों, तो असाध्य जानना चाहिये। पाण्डु रोगीके यदि शोथ हुआ हो और सब वस्तुओंको पाण्डुवर्णका देखे तो इन लक्षणोंसे भी पाण्डु रोग असाध्य जानना। पाण्डु रोगी यदि खड़िया मिट्टी मलनेके समान अति श्वेताङ्ग होजाय, और वमन मूर्च्छा, व प्यास उपस्थित होजाय, तो उसकी मृत्यु निश्चित जानना। अथवा जिसके दाँत, नख, व नेत्र पाण्डुवर्णके हों और जो बाहरकी सब चीजोंको पाण्डुवर्णकी देखे, उसकी भी मृत्यु सम्मुख समझना चाहिए।

**रक्तपित्त रोगका अरिष्ट लक्षण**—इस रोगमें रक्त यदि मांस धोनेके जलके समान हो, वा अति सड़े दुर्गन्ध वाला या कीचड़ मिले जलके समान, या चर्वी, पीप वा यकृत्-खण्डके समान लाल-मापन या पके हुए जामुनके समान-स्निग्ध, व काले रङ्गका हो, अथवा यदि श्वास, कास, ज्वर वमन, पाण्डु, दाह, मूर्च्छा, निरन्तर अस्थिरता, वक्ष ( छाती ) में अत्यन्त दर्द, प्यास, व पतला दस्त उतरना, आदि उपद्रव उपस्थित हों, तो असाध्य जानना चाहिये। रक्त पित्त-रोगी यदि समस्त वस्तुओंको लाल रङ्गकी देखे, तो उसकी चिकित्सा करना निष्फल है।

**यक्ष्म रोगका अरिष्ट लक्षण**—रोगी यदि बलमांस हीन हो, तो उसका त्याग करना चाहिये। यक्ष्मा रोग ही स्वयं साक्षात् काल स्वरूप है।

**कास रोगका अरिष्ट लक्षण**—क्षयज व क्षतज-कास रोग असाध्य जानना। रोगीका बल मांस क्षीण होना ही इन दोनों तरहके कास रोगका असाध्य लक्षण होता है।

**हिक्का व श्वास रोगका असाध्य लक्षण**—हिचकी उठनेके समय जिसका सारा शरीर विस्तृत व आकुञ्चित हो और दृष्टि ऊपर की तरफ हो उसको त्याग कर देना चाहिये। अथवा जो रोगी क्षीण,

अन्नद्वेष, व अधिक हिचकियाँ आती हों उसको असाध्य जानना। जो हिचकी नाभिस्थानसे अति गम्भीर स्वरसे उठे और तृष्णा ज्वर आदि उपद्रव लिये हो, और जिस हिचकीके निकलनेके समय सारा शरीर काँपे और सारे मर्मस्थानोंमें छिन्न होनेके समान दर्द हो उसको असाध्य जानना।

महाश्वास, ऊर्ध्वश्वास, व छिन्नश्वास, प्रायः प्राणनाशक होते हैं। इनमें दुर्बलता, अरुचि व ज्वर आदि जो उपद्रव होजाते हैं, ये ही अरिष्ट ( असाध्य ) लक्षण हैं।

**वात व्याधिका अरिष्ट लक्षण**—दाह अत्यन्त यन्त्रणा, मल मूत्रका रुकना, मूर्छा, अरुचि, अग्निमान्द्य, शोथ, कम्प, व उदराध्मात, ( पेटका फूलना ) इन सब उपद्रवोंके उपस्थित होने पर वात रोग ग्रस्त रोगीको असाध्य जानना चाहिये। ×

**गुल्म रोगका अरिष्ट लक्षण**—गुल्म रोगीका हृदय, नाभि, हाथ, पैरोंमें शोथ होजाय और ज्वर श्वास, वमन, व अतिसार, अथवा श्वास, शूल, व प्यास, अरुचि उपस्थित होजाने पर व अकस्मात् गुल्म ( गोले ) के दब-जाने व दुर्बलता होने पर रोगीकी मृत्यु निश्चित जानना।

**उदर रोगके अरिष्ट लक्षण**—उदर रोग मात्र ही विपज्जनक होते हैं, पर उसमें यदि आँखोंमें सोजा, लिङ्ग टेढ़ा, त्वचा पतली, क्लेद-युक्त, और बल, अग्नि, रक्त, व मांस क्षीण होजाय, तो रोग असाध्य जानना। और जिस रोगीके पसलियोंमें टूटनेके समान दर्द, अन्नसे द्वेष, व अतीसार हो अथवा विरेचन करानेसे भी कोष्ट ( पेट ) भरा ही रहे, ऐसे रोगीको त्याग देना चाहिये।

---

× वातरोगी, अपस्मार, ( मृगी ) रोगी, कुष्ठी, रक्तपित्ती, उदररोगी, क्षयरोगी, व प्रमेहरोगी, ये रोगी यदि क्षीण-( दुर्बल ) हो जायँ तो रोग का बल अल्प होने पर भी रोगीको त्याग कर देना चाहिये, अर्थात् इन सब रोगोंमें क्षीणता ही प्रधान अरिष्ट लक्षण जानना चाहिये।

**शोथ रोगका अरिष्ट लक्षण**—जिस शोथ रोगमें ज्वर, श्वास पिपासा, वमन, अन्नमें अरुचि, व दुर्बलता, ये सब उपद्रव उपस्थित हों, उसको त्याग देना चाहिये। कुक्षी, उदर, गला, व मर्मस्थानमें उत्पन्न शोथ रोगीकी भी चिकित्सा करना निष्फल है। बालक वृद्ध व दुर्बल, व्यक्तिका शोथ भी विपज्जनक होता है "पुरुषके शोथ" यदि पाँवसे आरम्भ होकर क्रमशः ऊपरकी तरफ शरीरमें फैले और उसमें ज्वर, श्वास आदि उपद्रव आकर शामिल होजायँ तो वह शोथ पुरुष-घातक और "स्त्रियों" के शोथ यदि मुखसे आरम्भ होकर क्रमशः पैरों तक होजाय और ज्वर श्वास आदि उपद्रव भी हों तो वह शोथ स्त्रीघातक, और गुह्यजात-( वस्ति देशमें उत्पन्न ) शोथ ऊपर लिखे उपद्रव संयुक्त-होने पर स्त्री पुरुष दोनोंका घातक होता है।

**विद्रधिरोगके अरिष्ट लक्षण**—पेट फूलना, पेशाबका रुकना वमन, हिचकी, पिपासा, तीव्रवेदना, व श्वास, इन सब उपद्रवों वाली विद्रधिको प्राण-नाशक जानना।

**व्रण ( घाव ) के अरिष्ट लक्षण**—जिन घावोंसे चन्दन खशकी जड़, वा मदिराकी तरह अथवा शवदुर्गन्धि व पद्म (कमल) कीसी गन्ध हो, जिनकी सूरत काईके समान व मुर्गेकी चोटीके समान चोंचदार, बाहरसे शीतल हो, उनको प्राणनाशक जानना।

**भगन्दर रोगका अरिष्ट लक्षण**—जिस भगन्दरके घावसे मल, मूत्र, वायु, और क्रिमियाँ निकलें उसको छोड़ देना चाहिये।

साधारण व विशेष प्रधान २ अरिष्ट लक्षणोंका उल्लेख कर दिया है, इस विषयमें और अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं। परन्तु इतना और कहकर इस प्रकरणका उपसंहार करते हैं, कि—अति अरुचि, अति अग्निमान्द्य, भोजन करनेकी बिलकुल क्षमता न रहना शरीरमें अति दुर्बलता, व कृशता, और अतिअरति, ( अनवस्थित चित्त ) इन सब लक्षणोंको उक्तानुक्त सर्वसाधारण रोगोंका ही विशेष अरिष्ट लक्षण जानना चाहिये।

# पथ्यापथ्य प्रकरण।

रोगकी शान्तिके लिये औषधि जिस प्रकार आवश्यकीय है पथ्य भी उसी प्रकार उपयोगी है, बल्कि औषधिसे भी अधिक आवश्यकीय व उपयोगी देखा जाता है। आयुर्वेद शास्त्रोंमें भी कहा हुआ है कि-विना औषधि सेवनके भी केवल पथ्यसे ही रोगका शमन किया जा सकता है, परन्तु पथ्य सेवन न करनेसे सैंकड़ों औषधियोंसे भी रोग की शान्ति नहीं की जासकती। इस लिये अब हम तुम्हें यथासम्भव पथ्यापथ्यका उपदेश करते हैं सुनो—

**वात प्रधान पुरुषोंके लिये पथ्य व अपथ्य**—चावल, गेहूँ, जौ, नये उड़द, तिल, मछली मांस, दूध, घी, दही, माखा, काँजी, बैंगन, परवल आलू कम,-सहजनेकी फली, मुनक्का, अनार, आमले, कच्चा नारियल, मीठा खट्टा, व नमकीन रस, तेलकी मालिश करना, सुगन्धित द्रव्य लगाना, शरीरको मलना, विशुद्ध आमोद प्रमोद ( दिल बहलाना ) फिकर छोड़ना व अभ्यासके अनुसार स्नान आदि करना पथ्य है।

रातमें जागना, अधिक बात चीत करना, लंघन, अधिक परिश्रम करना, अधिक स्त्री सहवास, निरन्तर, घोड़े आदिकी सवारीमें फिरना मल मूत्र आदिका वेग रोकना, और चना, अरहर आदि की दाल व सब तरहकी रूखी ( खुश्क ) चीजें आदि अपथ्य हैं।

**पित्त प्रधान व्यक्तियोंके लिये पथ्य व अपथ्य**—चावल, जौ, गेहूँ, चना, मूँग, मसूर, करेला, परमल, गूलर, पेठा, चौपतियेका शाक, कड़वा, व मीठा, कसैलारस, घी दूध चीनी, मुनक्का, अनार, खजूर, ताड़की गिरी, शीतल क्रियायें व स्नान, इत्यादि करना पथ्य है।

उड़द, कुलथी, गुड़, मछली, हेम, गरम पानी, दही इमली, चरपरा रस, ( मिर्च आदि ) भुने व बासी चीजें, अधिक धूमपान,

( तमाखू आदि पीना ) धूपकी तपन, अग्नि सन्ताप, अति मैथुन, व क्रोध, इत्यादि अपथ्य हैं।

कफ प्रधान व्यक्तियोंको पथ्य व अपथ्य—पुराने चावल, चना, मूँग, मटर, सरसोंका तेल, परवल, करेला, बैंगन, कंकोड़ा, केलेके फूल, जिमीकन्द, नीम, मूली, सोंहिजा शाक, लहसुन, शहद, रातमें जागना, परिश्रम करना, भ्रमण करना, घोड़े आदि की सवारी करना, धूमपान, गरम पानी, और चरपरा, कड़वा, व कषाय रस आदि पथ्य है।

स्नेह द्रव्य, ( चिकनी चीज ) अभ्यङ्ग ( तैल आदि की मालिश करना ) दिनमें सोना, अधिक स्नान करना, मछली, मांस, उड़दकी दाल, नये चावल चन्दन आदि लगाना, कच्चा नारियल, अधिक दूध पीना, और मीठी व खट्टी चाजें आदि अपथ्य हैं।

ज्वर आदि रोगोंमें पथ्यापथ्य—जिस प्रकारके आहार विहार से रोगको उत्पन्न करने वाले, दोषों व रोगकी शान्ति हो, ऐसा आहार विहार करना पथ्य और इसके विपरीत अपथ्य जानना चाहिये।

प्रायः सब रोगोंमे ही शाक, अम्ल, मटरकी दाल, और सूखा बासी, दुष्पाच्य, ( भारी ) अरुचि कारक, व जिससे तबियत घिनावे ऐसा भोजन न करना चाहिये, और जो रोग जिस कारणसे उत्पन्न हो, उस रोगका वह कारण भी छोड़ देना चाहिये।

ज्वर रोगमें पथ्य व अपथ्य—नये ज्वरमें मिश्री, बतासा, अनार, कशेरु, सिंघाड़ा, किसमिस, खीलें, खीलोंका मण्ड, जल, साबूदाना, अरारोट, बार्ली, आदि लघु भोजनकी व्यवस्था करनी चाहिये, गरम पानी सुराई आदि में ठंडा करके पिलाना चाहिये। कफ ज्वरमें वात कफ ज्वरमें व सन्निपात ज्वरमें ईष दुष्ण ( शीत गरम ) पानी पिलाना चाहिये। ज्वर छूटनेके बाद भी दो तीन व इससे भी अधिक तक ( जब तक अच्छी तरह रुचि व भूख न हो पहिलेके समान लघुपथ्य देने चाहिये। अन्न पथ्य न देना चाहिये। इन कुछ दिनों

तक दालका पानी आदि लघु व रोचक, पथ्य देना चाहिये, बहुत अधिक क्षुधा होने पर बहुत पतला फुलका भी दिया जा सकता है। तदनन्तर जब शरीरकी ग्लानि, बिल्कुल दूर होजाय, रोगीको अन्न की रुचि व क्षुधा ठीक होजाय, तब हलका पुराने चावलोंका अन्न मूँग व मसूरकी दाल, परवलकी भाजी अथवा कड़वा व चरपरे रस वाला कोई भी शाक भाजी देना चाहिए। मांसभक्षियोंके लिए छोटी२ मछलियोंका झोल पथ्य देना चाहिये। इस क्रमसे ५। ७ दिन तक दोनों बार पेट भर अन्न भोजन न कराना चाहिये। रातको क्षुधाके अनुसार साबूदाना रोटी आदि हलका भोजन देना चाहिये।

विषमज्वर, जीर्णज्वर, प्लीहा, ( तिल्ली ) यकृत ( जिगर ) व पाण्डु आदि रोगोंमें दिनको पुराने बारीक चावल मूँग व मसूरकी दाल, मांसभक्षियोंके लिये छोटी २ मछलियोंका झोल वा ताजा मांस रस। शाक भाजीके लिये कच्चे बैंगन, कच्चा केला, मूली, परवल, पटोलपत्र, करेला, कंकोड़ा जङ्गली तोरई आदि व्यवस्था करनी चाहिये रोगी अत्यन्त क्षीण व दुर्बल होगया हो, तो कबूतर, मुर्गा, व बकरीके मांसका यूष व्यवहार करना चाहिये। खट्टी चीजोंमें कागजी निम्बू और रोगीको अधिक खट्टा खानेकी इच्छा होने पर पुरानी इमली व आमकी पोली भी दी जा सकती है। शृतशीतल ( उबाल कर ठंडा किया हुआ ) पानी देना चाहिये। प्लीहा व यकृत् की कोई विशेष खराबी न होने पर पुराने ज्वरमें धारोष्ण दूध अमृतके समान होता है रात्रिके समय क्षुधा व अवस्थाके अनुसार पतला फुलका, डबल रोटी साबुदाना, अरारोट, वा बार्ली सेवन कराना चाहिये। ज्वर अधिक होने पर दिनमें भी अन्न भोजन न देकर पतला फुलका, व साबूदाना अरारोट, आदि हलका पथ्य देना चाहिये। लघु भोजन ( कलेवा ) के लिए–अनार सिंघाड़ा, कशेरू, किसमिस, ईख, मिश्री, बतासा आदि देना लाभदायक है।

रोगी जब तक बलवान् न होजाय, तब तक गुरुपाक द्रव्य सेवन

करना व कफवर्धक चीजें खाना, साधारण तेल मलना, स्नान करना परिश्रम करना, स्त्रीसहवास करना, दिनमें सोना, क्रोध करना, शीतल जल पीना, व प्रबल वायुके झोंके न लगने देना चाहिये।

**उदर शोथ आदि रोगोंमें पथ्य व अपथ्य**—पुराने चावल मूँगकी दाल, परवल, बैंगन, मानकन्द, गूलर, सहजनकी फली, ककोड़ा, अद्रक, मूली, गाजर, व सुफेद पुनर्नवा आदि की भाजी, रातको—दूध साबूदाना, वा दूध एराकट, व फुलका गरम पानी व सेंधानमक, लाभदायक है। रोग प्रबल होने पर—शाक भाजी आदि वर्जित कर केवल दूध चावल आदि सेवन कराना चाहिये। दोनों-समय दूध चावल सहन न होने पर, दिनमें दूध चावल, और रातको मार्गमण्ड, सेवन कराना चाहिये।

शोथ व उदररोगमें दिनमें सोना, परिश्रम करना, पिट्ठी, तिल, नमक, शीतलजल, सेम, गुरुपाकद्रव्य, व स्नान करना अहितकर है।

**अतिसार ज्वरातिसार प्रवाहिका, व ग्रहणी आदि उदर रोगोंमें पथ्य व अपथ्य**—अतिसार रोगका पथ्यापथ्य पहिले अतिसार चिकित्सामें लिख चुके हैं। इस लिये यहाँ पर उसको पुनर्बार नहीं दुहरायेंगे। ज्वरातिसारमें ज्वर व अतिसार रोगमें कहा हुआ पथ्यापथ्य ही विचार कर व्यवस्था करना चाहिए। प्रवाहिका व ग्रहणी आदि रोगोंका पथ्यापथ्य भी अतिसारके समान जानना।

**अजीर्ण व अग्निमान्द्य आदि रोगोंमें पथ्यापथ्य**—बहुत थोड़ी मात्रामें पुराने बारीक चावलोंका सुसिद्ध अन्नमसूरका यूष, मांस भोजियोंके लिये ताजे बकरेके मांसका यूष, परिन्दोंका यूष, या छोटी २ मछलियोंका झोल, परवल, पटोलपत्र, बैंगन, गूलर, कच्चाकेला, जंगली तोरई, केलेके फूल, व प्रसारणी आदिकी भाजी, कागजी नीम्बू, व पुरानी इमलीकी चटनी, पन्ना या तक्र ( लस्सी ) सेवन कराना चाहिये। रातको भूखके अनुसार साबूदाना, अरारोट आदि देना चाहिये। अजीर्ण-व अग्निमान्द्य आदिमें आनिलके अनुसार हल्का पथ्य

देना चाहिये। इन रोगोंमें भारी व दुष्पाच्य भोजन निषिद्ध है। अजीर्ण रोगमें स्नान जितना कम किया जावे उतना ही अच्छा होता है। अग्निमान्द्य आदिसे अभ्यासके अनुसार स्नान करना चाहिये। अरुचि रोगमें जो रुचिकारक और शरीरके अनुकूल हो, वह ही पथ्य है।

**अर्श आदि रोगोंमें पथ्यापथ्य**—क्रिमि रोगमें पुराने चावल, मूँग, उड़द व कुलथी, आदिकी दाल, जिमिकन्द, कच्चा पपीता, माणकन्द, परवल, बैंगन, गूलर, थोड़ा सा आलू, पुनर्नवाका शाक, बथुवाका शाक, चौलाईका शाक, पुईका शाक, कलमी शाक, हुलहुल व केलेके फूल आदिकी भाजी, मांसभोजियोंके लिये छोटी २ मछलियोंका झोल, बकरी व गायका दूध-तक्र, पका पपीता, सुस्वादु व सुपक्कफल, मक्खन, मिश्री, व काले तिल आदि, स्नान अभ्यासके अनुसार करना चाहिये। यह सब पथ्य है।

जिससे कोष्ठबद्धता, व वायुका प्रकोप होवे, अर्श रोगमें ऐसा आहार विहार त्याग देना चाहिये। भुने हुए, सड़े हुए, जले हुए, या बासी द्रव्य, दही, पिट्ठी, सेम, रौद्रसन्ताप, अग्निसन्ताप, रातमें जागना, 'मलमूत्र' आदिका वेग रोकना और निरन्तर घोड़े आदिकी सवारी करना, अहितकर व अपथ्य है।

**( १ ) क्रिमि रोगमें पथ्य व अपथ्य**—इस रोग में पुराने चावल, परवल, पटोलपत्र, कंकोड़ा, करेला, बैंगन, बेंतकी कोंपल, माणकन्द, व गूलर, आदिकी भाजी लाभदायक है। इसमें कड़वा रस एकमात्र पथ्य है। और मधुर रस बिलकुल अपथ्य होता है। क्रिमि रोगके होने पर प्रायः ही अजीर्ण, अरुचि, व अग्निमान्द्य होजाता है। इस लिए इस अवस्थामें विचारपूर्वक अजीर्ण आदिका पथ्य भी व्यवस्था करना चाहिए।

पिट्ठी आदि गुरुपाकद्रव्य, अधिक मीठे द्रव्य, उड़दकी दाल, दही, घी, मछली, मांस द्रव-प्रधानद्रव्य, दिनमें सोना, मलका वेग रोकना आदि अपथ्य है।

रक्त पित्त रोगमें पथ्य व अपथ्य—दिनमें पुराने चावल, मूंग, मसूर, चना, व अरहरकी दाल, मांस-भोजियोंके लिए मछलियोंमें बड़ी मछली, व वाइन, मछलीका झोल, मांसमें हरिण, खरगोश व भेड़, और परेवा घुघ्घू व बगुलेके मांस शाकोंमेंसे चौलाई पटोलपत्र, चैनकी कोंपल, व ब्राह्मी बूटीका शाक, रक्त पित्त रोगमें पुराना पेठा, कद्दू, परवल, गूलर, माणकन्द केलेके फूल, केलेके डंडेके भीतरकी कोंपल, व करेला आदिका व्यञ्जन लाभदायक होते हैं। खट्टेमेंसे कागजी नीम्बू। इस रोगमें गायका दूध, घी, बकरीका दूध व घी, सुपथ्य है।

नारियल, कच्चे ताड़फलकी गिरी, केला, पक्का कटहल, खजूर, कशेरू, सिंघाड़ा, पक्का कैथबेल, किसमिस-अंगूर, चीनी, मिश्री शहद, व ईखका रस लाभ-दायक होता है। रातको भूखके अनुसार रोटी, खीलोंका सत्तू, साबूदाना, बार्ली, व अरारोट, व्यवस्था-करना चाहिये। पानी उबाल कर ठंडा करके पीना चाहिये। अभ्यासके अनुसार स्नान, व अभ्यङ्ग ( मालिश ) करना चाहिये। घी व सेंधानमक, डाल कर व्यञ्जन पका कर व्यवहार करना हितकर है।

अधिक परिश्रम करना, अग्नि व धूप सेवन, रात्रि जागरण, सवारी में चलना फिरना, मलमूत्र आदिका वेग रोकना, क्रोध स्त्रीप्रसङ्ग, चरपरे व खट्टी चीजें खाना, गुड़, दही, उड़द, भुने हुये व जली हुई चीजें मछली, बैंगन, तिल, सरसों, लहसुन, लम, मद्य, ( शराब ) तम्बाखू पीना व पान खाना अपथ्य हैं।

यक्ष्मा रोगमें पथ्यापथ्य—इस रोगका पथ्य व अपथ्य, रक्तपित्तके समान जानना। इसमें मांस लाभदायक होता है। इस रोगमें बकरीका मांस सेवन करना, बकरीका मलमूत्र शरीरमें लगाना, और रातको चारपाईके चारों पायों पर चार खस्सी बकरे ( जिनके शरीरसे एक विशेष प्रकारकी उत्कट गन्ध निकलती हो ) बाँध कर सोना विशेष लाभदायक है। इस रोगमें स्त्रीप्रसङ्ग करना अति अपकारक होता

है। यहाँ तक कि इस रोगमें स्त्रियोंको देखना, स्पर्श करना, बातचीत करना, स्मरण करना तक निषिद्ध है। इस रोगमें चावल न खाकर, दोनों समय रोटी खा सके तो बहुत अच्छा है। ज्वरका प्रकोप अधिक होने पर दिनमें रोटी रातको साबूदाना आदि लघुपथ्य सेवन करना चाहिए। इस रोगमें पानीको औटा कर व अच्छी तरह शीतल कर पिलाना चाहिए। स्नान करना इस रोगमें उपकारक नहीं होता।

**कास रोगमें पथ्य व अपथ्य**—खाँसीमें विशेष कर क्षयज व क्षतज, खाँसीमें विचारपूर्वक यक्ष्मा रोगमें कहे हुए पथ्य सेवन करना चाहिए।

**हिक्का व श्वास रोगमें पथ्य व अपथ्य**—हिचकी रोगमें स्निग्ध और लघुपाक भोजन हितकर होता है। इस रोगमें स्वेद क्रिया, नस्य, धूमपान, निद्रा, व विरेचन, लाभदायक होता है। परिश्रम करना, धूपसेकना, रूक्षद्रव्य, कफकारक द्रव्य, सेम, कद्दू, पोईका शाक, व आलू आदि कन्द वर्जित करना चाहिए। श्वास रोगका पथ्यापथ्य कास रोगके समान जानना।

**वातव्याधि ( वातरोग ) में पथ्य व अपथ्य**—पुराने चावल, नये गेहूँ, उड़द, कुलथी, मांस भोजियोंके लिए बकरी, भेड़, हरिण आदि पशु, और परेवा, मुर्गा, व हंस-आदि पक्षियोंका मांस, रोहितक, बाइन, आदि मछलियोंका झोल, परवल, सहजनेकी फली, बैंगन, गूलर, प्रसारिणी, लहसुन, प्याज आदिकी भाजी, आम, अनार, पक्का ताड़, किसमिस, कच्चा नारियल, इमली, दूध, घी, तेल, चर्बी, मज्जा, मधुर द्रव्य, अम्ल द्रव्य, तेल मलना, शरीरको मसलना, स्वेद ( पसीना लाना ) तालाब या नदी आदिमें गोते लगाना, और पुष्टिकर आहार वातरोग-में व्यवहार करना चाहिए।

चिन्ता करना, रातमें जागना, रास्ता चलना, निरन्तर घोड़े आदि की सवारीमें चलना, परिश्रम, उपवास, ( भूखा-रहना ), चना मटर, मूँग, जौ, सेम और कद्दू, पेठा आदि बेलमें लगने वाले फल, गूलर,

[illegible], [illegible] आक, कपास, चरपरे, तिक्त, ( कडुवे ) रस व खट्टे [illegible]–इमली, [illegible]दिमें अपथ्य हैं। आध्मान व अग्नि रोगमें [illegible] व स्नान करना निषिद्ध है।

**आमवात रोगमें पथ्य व अपथ्य**–पुराने–चावल, कुलथी की दाल, मांस भोजियोंके लिये हरिण–आदि जङ्गली पशुओंका मांस, परवल, करेला, बैंगन, सहजनेकी फली, सुफेद पुनर्नवा, व शालिञ्च का शाक, लहसुन, अद्रक, चरपरे द्रव्य, ( कटू ) कड़ुवे द्रव्य व अग्नि के बढ़ाने वाले द्रव्य आमवात रोगमें लाभदायक हैं।

दही, दूध, गुड़, मछली, पोई शाक, उड़दकी दाल, पिट्ठी, रातको जागना व अनियमित भोजन अपथ्य हैं।

**वातरक्त व कुष्ठ रोगमें पथ्य व अपथ्य**–पुराने चावल, जौ, गेहूँ, चना, अरहर, पुईका शाक, चौपतियेका शाक, बेंतकी कोंपल, चौलाई, प्रसारिणी, शालिञ्च ( गंगापालक ) पक्का पेठा, व परवल, मांस भोजियोंके लिए कबूतर, मुर्गा, चिड़ुईया, व बटेर आदि का मांस, बकरीका दूध, भैंसका दूध, गायका दूध, साफ शुद्ध चीनी, व मिश्री, किसमिस, कड़वी चीजें, व तेल आदि मलना, वातरक्त, व कुष्ठ रोगमें लाभदायक होते हैं।

दिनमें सोना, धूप व अग्निका सन्ताप–व्यायाम, स्त्री प्रसंग, उड़द, कुलथी, मटर, सेम, मूली, मछली, मांस, दही, गन्ना, मदिरा, चरपरा रस, उष्णवीर्य ( गरम खुश्क ) चीजें गुरुपाकद्रव्य, कफकारक–द्रव्य, व अधिक नमकीन द्रव्य अपथ्य होते हैं।

**उन्माद रोगमें पथ्य व अपथ्य**–पुराने बारीक चावल गेहूँ, मूँग, मांसभोजियोंके लिए, कछुवेका मांस, जंगली, मृग, व पक्षियों का मांस, चौलाई, बथुवा, ब्राह्मी बूटी, परवल, पुराना पेठा धारोष्ण दूध नया वा पुराना घी–शतधौत ( सौ पानीसे धोया हुआ ) घी, वृष्टिका पानी, नारियल, किसमिस, कैथबेल, व कटहल, ये उन्माद-

रोगमें पथ्य हैं। इस रोगमें तेल मलना, पुराना घी मलना, स्नान करना, स्थिर भावसे रहना, व निद्रा ( सोना ) लाभदायक हैं।

उन्माद रोगमें विरुद्ध भोजन, पत्रशाक, करेला, ककोड़ा, आदि तिक्त द्रव्य, स्त्री संग, और क्षुधा, तृष्णा, व नींद रोकना निषिद्ध होता है।

**अपस्मार रोगमें पथ्य व अपथ्य**—इस रोगका पथ्यापथ्य उन्माद रोगके समान जानना चाहिए।

**मूर्च्छा व संन्यास रोगमें पथ्यापथ्य**—इन रोगोंमें पुराने सूक्ष्म चावल, पुराने जौ, खीलोंका मण्ड, मूँग, मटर, पुराना पेठा, परवल, केलेका फूल, चौलाई, पोईका शाक, गौका दूध, धारोष्ण दूध पुराना घी, सौवार, धोया हुआ घी, मांसभोजियोंके लिए जाङ्गल मृग पक्षियोंका मांस, अनार नारियल, चीनी, कपूरसे सुगन्धित किया हुआ जल व वृष्टिका जल, हितकर हैं।

पत्रशाक, कटुरस, तक्रपान दतौन करना, धूप सेकना, और तृष्णा वा नींदका वेग रोकना अहितकर है।

**अम्लपित्त व शूलरोगमें पथ्य व अपथ्य**—पुराने चावल, भुने हुए जौंका दलिया, वा मण्ड, खीलोंका मण्ड, गरम पानी, जाङ्गल पशुओंके मांसका यूष, परवल सहजनेकी फली, करेला, बैंगन, गंगा-पालक, बथुआ, अच्छे पके हुए वा मीठे आम, किसमिस, कैथवेल, नीम्बूका रस, व लघुपाकद्रव्य सुपथ्य होते हैं।

सूखे, कड़वे व कषैले, शीतल गुरुपाकद्रव्य, सब तरहकी दालें खाना, रातको जागना, स्त्रीप्रसङ्ग करना और मद्यपीना अपथ्य है।

सूखा मांस, सूखे शाक, मूँग, उड़द आदिकी दाल, गुरुपाकद्रव्य, मछली, मूली, व मीठे रस वाले फल अहितकारक हैं।

**शिरोरोगमें पथ्य व अपथ्य**—पुराने चावल मांसका यूष, परवल; सहजनेकी फली, करेला, बथुआ, दूध, लस्सी, ( मट्ठा ) काँजी,

नारियल, किसमिस, व खट्टा अनार शिरोरोगमें पथ्य है। दतौन करना दिनमें सोना इस रोगमें अपथ्य है।

**गुल्मरोगमें पथ्य व अपथ्य**—पुराने रक्तशाली धान्य वा बारीक चावल, कुलथीका यूष, गंगापालकका शाक, बथवेका शाक, सहजनेकी फली, मूली, लहसुन, जंगली मृगपक्षियोंका मांस, गौका दूध, बकरी का दूध, तक्र ( मट्ठा ) व निम्बू गुल्मरोगमें हितकर हैं।

**हृद्रोगमें पथ्य व अपथ्य**—पुराने चावल, मूँग, कुलथीका यूष मृग पक्षियोंका मांस, परवल, पुराना पेठा, लहसुन, अमलतासके पत्तोंका शाक, हिसोड़ा, केलेके फल, कटहल, अनार, किसमिस, मट्ठा पुराना शहद, और वृष्टिका जल हितकर है।

कषायरस, गुरुपाकद्रव्य, तिक्तरस वाले द्रव्य, उष्णवीर्य द्रव्य, भेड़ का दूध, मल मूत्र आदिका वेग रोकना, व दतौन करना, अपकारक होते हैं।

**प्रमेह आदि रोगोंमें पथ्य व अपथ्य**—पुराने बारीक चावल मांसभोजियोंके लिये छोटी २ मछलियोंका झोल, बैंगन, परवल, जंगली तोरई, गूलर, माणकन्द, कदलीदण्डकी गिरी, व केलेके फूल, आदिकी भाजा, जंगली मृग पक्षियोंके मांसका यूप, मूँग, व उड़दकी दाल, दूध, दही, मट्ठा ताड़की गिरी ( कच्चे ) कच्चे नारियलकी गिरी खारा, चोनी पुराना शहद, यह सब चीजें प्रमेह मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात आदि मूत्र मार्गके रोगोंमें पथ्य हैं।

मीठे रस वाली चीजें, खट्टी चीजें गुरुपाकद्रव्य, दही, पिट्ठी, तेलमें भुनी हुई चीजें, मैथुन व मद्य पीना अपकारक होते हैं।

**प्रदर रोगमें पथ्य व अपथ्य**—रक्तपित्त रोगमें जो पथ्य व अपथ्य कहा गया है प्रदर रोगमें भी विचार पूर्वक वह ही पथ्य व अपथ्य व्यवस्था करना चाहिए।

**गर्भिणी रोगमें पथ्य व अपथ्य**—शालिधान, मूँग, गेहूँ, मक्खन, घी, दूध, चीनी केला किसमिस आम, मीठे रसवाली चीजें

शीतल द्रव्य, चन्दन फूलोंकी माला-पहरना, स्नान, अभ्यंग (मालिश करना ) कोमल गुदगुदे बिस्तर पर लेटना, शीतल व शुद्ध वायु सेवन सन्तर्पण ( तृप्तिकारक चीजें खाना ) प्यारी और मीठी बातें सुनाना, मनको प्रफुल्लित करने वाले काम काज करना, व हृद्य अन्नपान सेवन करना गर्भिणियोंके लिये लाभदायक है।

लड़ाई करना, विषम भोजन, रातको घूमना, चोरी करना, अप्रिय व भयानक चीजें देखना, अधिक मैथुन करना, व्यायाम बोझ उठाना, अधिक मोटे कपड़े पहरना, रातको जागना, दिनमें सोना कठिन जगह पर बैठना, अथवा ऊँची नीची जगह पर बैठना, या टेढ़ा बाँगा हो कर बैठना, शोक, क्रोध, भय, उद्वेग मलमूत्र आदि का वेग रोकना, इच्छित वस्तु ( दोहद ) का न मिलना, लंघन करना, रास्ता चलना, तीक्ष्ण द्रव्य व उष्ण द्रव्य खाना, मांस खाना, और चित होकर सोना आदि अपथ्य हैं।

**बाल रोगमें पथ्य व अपथ्य**—वयःप्राप्त पुरुषोंके ज्वर अतिसार आदि जिन २ रोगोंमें जो २ पथ्य व अपथ्य कहा गया है बालकों को भी उन २ रोगोंमें विचारपूर्वक वही पथ्य व अपथ्य व्यवस्था करना चाहिये।

**इत्वर अङ्ग आदि रोगोंमें पथ्य व अपथ्य**—इन रोगों में विचारपूर्वक, शरीरके अनुकूल रोग निवारण करनेमें समर्थ आहार विहारकी व्यवस्था करना चाहिये।

**अंड वृद्धि फील पाँव, गलगण्ड, व कण्ठमाला आदि रोगोंमें पथ्य व अपथ्य**—पुराने चावल, मूँग, चना अरहर, मसूर आदि की दाल, सारक ( मृदु विरेचक ) द्रव्य, परवल, बैंगन, आलू, गूलर, प्रसारणी करेला, मूली, लहसुन, सोंठी, माणकन्द, सहजनेकी फली आदि की भाजी, अद्रक, तिक्तद्रव्य पुरानी शराब, गरम पानी पीना व गरम पानीसे स्नान करना, रातको फुलका व लुच्चि खाना

लाभदायक है। अण्डवृद्धि रोगमें लंगोट पहनना चाहिए। इस रोग में दिनमें चावल और रातको फुलका वा लुचि सेवन करना चाहिए।

गुरुपाक द्रव्य दही, पोईका शाक, पका केला, वात व कफको बढ़ाने वाली चीजें, शीतल जल, अधिक घूमना, दिनमें सोना व मलमूत्र आदि का वेग रोकना, निषिद्ध है। पहिलेका भोजन हजम न होने पर ऊपरसे पुनर्वार भोजन करना, बहुत पानी वाली पतली चीजें खाना, शीतल जल पीना, व नित्य स्नान करना अहितकर होता है। इन सब रोगोंमें शुष्क व लघु भोजन करना लाभदायक होता है एकादशी अमावस्या, व पूर्णिमाके दिन उपवास करना चाहिये।

**विद्रधि व्रणशोथ नाड़ी व्रण व उपदंश आदि रोगोंमें पथ्य व अपथ्य**—दिनमें पुराने चावल, मूँग, चना व अरहरकी दाल, आलू, परवल, गूलर माणकन्द, जिमीकन्द, करेला, कदलीखण्ड, सहजनेकी फली, मटर, व गोभी आदि की भाजी, रातको रोटी व लुचि अथवा साबूदाना, बार्ली आदि सेवन करना चाहिए। गरम पानीसे स्नान करना, व गरम पानी पीना चाहिए। इस तरहके रोगों में घी सेंधा नमकसे पके हुए व्यञ्जन हितकारक होते हैं। कलेवाके लिए लुचि मोहनभोग, गजक मिठाई, बिहिदाना, पिस्ता, बादाम, किसमिस, खुबानी, व ईख, आदि सेवन करना चाहिए।

नये चावल, उड़दकी दाल, लाल मिर्च, विलायती पेठा, कद्दू गुड़ दही, अधिक दूध, मछली, कफ पित्तको बढ़ाने वा विकृत करने वाले आहार विहार रातको जागना, दिनमें सोना, मद्य पीना, अधिक वायु सेवन करना, व उपवास आदि करना अपथ्य हैं।

**शीत पित्त आदि रोगोंमें पथ्य व अपथ्य** पुराने चावल मूँग व कुलथीका यूष, जंगली मृग पक्षियोंका मांस, ककोड़ा, करेला सहजनेकी फली, मूली पुईका शाक, व बेंतकी कोंपल, तथा अनार, शहद, सरसोंका तेल, व गरम पानी पीना, शीत पित्त आदि रोगोंमें हितकर है।

छाना, व मावा आदि दूधकी चीजें, मछली, मांस, दिनमें सोना स्नान करना, धूप सेकना, आदि अपकारक होते हैं।

पथ्य व अपथ्यके विषयमें संक्षेपसे ऊपर कह दिया है, सर्वसाधारणके लिये ठीक २ निश्चय कर पथ्यापथ्यका निर्णय कर बता रखना, बहुत कठिन बात है। क्योंकि-देश भेदसे ऋतु भेदसे रुचि भेदसे अभ्यास भेदसे व रोगकी विविध अवस्थाके भेदसे कौनसा आहार विहार शरीरके अनुकूल और कौनसे आहार विहार विरुद्ध पड़ते हैं यह नहीं कहा जा सकता। इस लिये इन सब बातोंका सामंजस्य रखकर यह बिलकुल पथ्य वा अपथ्य है, इस प्रकार कहना-मनुष्यके लिए असम्भव है। अत एव हम पथ्यापथ्य प्रकरणका यह उपसंहार करते हैं कि-हमने पथ्यापथ्यके विषयमें तुम्हें जो कुछ उपदेश किया है, इसको एकमात्र उपयोगी वा अनुपयोगी न समझना, बल्कि इस उपदेशको एक दिग्दर्शनमात्र समझ कर अपने बुद्धिबलसे विचार कर देशकाल पात्रके प्रति दृष्टि रखकर उस समयके उपयोगी पथ्यापथ्यका निर्वाचन करना चाहिए। बुद्धिमान् चिकित्सकगण देशकाल आदिका विचार करके ही सर्वत्र पथ्य आदि सब बातोंका निरूपण करते हैं। आयुर्वेद शास्त्रमें बार २ उपदेश किया गया है कि-देशकालके अनुपयोगी होने पर उस गणमें कही हुई औषधि आदि विषयको छोड़ देना चाहिए। और उपयोगी होने पर अनुक्त विषय भी ग्रहण करना चाहिये इत्यादि।



# परिभाषा प्रकरण ।

प्रश्न-औषधि आदिके उपदेशमें आपने उद्भिद् आदि बहुत प्रकार के द्रव्योंका उल्लेख किया है, पर उनका कौनसा अंश वा किस प्रकार का द्रव्य लेना चाहिए, इसका कुछ विशेष खुलासा नहीं किया है। इसलिए जिज्ञासा करता हूँ—कि जहाँ पर द्रव्य ग्रहणके लिए विशेष कुछ नहीं कहा है वहाँ पर उनका कौनसा अंश या किस प्रकारका द्रव्य लेना चाहिए ?

उत्तर-प्रत्येक स्थल पर सबकी सब बातें लिखनेसे व्यर्थ ही ग्रन्थ बड़ा होजावे, इसलिए शास्त्रमें परिभाषा आदि प्रकरण पृथक् रहता है। हमने भी चिकित्साके उपयोगी परिभाषा आदिका पृथक् उपदेश देने की इच्छासे स्थल २ पर सब बातें नहीं कहीं हैं। अब परिभाषादि प्रकरण कहता हूँ, सुनो-

द्रव्यग्रहणविधि-औषधि द्रव्यका कौन अङ्ग लेना चाहिए, जहाँ पर इसका कोई विशेष उल्लेख न हो, वहाँ पर खैर आदि वृक्षोंका सार नीम आदिकी छाल, हरड़ आदि फल प्रधान वृक्षोंके फल और पटोल व तालीश आदिके पत्ते लेना चाहिए। जिन वृक्षोंकी जड़ बड़ी मोटी और काष्ठगर्भ हो, उनकी जड़ लेना हो तो काष्ठभाग छोड़कर जड़की छाल लेनी चाहिए पर छोटी जड़ हो तो सबकी सब लेना चाहिए। अनुक्त जगह पर द्रव्यग्रहणकी यह विधि है।

सामान्य उक्तिसे द्रव्य ग्रहणकी विधि-जहाँ पर कोई विशेष उल्लेख न किया हो, वहाँ पर पात्रसे मिट्टीका बर्तन, कमल शब्दसे नीलोफर, चन्दन शब्दसे लालचन्दन, ( परन्तु चूर्ण, अवलेह, आसव, व स्नेहमें सुफेद चन्दन और कषाय व लेपमें लाल चन्दन लेना चाहिए ) सरसोंसे सुफेद सरसों, तेल शब्दसे तिलका तेल, नमकसे सेंधा नमक, मूत्रसे गोमूत्र, लेना चाहिए। दूध व घीसे गायका लेना चाहिए। चतुष्पद पशुओंमेंसे नर जाति लेनी चाहिए। परन्तु बकरों में नपुंसक ( खस्सी ) बकरा लेना चाहिए। पक्षियोंमें पुरुष जाति

श्रेष्ठ जानना श्रृगाल और मोरकी पुरुष जाति श्रेष्ठ होती है, क्योंकि-श्रृगाली व मयूरी स्वभावतः वीर्यहीन होती हैं। नपुंसक बकरा न मिलने पर तथा उपेक्षा करनेका समय भी न हो तो वृद्ध वैद्यगण वन्ध्या बकरीको ग्रहण करनेका उपदेश करते हैं। घी तेलके पकानेको वयःप्राप्त जंगली पशुओंका चमड़ा रोम, व नख आदि निकाल कर टुकड़े २ करके हड्डीके सहित मांस लेना चाहिए।

**अनुक्त स्थल पर द्रव्य ग्रहण विधि**—समय का विशेष उल्लेख न होने पर प्रातःकाल उद्भिद ( वनस्पति ) का कौनसा अङ्ग लेना चाहिए लिखा न होनेसे उसकी जड़ द्रव्योंके भाग लेनेका कुछ उल्लेख न होने पर समान २ भाग लेना चाहिए, द्रव पदार्थका विशेष उल्लेख न होने पर जल लेना चाहिए।

**अभावमें द्रव्य ग्रहणकी विधि**—कोई औषधि बनाना हो और उस प्रयोगमेंकी कोई औषधि न मिलती हो, तो उस गुण वाला दूसरा द्रव्य लेना चाहिए। जैसे शहद, न मिलने पर पुराना गुड़ पुराना गुड़ न मिलने पर नया गुड़ चार पहर तक धूपमें सुखा कर लेना चाहिए। दूधके अभावमें मूँग व मसूरका यूष, चीनीके अभावमें खाँड, मुनक्काके अभावमें खम्भारीके फल, अनारके अभावमें वृक्षाम्ल, ( रूपाक दाना ) सौराष्ट्र मृत्तिकाके अभावमें पंकपर्पटी ( कीचड़ सूखने पर जो पपड़ी सा बँध जाती है ) लोहेके अभावमें मण्डूर, सुफेद सरसों के अभावमें साधारण सरसों चव्य व गजपिप्पलीके अभावमें पीपलामूल, पृष्ठपर्णीके अभावमें शालपर्णी केशरके अभावमें हल्दी, मोतीके अभावमें सीपका चूर्ण, हीरेके अभावमें चूनि ( वा कौड़ी भस्म ) धनिये के अभावमें सौंफ, सोना व चाँदीके अभावमें लोहा, पुष्करमूलके अभावमें कूठ, सेंधा नमकके अभावमें सामुद्र नमक, व बिड़ [illegible] फूलोंके अभावमें कच्चा फल, भिलावा-असह्य होने पर [illegible] रायसनके अभावमें बांदा, जीरेके अभावमें धनिया, कपूरके अभावमें सुगन्धित नागरमोथा, रसौतके अभावमें दारुहल्दीका [illegible], मेरा

के अभावमें असगन्ध, महामेदाके अभावमें अनन्तमूल, जीवकके अभाव में गिलोय, ऋषभकके अभावमें विदारिकन्द, ( कोई २ वंशलोचन ) ऋद्धिके बदले खरेटी, वृद्धिके अभावमें गंगेरन, काकोली, व क्षीर काकोलीके अभावमें शतावर, रोहेडेकी छालके अभावमें नीमकी छाल कस्तूरीके अभावमें खहासी, सब मांसोंके अभावमें कबूतरका मांस, मांसयूपके अभावमें मूँगका यूष, सब तरहके दूधके अभावमें बड़े बछड़े वाली गायका दूध, लिया जा सकता है। किसी औषधिका बनानेके लिये, जिन सब द्रव्योंकी आवश्यकता होती है, उनमेंसे किसी द्रव्यके न मिलने पर उसी प्रकार उसके समान गुणवाली पूर्वदत्ता व परवर्त्ती जैसे शहदके अभावमें पुराना गुड़, पुराने गुड़के अभावमें शहद, दूध के अभावमें मूँगका यूष मूँगके यूषके अभावमें दूध। किसी भी द्रव्य का प्रयोग करनेसे कुछ भी दोष नहीं होता।

औषधिमें नया द्रव्य सुखाकर लेना चाहिए, गीला लेना हो तो दूना लेना चाहिये। परन्तु अड़ूसा नीम, पटेलपत्र, केबुवा, खरेटी, पेठा, शतावर, पुनर्नवा, कूड़ा, असगन्ध, शालपर्णी, गिलोय, मांस, गंगेरन, पियावाँसा, गुग्गल, हींग, अद्रक व ईखसे उत्पन्न गुड़ आदि ये सब चीजें गीली ही लेना चाहिए, तथा इनका दुगना नहीं लिया जाता गुड़, घी, शहद, धनिया, पीपल, व वायविडंगके अतिरिक्त और २ सब चीजें सब कार्योंमें नई ही लेना चाहिए। घी, तेल, या और किसी औषधिके प्रयोगमें किसी एक द्रव्यका २। ३ बार उल्लेख हो तो उस द्रव्यका जितनी बार उल्लेख हो, उसको उतने ही भाग अधिक लेना चाहिये।

पकाया हुआ घी, व पकाये हुये गुड़ आदि एक सालके बाद गुण-हीन होजाते हैं। परन्तु पक्व व अपक्व तेल एक वर्षके अनन्तर विशेष गुणदायक होता है। तेल शब्दसे यहाँ पर तिलका तेल समझना चाहिये। पक्व सरसोंका तेल व इससे बनाये हुए दशमूल आदि तेल एक वर्षके बाद गुणरहित होजाते हैं। आसव, धातु द्रव, व पारद

निर्मित औषधियाँ पुराना होने पर गुणोत्कृष्ट होते हैं। चूर्णित औषधियाँ दो मासके बाद और वटिका, अवलेह, व लघुपाक, औषधियाँ एक वर्ष तक पूर्णवीर्य रहती हैं।

क्वाथ आदि को दुबारा पकाकर काढ़नेसे जो गाढ़ी चीज रह जाती है, उसको अवलेह लेह व प्राश कहते हैं। चीनी डालकर अवलेह पकाना हो तो चूर्णसे चौगुनी चीनी, गुड, मिलाकर बनाना हो, तो चूर्णसे दुगना गुड, और किसी द्रव (पतली) चीजके साथ बनाना हो, तो चौगुना द्रव पदार्थ डालकर बनाना चाहिए। अवलेहके अच्छी तरह सिद्धपाक होने पर उसमेंसे तन्तु ( तार ) उठते हैं, पानीमें डालने से स्थिर होजाता है। अर्थात् फैलता नहीं। दबानेसे मोहरके समान चिन्ह होते हैं और सुपक्व अवलेहमें उपयुक्त गन्ध, वर्ण व रसकी उत्पत्ति होती है। चूर्ण द्रव्यका पाक करना उचित नहीं होता। क्योंकि-पकाने से चूर्णद्रव्य निर्वीर्य होजाते हैं। परन्तु यदि चूर्ण अधिक हो, तो मोदक आदि द्रव्योंके आसन्न पाकके समय अर्थात् पाक शेष होनेके कुछ पहिले प्रक्षेप देना चाहिये। क्योंकि-ऐसा न करनेसे वह सबका सब चूर्ण उस औषधिके साथ अच्छी तरह नहीं मिल सकेगा। चूर्ण पदार्थ यदि कम हो, तो पाक समाप्त होने पर मोदक आदिके साथ मिलाना चाहिये।

भावना विधि—जितने परिमाण द्रव पदार्थमें चूर्ण सिक्त होजाय चूर्णको भावना देनेके समय द्रव पदार्थ इतने ही परिमाणमें डालना चाहिये। किसी क्वाथकी भावना देनी हो तो क्वाथ्य द्रव्य ( जिस द्रव्यका क्वाथ करना हो ) भाव्य द्रव्यके ( जिस द्रव्यको भावना देनी हो ) समान परिमाणमें लेकर आठ गुना पानीमें पकाकर और अष्टमांश बाकी रहने पर उतार छान कर उस क्वाथ द्वारा भावना देनी चाहिए। चूर्ण द्रव्यको जल वा क्वाथ आदि द्रव पदार्थसे भिगोकर प्रतिदिन धूपमें सुखाना और रातको शिशिर ( ओस ) में रखनेको

भावना कहते हैं। विशेष विधान न होनेपर सात दिन तक इस प्रकार से भावना देना चाहिये।

**मात्रा**—औषधिकी मात्राके विषयमें कोई विशेष निश्चित नियम नहीं है, वात आदि दोषोंके प्रकोपसे रोगी का अग्नि बल, आयु, व कोष्ठ, रोगकी अवस्था, और औषधि द्रव्योंका वीर्य आदि इन सब बातोंको विचार कर उपयुक्त मात्राका निश्चय करना चाहिये। हमने पहिले जिन २ औषधियोंकी जो २ मात्रा निश्चित की है, वह केवल साधारण संकेत मात्र जानना। जहाँ पर उचित समझो तुम उसमें न्यूनाधिक कर सकते हो।

**पीनेके क्वाथ ( पाचन ) बनानेकी विधि**—किसी भी क्वाथमें जितनी औषधियोंका उल्लेख हो उन सब द्रव्योंका मिलित परिमाण दो तोला लेना चाहिए। विशेष उल्लेख न होनेपर किसी क्वाथमें भी दो तोलासे कम व अधिक द्रव्य न लेना चाहिए। उदाहरणके लिये मान लो जैसे यदि एक ही चीजका उल्लेख हो तो वह एक ही चीज २ तोला लेना चाहिए। यदि दो द्रव्योंका उल्लेख हो तो प्रत्येक एक एक तोला लेना चाहिए। ३ द्रव्योंका उल्लेख हो तो प्रत्येक द्रव्य ८। ८ माशा लेना चाहिये। चार द्रव्योंका उल्लेख हो तो प्रत्येक आधा तोला वजनमें, पाँचका उल्लेख हो तो प्रत्येक ५ माशा मात्रामें, इत्यादि परिमाणसे मिलित २ तोला लेना चाहिए। और इस दो तोला द्रव्यको मोटा औ कूट कूटके सोलह गुना पानी अर्थात् ३२ तोला—( अन्दाजन आधा सेर ) में पका कर चतुर्थांश अर्थात् ८ तोला ( आधा पाव ) शेष रहने पर उतार छान कर व्यवहार करना चाहिए। साधारणतः यह ही क्वाथ व पाचन बनानेकी विधि है। ज्वर चिकित्सामें इसका उल्लेख होचुकने पर भी प्रसङ्ग क्रमसे परिभाषा प्रकरणमें यहाँ पर पुनर्वार कहा गया है। सबके सब पाचनोंमें शहद प्रक्षेप डाल कर सेवन कराने चाहिए।

**पुटपाक विधि**—औषधि द्रव्यको कूट कर जामुन या बट आदि

के पत्तोंमें लपेट कर और रस्सीसे अच्छी तरह बाँधना चाहिये। तदनन्तर उसके चारों ओर एक वा दो अंगुल मोटा कीचड़का लेप कर और उसको धूपमें अच्छी तरहसे सुखा कर उपलोंकी आँचमें पकाना चाहिये। आगके सन्तापसे मिट्टीका लेप लाल अंगारेके रंगका होने पर ही पुटपाक सिद्ध होगया है, जानना चाहिये।

कज्जली ग्रहण करनेकी विधि—किसी औषधिमें जहाँ पर समान भाग पारा और गन्धकके लेनेकी व्यवस्था हो वहाँ पर दो भाग कज्जली लेना चाहिये। और जिस औषधिमें पारेकी अपेक्षा गन्धकका भाग अधिक कहा हो वहाँ पर पहिलेके समान कज्जली लेकर शेष गन्धक पीछेसे मिलानेसे काम चल सकता है। मान लो जैसे-किसी औषधिमें १ भाग पारा और २ भाग गन्धक लेनेका विधान है, वहाँ पर २ भाग कज्जली और १ भाग गन्धक लेनेसे काम चल सकता है। और पारेका भाग गन्धककी अपेक्षा अधिक होने पर वहाँ पर उतना ही भाग पारा व गन्धक लेकर ही कज्जली बना कर व्यवहार करना चाहिये। जिस औषधिमें केवलमात्र पारेका ही उल्लेख हो, गन्धकका उल्लेख न हो, वहाँ पर पारदके स्थानमें "रससिन्दूर" लेना चाहिए।

## ❀ पारिभाषिक शब्द ❀

त्रिफला समान भाग हरड़, बहेड़ा, व आमला मिला कर त्रिफला होता है। इसीको फलत्रिक भी कहते हैं।

त्रिकटु—सोंठ, मिर्च, पीपल, तीन कटु ( चरपरी ) चीजोंको समान भाग लेनेसे त्रिकटु कहा जाता है।

त्रिजात वा त्रिसुगन्धि—समान भाग दाल चीनी, इलायची, व तेजपात, मिलित इन तीन पदार्थोंको त्रिजात व त्रिसुगन्धि कहते हैं। इनके साथ नागकेशर मिलानेसे चतुर्जात कहा जाता है।

त्रिमद—चीता, नागरमोथा व वायविडंग, इन तीनोंको त्रिमद कहते हैं।

चातुर्भद्रक—सोंठ, अतीस, नागरमोथा, व गिलोय, इन चारको चातुर्भद्रक कहते हैं।

पञ्चलवण—सेंधानमक, विट्नमक, ( काला ) सौंचल, सामरनमक, खारानमक, इनको पञ्चलवण कहते हैं।

पञ्चपित्त—वराह ( सूअर ) बकरा, भैंस, मछली व मोर, इनके पित्तको पञ्चपित्त कहते हैं।

क्षाराष्टक—ढाक, थूअर, चिरचिटा, इमली, आक, तिल व जौ, इन सात द्रव्योंकी क्षार तथा सज्जीखार इन आठको क्षाराष्टक कहते हैं।

## ❀ स्नेह ( तैलघृत ) पाककी साधारण विधि ❀

**तिलके तेलकी मूर्च्छा-विधि**—मजबूत लोहेकी कढ़ाई वा मिट्टीकी नाँदमें धीमी २ आँच पर तेल पकाना चाहिए। जब यह तेल फेन रहित होजाय, तब चूल्हेसे उतार कर थोड़ासा शीतल होने पर हल्दीका चूर्ण पानीमें घोल कर, क्रमशः थोड़ा २ करके उसको तेलमें डालना चाहिए। इसके बाद लोध, नागरमोथा, मुरामांसी, आमला, बहेड़ा, हरड़, केवड़ेकी जटा, व नेत्रबाला, इन सब चीजोंको सिलबट्टेसे पीस कर, पानी मिला कर, तेलमें डालना चाहिए ( इन सब चीजोंके साथ बहुतसे बड़की जटा भी डालते हैं ) तदनन्तर इस तेलको चौगुना पानी डाल कर पकाना चाहिए और कुछ थोड़ासा पानी बाकी रहने पर उतार कर ७ दिन तक इसी तरहसे रहने देना चाहिए। इन हल्दी व मंजीठ आदि द्रव्योंको मूर्च्छाद्रव्य कहते हैं। मूर्च्छा क्रियासे तेलकी दुर्गन्ध दूर होकर तेल सुगन्धित व लालरङ्गका हो जाता है। तेलके साथ क्काथ आदि पकानेके समय यह मूर्च्छन द्रव्य सब छान कर डाल देना चाहिए। इस मूर्च्छाद्रव्यका परिमाण—तेलके षोडशांश ( सोलहवाँ भाग ) मंजीठ और अन्य चीजें मंजीठके चतुर्थांश अर्थात् यदि तेल १६ सेर हो तो मंजीठ १ सेर और अन्यान्य चीजें १ पाव लेना चाहिए।

**सरसोंके तेलकी मूर्च्छा-विधि**—पूर्वोक्त विधिसे सरसोंके तेलको भी मूर्छित करना चाहिए अर्थात् तेलके निष्फेन होने पर उतार

कर पहिले उसमें हल्दी, उसके बाद मंजीठ डाल कर उसके बाद आमला, नागरमोथा, बेलकी छाल, अनारकी छाल, नागकेशर, कालाजीरा, नेत्रबाला, मुरामांसी, व बहेड़ा, इन सब मूर्छन द्रव्योंको पहिलेके समान डालना चाहिए। चार सेर तेलमें मंजीठ १ पाव और सब चीजें २ तोला मात्रामें डाल कर १६ सेर पानी डाल कर पकाना चाहिए। जब कुछ जल बाकी रह जाय तब उतार कर सात दिन तक वैसे ही रखा रहने देना सातवें दिन मूर्छाद्रव्यको छान कर फिर क्वाथ आदिके साथ पकाना चाहिए।

**एरण्ड तैलकी मूर्छा विधि**—मूर्छा द्रव्य जैसे-मंजीठ, नागरमोथा, धनिया, त्रिफला, जयतके पत्ते, नेत्रबाला, वनखजूर, वड़की झूरी, हल्दी, दारुहल्दी, मुरामांसी, केवड़ेकी झूरी, दही, व काँजी, प्रत्येक ४ तोला तेल ४ सेर मंजीठ आदि द्वारा पहिलेके समान मूर्छित करना चाहिए।

**घृत मूर्छा विधि**—पहिलेके समान धीमी २ आँचमें घीको पकाना जब वह फेनरहित होजाय, तब पहिले हल्दी, उसके बाद खट्टे निम्बू का रस उसके बाद हरड़, आमला, बहेड़ा व नागरमोथा, इन सब चीजोंको पहिले कहे अनुसार घीमें डालना चाहिए। चार सेर घीका मूर्छन करना हो, तो प्रत्येक मूर्छा द्रव्य ८ तोला परिमाणमें और जल १६ सेर डालना चाहिए।

**वातनाशक तेलोंकी विशेष मूर्छा विधि**—तेल मूर्च्छाका साधारण नियम जो ऊपर कहा गया है, पहिले उसी तरहसे मूर्छा देकर तदनन्तर आम, जामुन, कैथवेल, निम्बू व वेल ( इन सबके पत्तोंकी कोंपल ) जिस तेलको पकाना हो उसका आठवाँ भाग चौगने पानीमें काढ़ा बना कर चौथाई बाकी रहने पर उतार छान कर उस पत्तोंके क्वाथके साथ इस मूर्छित तेलको पुनर्वार शोधन करना चाहिए।

घी, तेल आदि स्नेह पाकमें मूर्छा करनेकी बात कही हुई हो या न

हो पहिले ऊपर कहे हुए नियमसे घी तेल आदिका मूर्छित करके तदनन्तर उसको क्वाथ आदिके साथ पकाना चाहिए।

तेल घृत आदि स्नेह पकानेके लिये जहाँ पर केवल क्वाथका ही उल्लेख हो क्वाथ्य द्रव्य कितना लेना और कितने जलके साथ क्वाथ करना, कितना जल बाकी रहने पर उतारना, इन सब बातोंका कोई विशेष उल्लेख न किया हो वहाँ पर जानना चाहिए, कि स्नेहका जितना परिमाण है, क्वाथ्य द्रव्य उससे दूना लेना चाहिए, और आठ गुना पानी ( क्वाथ्यके आठ गुण जल ) में उस क्वाथ्य द्रव्यको पका कर चौथाई जल बाकी रहने पर उसको उतार देना चाहिए। जैसे यदि कहा हुआ हो, कि गिलोयके क्वाथ्यमें ४ सेर तेल पकाना, तो वहाँ पर ८ सेर गिलोय लेकर उसको ६४ सेर पानीमें पका कर १६ सेर बाकी रहने पर उतार छानकर लेना, क्वाथ्य द्रव्य एक हो, तो उस एकको ही स्नेहसे दूना लेना, और एकसे अधिक द्रव्योंको मिला कर क्वाथ करना हो, तो भी उन सब द्रव्योंको समानभाग स्नेहके द्विगुण लेना चाहिए।

स्नेह पकानेमें यदि कल्क, द्रव्यका परिमाण कहा न हो, तो वह कल्क द्रव्य एक हो वा एकसे अधिक हो उसको स्नेहसे चौथाई लेना चाहिए, अर्थात् ४ सेर स्नेह पकाना हो तो कल्क द्रव्य १ सेर लेना चाहिए। कल्क द्रव्यके अच्छी तरहसे पाक होनेके लिये उसमें ४ गुना ( कल्कसे चौगुना ) जल मिला कर पकाना चाहिये। सुगन्धि द्रव्यों का परिमाण कल्कके चतुर्थांश अर्थात् स्नेहसे सोलवाँ भाग ( चार सेर तेलमें १ पाव ) लेना चाहिए।

जहाँ पर केवल क्वाथसे स्नेह पकानेका विधान हो, किसी कल्कका उल्लेख न हो, वहाँ पर जानना चाहिए कि उस क्वाथ्य द्रव्यके कल्कके साथ स्नेह पाक करना चाहिए। कल्कके अतिरिक्त भी केवल स्वरस आदिसे भी पकाया जाता है।

स्नेह पकानेमें यदि जल व क्वाथ आदि किसी द्रव पदार्थका उल्लेख न हो, केवल एकमात्र दूधका ही उल्लेख हो, अर्थात् केवल दूध डाल

कर ही स्नेह पाक करना लिखा हो, तो स्नेहसे चौगुना अधिक दूध लेना चाहिए। परन्तु यदि अन्यान्य द्रव पदार्थका भी उल्लेख हो तो स्नेहके समान भाग दूध लेना चाहिये। दूध, दही, व स्वरसके साथ स्नेह पाक करना हो और वहाँ पर यदि जलका उल्लेख न भी हो तो भी स्नेहके वीर्याधानके लिए इस दूध आदिके साथ चौगुन[illegible] मिला कर स्नेह पाक करना चाहिए। क्योंकि केवल दूध आदिके साथ स्नेह पाक करनेसे उसके स्वभावतः गाढ़ा होनेके कारण कल्क द्रव्यका रस अच्छी तरह न निकल सकेगा अत एव स्नेह पाक भी गुणोत्कृष्ट न हो सकेगा। इस लिये जहाँ पर न कहा गया हो, वहाँ पर भी चौगुना पानी डाल कर स्नेह पाक करना चाहिए।

जहाँ पर चारसे अधिक द्रवपदार्थ ( क्वाथ स्वरस जल आदि )से स्नेह पाक करना हो, वहाँ पर प्रत्येक द्रवपदार्थ स्नेहके समान लेना चाहिये, परन्तु एकसे ४ तक द्रवपदार्थके साथ स्नेह पाक करना हो, तो द्रवपदार्थ स्नेहसे चौगुने लेने चाहिए।

कितना स्नेह पाक करना है, इसका विशेष उल्लेख न होने पर ४ सेर स्नेह पकाना चाहिए, और किस द्रव पदार्थके साथ स्नेह पाक करना है, यह भी कहा न होनेसे समझना चाहिये कि सर्वत्र ही चौगुना जल डाल कर स्नेह पाक करना चाहिये।

तैल आदिकी मूर्छा करके ७ दिनके बाद छान कर वह द्रव्य फेंक देने चाहियें। तदनन्तर उस मूर्छित तेलको क्रमशः क्वाथ आदिके साथ पकाना चाहिए। सबसे पीछे व्रीहि व मांसके क्वाथके साथ स्नेह पाक करना चाहिए। एक एक दिनमें ही यह पाक शेष करने चाहिये। तदनन्तर दूधके साथ २ दिन स्वरस क्वाथके साथ तीन दिन काँजी व तक्रके साथ पाँच दिन और मूत्र आदिके साथ १ दिन पकानेका नियम है। इसके अनन्तर कल्क पाक, इसको सात दिनके अनन्तर करना चाहिए। अर्थात् कल्क पाकके ७ दिन बाद उसको छान कर

फेंक देना चाहिये । सबसे पीछे गन्धपाक, ( सुगन्धित चीज डाल कर पकाना ) गन्धद्रव्यके साथ ५ दिनमें पाक शेष करना चाहिये । अर्थात् पाँच दिनके बाद गन्धद्रव्य छान कर फेंक देना ।

गन्धद्रव्य—जैसे शिलाजीत, केशर, नखी, सुफेद चन्दन, कपूर, इलायची व लौंग । साधारण तेल आदि पकानेमें साधारणतः ये ही द्रव्य प्रयोग किये जाते हैं, परन्तु विष्णुतैल आदि बात व्याधिमें कहे हुये विशेष २ तैलोंमें इलायची, चन्दन, केशर, अगर, मुरामांसी, कंकोल, जटामांसी, कचूर, सरलकाष्ट, तेजपात, ग्रन्थिपर्ण, ( गठिवन ) शिलारस, खश, कस्तूरी, खट्टाशी, शिलाजीत, नागरमोथा, मेथी, व लौंग आदि सुगन्धि द्रव्य प्रयोग किये जाते हैं ।

स्नेह पाक परिज्ञान—कल्कके साथ पकानेके समय जब देखे कल्क द्रव्यको अंगुलीसे बट देनेसे वह बत्ती तरह हो जाय और आग पर डालनेसे उससे कोई शब्द न हो उस समय जानना चाहिये स्नेह पाक होगया है । स्नेह पाक तीन प्रकारसे किया जाता है मृदु-मध्य व खर पाक । कल्क द्रव्य ईषत् सरस रहते पाक शेष करनेको मृदु और नीरस और कोमल रहते २ पाक शेष करनेको मध्य और अत्यन्त कठिन होने पर पाक शेष करनेको खरपाक जानना चाहिए । नस्यके लिये मृदुपाक, मालिश ( अभ्यङ्ग ) के लिए खरपाक, और अन्यान्य सब कार्यों के लिये मध्यपाक श्रेष्ठ होता है ।

घृत, तैल व गुड़, आदिका पाक एक दिनमें ही शेष न करना चाहिये । क्योंकि पर्युषित ( बासी ) होनेसे वे अधिक गुणदायक होते हैं ।

## धातुओंकी शोधन व जारण विधि ।

स्वर्ण आदि धातु, व माक्षिक ( सोनामक्खी ) आदि उपधातु शोधन व जारण किये बिना किसी भी औषधिमें प्रयोग नहीं किये जासकते । पारद, गन्धक, आदि रस व उपरस और विष उपविष व

माणिक्य आदि रत्न भी शोधन आदिके बिना व्यवहार नहीं होसकते। इस लिए यहाँ पर इनके शोधन आदिको कहता हूँ, सुनो-

सम्पूर्ण धातुओंको ही जारण करनेके पहिले शोधन कर लेना चाहिये। इस लिये सबसे पहिले सोनेकी शोधनविधि कहते हैं, इस स्वर्णशोधनके नियमानुसार चाँदी आदि धातु और माक्षिक आदि उपधातुओंको शोधन करना चाहिए।

**स्वर्ण शोधन विधि**—सोनेके बहुत पतले पत्रोंको कोयलोंकी आँचमें गरम करके लाल होजाने पर उसको गरमागरम यथाक्रमसे तिलका तेल, तक्र, काँजी, गोमूत्र, व कुलथीके क्वाथमें ७। ७ बार निषिक्त ( बुझाव ) करना चाहिये, अर्थात् एक २ बार गरम करके तेलमें सातवार मट्ठेमें सातवार और इसी तरह प्रत्येक चीजमें सात २ बार बुझावा देना चाहिये। इस प्रकार करनेसे सोना शुद्ध होता है। सब उपधातुओंको भी इसी प्रकार शुद्ध करना चाहिये।

**स्वर्ण जारण ( भस्म ) करनेकी विधि**—शोधे हुए सोनेके पत्रोंको कैंचीसे बारीक २ करके काट लेना चाहिए। इसके बाद उसको समान भाग पारेके साथ मर्दन कर एक गोला सा बना लेना। तद्-नन्तर इस गोलेको एक मिट्टीके सकोरेमें रखकर उस गोलेके ऊपर नीचे उसके बराबर तोलकी गन्धक बिछाकर और दूसरे सकोरेसे ढाँक कर उसको कपड़मिट्टीसे अच्छी तरह सम्पुट बन्दकर ३० उपलों की आँचमें पुट देना ( पकाना ) चाहिए। शीतल होने पर वहाँ से निकाल कर पुनर्वार पहिलेकी तरह पारेके साथ मर्दन कर व गन्धक से आच्छादित कर पुट देना चाहिए। इसी प्रकार १४ बार पुट देनेसे सोना भस्म होजाता है। यह भस्म काले रङ्गकी होगी।

**रौप्य ( चाँदी ) के भस्म करनेकी विधि**—सोने के समान शोधी हुई चाँदीके पत्र कैंचीसे बारीक २ काट कर उसको पारेके साथ मर्दन कर गोला बनाना। तदनन्तर चाँदीके बराबर हरताल व गंधक एकत्र कर खट्टे निम्बूके रसमें मर्दन कर उससे उस चाँदीके गोलेको

लीप कर सोनेकी भस्म करनेकी विधिसे पुट देने चाहिए। इस प्रकार दो तीन पुटोंमें ही चाँदीकी भस्म होजाती है।

**ताम्र भस्म करनेकी विधि**—शुद्ध किये हुए ताँबेके पत्र बारीक बारीक काट कर थोड़ासा कजली खट्टे निम्बूके रसमें घोट कर उससे इन तामेके पत्तोंको लीप देना। इसके बाद सोना मारनेके विधानके अनुसार तीन बार पुट देना चाहिए। कज्जलीके अभावमें निम्बूके रसमें सिंगरिफ घोट कर उससे ताम्र पत्तोंको लीप कर पुट देनेसे भी तामेकी भस्म होजाता है।

**जारित ताम्रकी अमृतिकरण विधि**—ताम्र भस्मका अमृतिकरण करना बहुत आवश्यक होता है, ऐसा करनेसे कभी भी ताम्र भस्म सेवन करनेसे वमन, भ्रम व विरेचन, ( दस्त ) न होगा और वह सर्वरोगनाशक होजायेगी। अमृति-करणका नियम यह है ऊपर कहे अनुसार भस्म किये हुए ताँबेको किसी एक अम्लरससे मर्दन कर गोला बनावें और उस गोलेको एक जिमीकन्दके बीचमें रख कर उसको बाहरसे मिट्टीसे लीप देना। लेपके सूख जाने पर उसको उपलों की आँचमें पुटपाक करना।

**बङ्ग भस्म करनेकी विधि**—लोहे की कढ़ाई में आवश्यकताके अनुसार बङ्ग रख कर उसको आँचमें रख कर पिघलाना चाहिए। तदनन्तर राँगके समान भाग हल्दी, जीरा, इमलीकी छाल, व पीपल की छालका चूर्ण क्रमशः थोड़ा २ करके उसमें डालना और धीरे २ करछेसे चलाते रहना चाहिए। इस प्रकार बङ्गके भस्म ( पिट्टी सा ) होने पर उसको पानीसे धोकर अङ्गाररहित (साफ) कर देना चाहिए। यह ही बङ्गकी शोधन और जारण विधि है। इस भस्मको ग्वारपट्ठे के गूदेमें मर्दन कर १-२ पुट देनेसे और भी उत्कृष्ट भस्म होती है।

**जस्त भस्म करनेकी विधि**—इसके शोधन और मारनेकी विधि बङ्गके समान है।

**सीसा भस्म करनेकी विधि**—लोहेकी कढाईमें सीसा व अवाखार मिलाकर पकाना चाहिए। जब तक सीसा भस्म न होजाय, तब तक अवाखार डालते रहना चाहिए। और जब तक वह लाल रङ्गका न होजाय, तब तक धीमी आँचमें पकाना चाहिए। पक जाने पर भस्म को पानीसे धोकर पुनर्वार मृदु अग्निमें सुखा कर ग्रहण करना। इस विधिसे सीसेकी भस्म पीली होगी।

**लोहेकी निषेक क्रिया ( विशेष शुद्धि )**—पूर्वोक्त विधिसे शुद्ध करनेके अनन्तर लोहेकी निषेध क्रिया करना चाहिए आजकल इसपातका बहुत बारीक चूरा बाजारमें मोल मिल जाता है, उसका शोधन, निषेक, व जारण करनेसे उत्तम लोहभस्म तैय्यार होजाती है। शुद्ध लोहेका चूर्ण कोयलोंकी आँचमें बारम्बार थोड़ा २ गरम कर दूध, काँजी, गोमूत्र, व त्रिफलेके काढ़ेमें प्रत्येकमें ३-३ बार बुझाना चाहिए निषेकके लिए त्रिफलाका क्वाथ करनेकी यह विधि है-लोहे से अठगुना त्रिफला, और त्रिफलासे चौगुना जल, लेकर पकाना, आधा बाकी रहने पर उतार कर छान लेना। दूध, काँजी व गोमूत्र लोहेसे दुगनी मात्रामें लेना चाहिए।

**लोहेके भस्म करनेकी विधि**—शुद्ध लोहेका चूर्ण गोमूत्रमें मर्दन कर उपलोंकी आँचमें १०० बार गजपुटमें फूँकना, अर्थात् एक २ बार गोमूत्रमें अच्छी तरहसे घोटना और पुट देना। इस क्रमसे १०० बार करना चारों तरफसे गोल ३० अङ्गुल लम्बा चौड़ा व गहरा एक गड्ढा बनाकर उसमें नीचे ऊपर अन्ने उपले भर कर और बीचमें संपुट रख कर पुट देना चाहिए। रसायनके लिए एकसौसे एक हजार बार तक वाजीकरणके लिए एक हजारसे अधिक पुट देना चाहिए। लोहेको जितने अधिक पुट देंगे, इसकी शक्ति भी उतनी ही अधिक बढ़ेगी। इस लिए इसको जितना होसके उतना ही अधिक पुट देना अच्छा है।

**मण्डूर भस्म करनेकी विधि**—धौंकनीसे कोयलोंकी आँच

को अच्छी तरह जला कर उस अग्निमें मण्डूरको क्रमशः गरम करना चाहिए और गोमूत्रमें डाल कर बुझाना चाहिए। इसके बाद उस मण्डूरका चूर्ण कर पुट देना चाहिए।

## उपधातुओंकी शोधन व जारण विधि।

**स्वर्णमाक्षिक ( सोनामक्खी ) का शोधन**—तीन भाग सोनामक्खी व एक भाग सेंधा नमक खट्टे निम्बूके रसमें मर्दन कर लोहेके बर्तनमे रख कर पकाना। पकानेके समय धीरे २ चलाना चाहिए। लोहेका वर्तन जब लाल होजाय, तब जानना चाहिए कि- सोना मक्खी शुद्ध होगई है।

**सोनामक्खीके भस्म की विधि**—कुलथीके क्वाथमें व तिल के तेलमें अथवा तक्रमें या बकरीके मूत्रमें ऊपर लिखित विधिसे शुद्ध की हुई सोनामक्खीको मर्दन करके पुट देनेसे सोनामक्खीकी भस्म होजाती है।

**कांसी व पीतलके शोधन व जारणकी विधि**—इनका शोधन व जारण ताँबेके समान करना चाहिए।

**नीलेथोथेके शोधनकी विधि**—खट्टे निम्बूके रसमें मर्दन कर लघुपुटसे पकाकर तीन दिन तक दहीके तोड़की भावना देनेसे नीलाथोता शुद्ध होजाता है।

**शिलाजीतके शोधनकी विधि**—शिलाजीतके बहुत छोटे २ टुकड़े करके एक पहर तक बहुत गरम पानीमें भिगोकर रखना। तदनन्तर उसको घोलकर और कपड़ेसे छानकर किसी मिट्टीके वर्तन में भरकर धूपमें रखना। तब उस जलके ऊपर जो मलाई सी जमें, उसको निकाल कर दूसरे वर्तनमें रखना। इस प्रकार बार बार करने से जो चीज प्राप्त हो उसको विशुद्ध शिलाजीत जानना। यह विशुद्ध शिलाजीत दो महीनेमें ठीक कामके योग्य होती है। शुद्ध शिलाजीत को अग्निमें डालनेसे वह लिङ्गके समान फूलकर ऊँची उठती है और उससे धुआँ नहीं निकलता। इसप्रकार शिलाजीत सब कामोंमें प्रयोग करना चाहिए।

# रसप्रकरणम्

**पारदके स्वाभाविक दोष**—नाग, वङ्ग, मल, वन्हि, चाञ्चल्य, विष, गिरि, व असह्याग्नि, ये आठ पारेके स्वाभाविक दोष होते हैं। ये आठ प्रकारके दोष यथो क्रमसे व्रण, कुष्ठ, मूर्छा, दाह, वीर्यनाश, मरण, जड़ता, व स्फोटक इन रोगोंको उत्पन्न करते हैं। इस लिए शोधन किये विना पारा कभी भी औषधिके लिए व्यवहार न करना चाहिए। शुद्ध पारा साक्षात् अमृतके समान होता है और दोषयुक्त पारद विष के समान अनिष्टकारक होता है।

**पारदके सर्वदोषनाशक संक्षिप्त शोधनविधि**— ग्वार-पाठा, चिरायता, लाल सरसों, बड़ी कटेली व त्रिफला, इनके क्वाथमें तीन दिन तक मर्दन करनेसे पारा सर्वदोषरहित होजाता है।

स्वेदन, मर्दन, मूर्छन, उत्थापन, ऊर्द्ध्वादि पातन, बोधन, नियामन, व दीपन ये आठ प्रकारके पारदके संस्कार हैं। शुद्ध करनेके अनन्तर पारदके ये आठ संस्कार अवश्य करने चाहिए।

**स्वेदन विधि**—एक कपड़ेके टुकड़ेकी चार तहें बनाकर उसमें पारेको रखकर पोटली बाँधना, तदनन्तर एक हाँडीमें काँजी भरकर उसमें त्रिकुट त्रिफला, चीता, और घीगुवारका, गूदा डालकर इस हाँडीके मुखमें एक लकड़ी रखकर उसमें ऊपर कही हुई पारेकी पोटली बाँधकर हाँडीके बीचमें झुलाकर चूल्हे पर रखकर एक दिन तक पकाना ( इस प्रकार पकानेको दोलायन्त्र पाक कहते हैं ) शोधन करने के बाद जो कुछ दोष बाकी रह जाते हैं वे इस क्रियासे नष्ट होजाते हैं।

**मर्दन विधि**—घरका धुआँ ईंटका चूर्ण काला जीरा भेड़के बालों की भस्म, गुड़, सेंधा नमक, व काँजी ये सब चीजें ( मिलाकर ) पारे के षोडशांश (सोलहवाँ भाग) लेकर उसमें पारेको मर्दन करना चाहिए

**मूर्छन विधि**—जिस क्रियासे पारेकी निश्चितरोग—नाशक शक्ति उत्पन्न हो, उसका नाम मूर्छन है। त्रिकुट, त्रिफला, बाँझ

कंकोड़ेकी जड़, कटेली व बड़ी कटेली इना क्वाथ, गेहूके बालोंकी भस्म और चीता हल्दी जवाखार घीगुवार आँकके पत्ते, व धतूरा, इनका रस, इन सब चीजोंसे पारेको सातबार मर्दन करनेसे पारेके कञ्चुक दोष दूर होजाते हैं।

**उत्थापन विधि**—पारेके चौथाई हल्दीका चूर्ण व घीगुआरका रस इन दोनों चीजोंमें पारेको मर्दन करके पातना यन्त्रमें रखना, चाहिए। इसीको उत्थापन कहते हैं।

**ऊर्ध्व पातन विधि**—तीन भाग पारा व एक भाग ताँबा एक साथ खट्टे निम्बूके रसमें मर्दन कर गोला बनाना चाहिए। इस गोलेको एक हाँडीमें रखकर और एक दूसरी हाँडी ऊपर मुख करके उसके ऊपर रखकर दोनोंके जोड़को चिकनी मिट्टीसे लीप कर वेमालूम करना चाहिए, जिससे उसके भीतरसे धुआँ बाहर न निकल सके। तदनन्तर उसको चूल्हे पर चढ़ाकर नीचेकी हाँडीके तले आँच देना और ऊपरकी हाँडीमें पानी भरकर रखना। पानी गरम होनेपर उसको निकाल कर ठण्डा पानी भरना चाहिये। इस प्रकार बीच २ में पानी बदलते रहनेसे इस प्रक्रियासे नीचेकी हाँडीमेंका पारा ऊपरकी हाँडीके तलेमें उड़कर जम जायेगा। इसको ऊर्ध्व पातन कहते हैं।

**अधःपातन विधि**—त्रिफला, सहजनेके बीज, चीता, सेंधा, नमक, व सरसों, इनके साथ पारेको मर्दन करना चाहिये। मर्दन करते २ जब वह कीचड़के समान होजाय, तब उससे भूधरयन्त्र + के ऊपरकी हाँडीका भीतरी भाग लीप देना चाहिये। इस यन्त्रको जमीन पर गड्ढेमें रखकर ऊपरके भागमें जलते हुये कोयले रख देना चाहिये

+ दो हाँडियाँ ऊपर नीचे रखकर दोनोंके मुखको मुद्रा देकर अच्छी तरह बन्द करके गड्ढेमें रखनेको भूधरयन्त्र कहते हैं। इस यन्त्रके नीचे की हाँडीमें जल रखकर ऊपरसे आँच जला कर पारदका अधःपातन किया जाता है।

इस प्रक्रियासे ऊपरकी हाँडीमें लिपा हुआ पारा नीचेकी हाँडीके पानी में गिर जावेगा। इसका नाम अधःपातन है।

**तिर्यक्पातन विधि**–एक घड़ेमें शुद्ध पारा और दूसरेमें पानी भर कर दोनों घड़ोंके मुखको आपसमें अच्छी तरहसे मिलाकर चिकनी मिट्टीसे दोनोंके मुखके जोड़को लीप कर एक जीव कर देना चाहिये तदनन्तर, जिस घडेमें पारा है, उसके नीचे आँच बालना चाहिये। इससे वह पारा बढ़कर दूसरे घड़ेके जलमें गिर जावेगा। दोनों घड़ों को तिरछा करके रखना चाहिए।

**बोधन विधि**–ऊर्द्ध्व आदि पातनसे पारा षण्ड ( नपुंसक ) हो जाता है। इस लिये वीर्याधिक्यके लिये पारेको भोजपत्रमें लपेट कर सेंधा नमक मिले हुए जलमें पकाना चाहिए। इससे पारेका षण्डभाव दूर होकर पारा वीर्यवान् होजाता है। इसको पारेका बोधन कहते हैं।

**नियामन विधि**–सर्पाक्षी ( सरहटी ) इमलीकी छाल, बाँझ कंकोड़ा, भारङ्गी, बंकनक, धतूरा इनके क्वाथमें नियम पूर्वक ३ दिन तक मर्दन करनेसे पारद स्थिर होजाता है। इसका ही नाम नियामन है

**दीपन विधि**–हीरा कशीश, पाँचों नमक, राई, सहजनेके बीज, व सुहागा इनको घोटकर और कांजी मिलाकर लोईसा बनाकर इनके साथ नियमानुसार तीन दिन तक पारेको दोलायन्त्रसे पकाना चाहिए अथवा चीतेका क्वाथ व काँजी एक साथ मिलाकर इसके साथ दोला यन्त्रसे तीन दिन तक पकाना चाहिए। इसको दीपन कहते हैं।

**अनुवासन विधि**–दीपन क्रियाके अनन्तर पारेको खट्टे निम्बू के रसके साथ मिलाकर मिट्टी व पत्थरके वर्तनमें रखकर एक दिन धूपमें रखनेसे पारेका अनुवासन संस्कार सिद्ध होजाता है।

**दोलायन्त्र**–द्रवद्रव्यसे एक हाँडीको आधा भरकर हाँडीके मुख पर एक लकड़ी रखना चाहिए। तदनन्तर उस लकड़ीमें जिस औषधि को पकाना हो उसकी पोटली बाँधकर हाँडीके बीचमें लटका देना

चाहिए। फिर इस हाँडीको चूल्हेमें चढ़ाकर आँच देना। इसको ही दोलायन्त्र कहते हैं।

**सिंगरिफसे पारा निकालनेकी विधि**—हिंगुल एक पहर तक खट्टे निम्बू रसमें अथवा नीमके पत्तोंके रसमें खरल कर मर्दन कर एक हाँडीमें भर देना और उस हाँडीके मुखमें एक सकोरा खड़ा करके रखना व दोनोंके जोड़को चिकनी मिट्टीसे अच्छी तरह बन्द कर देना। तदनन्तर सकोरेमें पानी भरकर हाँडीके नीचे अग्नि जलाना सकोरेके पानीके गरम होने ही उसको डाल देना और उसके बदले ठण्डा पानी भर देना चाहिये। इस प्रकार ३० बार पानी बदलने पर हिंगुलमेंसे सबका सब पारा उड़कर सकोरेके तलेमें जम जावेगा। यह पारा नाग आदि सब दोषोंसे रहित शुद्ध होता है। इसको सब कामोंमें व्यवहार करना चाहिए। सिंगरिफसे इस प्रकार निकले हुये पारेके शोधन करनेकी आवश्यकता नहीं होती।

**षड्गुण बलि ( गन्धक ) जारण विधि**—बालुकायन्त्रमें किसी एक मिट्टीके बर्तनमें पारेके समान भाग बलि—अर्थात् गन्धक रख कर पकाना। गन्धक गल कर तेलके-समान होजाने पर उसमें पारा डाल देना चाहिए। कुछ देरके बाद उसमें पुनर्वार गन्धकका चूर्ण डालना। इस विधिसे पारेसे छैः गुना अधिक गन्धक डाल देनेके बाद बालुकायन्त्रको चूल्हेसे उतार कर उसमेंसे मिट्टीका बर्तन निकाल देना चाहिए। और उस बर्तनके पेंदेमें छेद करके उसमेंसे पारा निकाल कर अलग करना। इस प्रकारकी प्रक्रियाका नाम षड्गुणबलिजारण है। इस प्रकार शुद्ध किया हुआ पारा निर्दोष व सर्वरोगनाशक होता है। इस षड्गुणबलि जारणको पारेकी विशेष मूर्च्छा जानना चाहिए।

**रस सिन्दूर बनानेकी विधि**—पारा, गन्धक, नौसादर, घर का धुँआ, व फटकरी, इन सब चीजोंको समान भाग लेकर, नीबूके रसमें एक पहर तक घोट कर व अच्छी तरह सुखा कर, आतशी शीशीमें भर देना, आतशी शीशी पर ७ कपड़ मिट्टी बराबर २ करके

कर देना और जब वह अच्छी तरहसे सूख जावे, तब एक मिट्टीकी नाँदके पेंदेमें छेद करके ठीक उस छेदके ऊपर इस शीशीको रख कर नाँदको शीशीके गले तक बालूरेतसे भर देना। ( इस प्रकार बालुका पूर्ण हाँडीका नाम बालुकायन्त्र कहते हैं )। बोतलके मुखमें सेलखड़ी का ढकना बना कर बन्द कर देना चाहिए। जब यह सब ठीक हो जाय, तब इस नाँदको चूल्हेमें रखकर उसके नीचे १२ प्रहर तक क्रमशः मृदु, मध्य व खर अग्नि जलाना। अग्नि देना समाप्त होजाने पर और शीशीके शीतल होजाने पर उसका गलेसे तोड़ कर ऊपर लगा हुआ गन्धक छोड़ देना और नलीमें जमा हुआ रससिन्दूर ग्रहण करना। यह रससिन्दूर सब रोगोंमें प्रयोग करना चाहिए।

**कर्पूररस बनानेकी विधि**—कर्पूररस बनानेके लिये पारेका समान भाग, गेरू मिट्टी, ईंट, सेलखड़ी, फटकरी, सेंधा नमक, दीमक की मिट्टी, व बर्तनोंका माँजनेकी मिट्टी, अर्थात् लाल मिट्टी, इन सब चीजोंका चूर्ण बनाकर इस चूर्णके साथ पारेको चार पहर तक मर्दन करना। तदनन्तर इस मर्दन किये हुये पारेको एक हाँडीमें रख कर उस हाँडीके ऊपर एक दूसरी हाँडी रखकर दोनोंके मुखके जोड़ को कटे हुये कपड़े व कीचड़से लेप कर सुखा लेना। इस प्रकार दो तीन बार लेप करना और सुखा कर उसको चूल्हे पर चढ़ाकर ४ दिन तक निरन्तर आँच देना और पाँच दिन रात जलते हुये अँगारोंके ऊपर रखे रहना। फिर आँच बुझ जाने पर संपुट खोल कर ऊपरकी हाँडीमें कपूरके समान सुफेद रङ्गका रस लेना चाहिए। इसके गुण बहुत उत्कृष्ट हैं। इसके सेवन करनेसे उपद्रव सहित फिरङ्ग रोग ( गरमी ) शीघ्र ही नष्ट होजाती है। और इससे अग्निकी दीप्ति, शरीर की पुष्टाई, बल वीर्य व रतिशक्तिकी वृद्धि होती है।

**कज्जली बनानेकी विधि**--शुद्ध पारा व शुद्ध गन्धक, समान भाग लेकर दोनोंको १ दिन तक मर्दन करना चाहिए। पारेके कण न

दीखने पर कज्जलीके समान होजाने पर उसको सब कामोंमें व्यवहार करना चाहिए।

**गन्धक शुद्ध करनेकी विधि**--एक लोहेके करछेमें थोड़ासा घी डालकर आँच पर गरम करके उसमें गन्धकका चूर्ण कर डालना। गन्धकके पिघल आने पर उसको जल मिले हुये दूधमें डाल देना चाहिए। इस प्रकार कमसे कम ७ बार करनेसे गन्धक शुद्ध होजाता है। (अधिक बार करनेसे गन्धक और भी उत्कृष्ट गुणवाला होता है)

**गन्धकका तेल निकालनेकी विधि**--गन्धकका तेल निकालना हो, तो एक कपड़ेके टुकड़ेको ऑक या थूअरके दूधमें सातबार भिगोकर सुखाना। और मक्खनके साथ गन्धकको पीस कर उस गन्धकको कपड़े पर लेप देना। तदनन्तर उस कपड़ेको एक लकड़ीमें लपेट कर बत्तीके समान बनाना, तब उसको आगसे जला कर एक बर्तनके ऊपर नीचा मुख करके लटकाके रखना। इस तरह रखनेसे उसमेंसे बूँद २ करके तेल बर्तनमें टपक जावेगा। इसका ही नाम गन्धक तैल है। इसको लगाने व सेवन करनेसे गलित कुष्ठ तक आराम होजाता है।

**हिंगुल शुद्ध करनेकी विधि**--निम्बूके रसमें व भैंसके दूधमें सात बार भावना देनेसे ही सिंगरफ शुद्ध होजाता है।

**अभ्रक शुद्ध करनेकी विधि**—अभ्रकको अग्निमें तपा कर दूधमें बुझाना चाहिए। तदनन्तर उसके पत्रे अलग २ करके चौलाई व निम्बूके रसमें एक दिन भावना देनेसे अभ्रक शुद्ध होजाता है।

**अभ्रक भस्म करनेकी विधि**—अभ्रकको गोमूत्रमें पीस कर व संपुटमें बन्द कर बार २ पुट देनेसे भस्म होजाता है। हजार पुट तक पकाया हुआ अभ्रक विशेष गुणकारक होता है और उसको ही औषधिमें प्रयोग करना चाहिए।

**अभ्रकके अमृतिकरणकी विधि**—त्रिफलाका क्वाथ २ सेर गौका घी १ सेर और अभ्रक भस्म १। सेर इन सब चीजोंको लोहेके

बर्तनमें रखकर मृदु आँचमें रख कर पकाना। यह ही अभ्रकका अमृतिकरण संस्कार है। यह अमृतिकरण किया हुआ अभ्रक ही सब कामोंमें व्यवहार करना चाहिए।

**हरताल शुद्ध करनेकी विधि** हरतालको चूनेके जलमें सात दिन तक भावना देनेसे वह शुद्ध होजाता है। इस प्रकार शुद्धकी हुई हरताल औषधिमें प्रयोग करनी चाहिए।

**हरताल भस्म करनेकी विधि**—शुद्ध हरतालको पुनर्नवा (लाल सोंठ) के रसमें १ दिन तक मर्दन कर चकती बना कर सुखा कर लेना। एक हाँडीको आधा पुनर्नवाके क्षारसे भर कर उसमें यह हरतालकी चकती रख कर उसके ऊपर दाब २ के पुनर्नवाका क्षार हाँडीके गले तक भर देना। फिर हाँडीके मुख पर एक सकोरा रख कर उसके जोड़को कीचड़ आदिसे अच्छी तरह बन्द कर देना। तब उसको चूल्हे पर चढ़ा कर पाँच दिन तक निरन्तर आँच देना चाहिए अग्नि क्रमशः तेज देनी चाहिए। इस प्रक्रियासे हरताल भस्म हो जावेगी। इसके सेवन करनेसे बहुत बड़े भयानक २ रोग निर्मूल हो जाते हैं।

**रस माणिक्य बनानेकी विधि**—शुद्ध हरतालको पेठेके जल की सात वा तीन भावना देना और दही वा और किसी खट्टे रसकी सात वा तीन बार भावना देकर उसको सुखा देना और उसको कूट के चावल बराबर टुकड़े बना देना। फिर इस हरतालको एक सकोरे में रखकर उस सकोरेके ऊपर दूसरा सकोरा ढाँक कर दोनों सकोरों के मुखका जोड़ बेरके पत्तोंकी लुगदीसे बन्द कर देना। तदनन्तर उसको बालुकायन्त्रमें रख कर जब तक सकोरेका तला लाल रङ्गका न होजाय तब तक उसके नीचे आँच लगाना। फिर उतार कर शीतल होने पर खोल कर देखोगे वह माणिक्यके समान होगया है। इस रस माणिक्यको घी व शहदके साथ २ रत्ती तक मात्रामें सेवन करानेसे कुष्ट वातरक्त, भगन्दर, नाड़ी व्रण (नासूर) व दुष्ट व्रण आदि शीघ्र आराम होते हैं।

**हरतालसे श्वेत वीर्य ( संखिया ) निकालनेकी विधि**- तिर्यक् पातन यन्त्रमें हरताल भस्म करनेसे उसमें एक प्रकार सुफेद रङ्गका सत्व निकलता है । इसका बँगला भाषामें संकाविष कहते हैं । इसकी मात्रा १ सरसोंके बराबर है । ज्वर व अजीर्ण रोगमें प्रयोग करना चाहिए।

**मनशिल शोधन करनेकी विधि**--मनशिलको पीसकर चूने के पानीकी सात बार भावना देनेसे शुद्ध होजाती है ।

**सुहागा शोधनेकी विधि**--आँच पर भूनकर खील बना लेने से ही सुहागा शुद्ध होजाता है ।

**फटकरी शुद्ध करनेकी विधि**--आग पर भून लेनेसे ही यह शुद्ध होजाती है ।

**शंख, कौड़ी, व सीप शुद्ध करनेकी विधि**--किसी खट्टे रसमें बुझावा देनेसे या भावना देनेसे ये शुद्ध होजाते हैं ।

**शंख आदिके भस्म करनेकी विधि**--ऊपर लिखे अनुसार बुझावा देनेके अनन्तर संपुटमें बन्द कर लघुपुट देनेसे भस्म होजाते हैं

**मोती व प्रवाल ( मूँगा ) भस्म करनेकी विधि**--जयन्ती के रसमें मोती व दूधमें मूँगा पकानेसे ये शुद्ध होजाते हैं । इस प्रकार शुद्ध करनेके अनन्तर सम्पुटमें बन्द कर लघुपुट देनेसे मोती, प्रवाल आदि सब रत्न भस्म होजाते हैं ।

**हीरेको छोड़ कर अन्यान्य रत्नोंके शोधन व जारणकी साधारण विधि**--दोलायन्त्रमें जयन्तीके पत्तोंके रसमें १ पहर तक पकानेसे मणि-मोती, प्रवाल आदि सब रत्न शुद्ध होजाते हैं । शुद्ध करनेके अनन्तर उनको आँचमें गरम कर गरमागरम घीगुआरके रसमें चौलाईका रस व स्तनदुग्धमें यथाक्रम ७-७ बार बुझावा देनेसे भस्म होजाते हैं ।

**हीरेके शुद्ध करनेकी विधि**--कटेलीके अर्कके बीचमें रख कर

कुलथी व कोदो धान ( कोदा ) के काथमें ३ दिन तक पकानेसे हीरा शुद्ध होजाता है।

**हीरा भस्म करनेकी विधि**—कुलथीके काथमें थोड़ीसी हींग व सेंधानमक मिला कर इसको १ वर्तनमें रखना और हीरेको गरम करके गरमागरम इस काथमें बुझाना चाहिये। इस प्रकार २१ बार करनेसे हीरा भस्म होजाता है।

**मीठा तेलिया विष शुद्ध करनेकी विधि**—मीठा तेलिये की जड़के चनेके बराबर छोटे २ टुकड़े बना कर मिट्टीके वर्तनमें रख कर ३ दिन तक गोमूत्र डाल कर भिगोके रखना। प्रतिदिन ताजा २ गोमूत्र डालना चाहिये। तीन दिनके बाद उसको सुखा कर लेना चाहिये।

**काले सर्प विषके शुद्ध करनेकी विधि**—काले सर्पका विष ही औषधियोंमें प्रयोग करना चाहिये। पहिले जवान व काले सर्पका विष लेना चाहिये। अर्थात् जिसका विष एक बार निकाला गया हो इसका विष दूसरी बार न लेना चाहिये। पहिले विषको सरसोंके तेलमें डाल कर रखना तदनन्तर पानका रस, मौलसिरीकी छाल, व पत्तोंके रसमें व कुड़ेके काथमें यथाक्रम ३-३ बार करके भावना देनेसे वह शुद्ध होजाता है।

**जयपाल ( जमालगोटा ) शुद्ध करनेकी विधि**—जमालगोटके छिलकेको निकाल कर भीतरकी गिरीके दो फाँक करके उसके बीचमें जीभके समान जो पतला पत्रसा होता है उसको निकाल कर डाल देना। तदनन्तर गौके दूध, या गोमूत्रमें पकानेसे शुद्ध होजाता है

**ईशलाङ्गली ( कलिहारी ) के शुद्ध करनेकी विधि**—गोमूत्रमें १ दिन कलिहारीकी जड़को भिगोके रखनेसे शुद्ध होजाती है।

**धतूरेके बीजोंके शुद्ध करनेकी विधि**—धतूरे के बीजों के छिलके निकाल व कूटकर ४ पहर तक गोमूत्रमें भिगोकर रखनेसे वे शुद्ध होजाते हैं।

**अफीम शुद्ध करनेकी विधि**—अदरकके रसमें २१ बार भावना देनेसे अफीम शुद्ध होजाती है।

**भाँग शुद्ध करनेकी विधि**—बबूलके क्वाथमें भाँगको पकाकर उसको गोमूत्रकी भावना देनेसे शुद्ध होजाती है।

**कुचला शुद्ध करनेकी विधि**—घीमें भून लेनेसे कुचला शुद्ध होजाता है।

**दारचिकना आदिके शुद्ध करनेकी विधि**—दारचिकना आदिका शोधन हरतालके समान करना चाहिए।

**भिलावा शुद्ध करनेकी विधि**—ईंटके चूर्णके साथ रगड़नेसे शुद्ध होजाता है है।

**गुग्गल शोधनेकी विधि**—बाल व मैल आदि रहित साफ गुग्गल को गरम किये हुए दशमूलके क्वाथमें डाल व अच्छी तरह घोल कर कपड़ेसे छान व धूपमें सुखा कर घी लगा कर उसके गोले बना लेनेसे यह शुद्ध होजाता है गौका दूध व त्रिफलाके क्वाथमें दोलायन्त्रसे पकाकर छान लेनेसे गुग्गल शुद्ध होजाता है।

**नखी शुद्ध करनेकी विधि**—गौके गोबर या भैंसके गोबरके रसमें अथवा कच्ची इमलीके रसमें नखीको पकानेके अनन्तर भूनकर गुड़ व हरड़के पानीमें भिगो लेनेसे शुद्ध होजाती है।

**हींग शुद्ध करनेकी विधि**—हींगको लोहेके बर्तन में रख कर उसमें थोड़ासा घी डाल कर भूनना चाहिए। भूनते २ जब थोड़ासा लाल होजाय तब उतार देना। यह ही हींगके शुद्ध करनेकी विधि है।

**नौसादर शुद्ध करनेकी विधि**—चूनेके पानीको फेंक कर दोलायन्त्रमें नौसादर पकालेनेसे वह शुद्ध होजाता है।

**रसौंत शुद्ध करनेकी विधि**—खूब गरम पानीमें रसौंत घोल कर कपड़ेसे छानकर सुखा लेनेसे वह शुद्ध होती है।

# औषधि प्रस्तुत प्रणाली।

## ( अकारादि अनुक्रमसे )

**अग्निकुमार रस**—कालीमिर्च, बच, कूठ, नागरमोथा प्रत्येकका चूर्ण समान भाग मीठा तेलियेका चूर्ण पूर्वोक्त सबके समान लेना अद्रकके रसमें पीसकर १ रत्ती प्रमाण वटी बना कर रखना। ज्वर, अतिसार आदि सब रोगोंमें ही आमावस्था ( कच्ची अवस्था ) में यह प्रयोग करना चाहिए।

**अग्निकुमार रस**—( ग्रहणीरोगका )—पारा, गन्धक, मीठा तेलिया, त्रिकटू, सुहागेकी खील, लोहभस्म, अजवायन व अफीम प्रत्येक समान भाग सबके बराबर अभ्रक भस्म लेना। चीतेके काथमें मर्दन कर मिर्चके समान गोली बनाकर रखना। अतिसार, ग्रहणी व अजीर्ण रोगमें प्रयोग करना चाहिए।

**अग्निकुमार रस**—( अग्निमान्द्यरोगका )—पारा १ भाग, गन्धक १ भाग, सुहागेकी खील १ भाग, मीठा तेलिया ३ भाग, कौड़ीभस्म ३ भाग, शंखभस्म ३ भाग, कालीमिर्च ८ भाग। पक्के खट्टे निम्बूके रसमें मर्दन कर ४ रत्ती प्रमाण वटी बनाकर रखना। अग्निमान्द्य, अजीर्ण, ग्रहणी आदिमें प्रयोग करना चाहिए।

**अङ्गारक व बृहदङ्गारक तैल**—यथा विधि मूर्छित तिलका तेल ४ सेर। काँजी १६ सेर। कल्कके लिये मूर्वाकी जड़, लाख, हल्दी दारुहल्दी, मंजीठ, इन्द्रायणकी जड़, बड़ी कटेली, सेंधानमक, कूठ, रायसन, जटामाँसी व शतावर सब मिला कर १ सेर। कल्क पाकके लिये जल १६ सेर। पाकशेष होनेपर तेल छान लेना चाहिए। तदनन्तर उसमें कपूर, शिलरस व नखी प्रत्येक १ तोला लेकर मिलाना चाहिए।

इस अङ्गारक तैलमें यदि पूर्वोक्त कल्क द्रव्योंके साथ सूखी मूली,

पुनर्नवा, देवदार, रायसन व सोंठ ये कुछ चीजें और मिलाली जावें, तो इसको वृहद्क्षारक तैल कहते हैं।

**अभयालवण**—फरहदकी छाल, ढाककी छाल, आंक, थोहरकी छाल, चिरचिटा, चीतेकी जड़, वरनेकी छाल, अरणिकी छाल, बथुआ शाक, गोखरू, बड़ी कटेली, कटेली, करंजवा, अष्टपादिका, फूहड़की छाल, घघरवेल व पुनर्नवा इन सब चीजोंको मूल, शाखा व पत्र समेत कूट कर एक हाँडीमें भरकर तिलकी लकड़ीकी आँच देनी चाहिए। सब की भस्म होजाने पर उसके २ सेर लेकर ६४ सेर पानी डाल कर पकाना चाहिए। १६ सेर बाकी रहने पर उतार कर क्षारविधिके अनुसार २१ बार छानकर लेना चाहिए। इस क्षारजलको पुनर्नवाकी आँचके ऊपर चढ़ाकर उसमें सेंधा नमक २ सेर हरड़ बड़ी १ सेर व गोमूत्र १६ सेर डालकर पकाना चाहिए। गाढ़ा होजाने पर उतारकर कालाजीरा, सोंठ, मिर्च, पीपल, हींग, अजवायन, कूठ व कचूर प्रत्येकका चूर्ण ४ तोला डालकर मिलाकर रखना चाहिए। मात्रा–२ तोला। अनुपान ईषदुष्णजल।

**अमृतप्राशघृत**—घी ४ सेर। क्वाथके लिए खस्सी बकरेका मांस १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, असगन्ध १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, बकरीका दूध १६सेर। मूर्छाके लिए केशर ४ तोला कल्कके लिये खरेंटीकी जड़, गेहूँ, असगन्ध, गिलोय, गोखरू, कशेरू, त्रिकटु, धनिया, ताड़की दाढ़ी, त्रिफला, कस्तूरी, कौंचके बीज, मेदा, महामेदा, कूठ मीठा, जीवक ऋषभक, कचूर, दारुहल्दी, फूलप्रियंगु, मंजीठ, तगर, तालीशपत्र, इलायची, तेजपात, दालचीनी, नागकेशर, जावित्री, रेणुक, सरलकाष्ठ, चमेलीके फूल, इलायची छोटी, नीलोफर, अनन्तमूल, पत्थरचट्टेकी जड़, जीवन्ती, ऋद्धि, वृद्धि व गूलर प्रत्येक २ तोला। पाकशेष होने पर शीतल होने पर घीको छानकर उसमें १ सेर चीनी मिलाना चाहिए। मात्रा–२ तोला।

**अमृतांकुर लौह**—एक पत्थरके खरलमें १६ तोला कज्जली रख कर उसको थोड़ासा पानी मिलाकर गोला बनाना चाहिए। तदनन्तर इस पिण्डके ऊपर गरम किये हुए तांबेके बर्तनका दबाव देकर पर्पटी के समान कुछ चपटा कर देना चाहिए, और उसके साथ सुहागेकी खील १ तोला मिलाकर मूषा (सकोरे) में रखकर थोड़ासा आँच देनी चाहिए। फिर इस कज्जलीके साथ लोहाभस्म ८ तोला, ताम्र भस्म ८ तोला, सिलाजेकी गिरी ८ तोला, अभ्रक भस्म ८ तोला, गुग्गल ८ तोला, घी २ सेर मिलाकर ४ सेर त्रिफलाके क्वाथमें पकाना चाहिए। आसवपाक होनेपर बड़ी हरड़का चूर्ण ४ तोला, बहेड़ेका चूर्ण ४ तोला आमलेका चूर्ण १२ तोला ८ माशा प्रक्षेप देकर यथो विधि पाकशेष करना चाहिए। मात्रा—१ रत्ती।

**अम्लपित्तान्तक लौह**—रससिन्दूर, ताम्रभस्म व लौहभस्म प्रत्येक १-१ तोला हरड़का चूर्ण ३ तोला लेकर जलमें मर्दन कर १ माशा प्रमाण वटी बनावो।

**अर्जुन घृत**—घी ४ सेर। क्वाथके लिये-अर्जुनकी छाल ८ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। कल्कके लिये अर्जुनकी छाल १ सेर।

**अशोक घृत**—गायका घी ४ सेर। क्वाथके लिये अशोककी जड़ की छाल २ सेर, जल १६ सेर, शेष ४ सेर। जीरा सुफेद २ सेर, जल १६ सेर, शेष ४ सेर। चावलोंके धोनेका पानी ४ सेर। बकरीका दूध ४ सेर, कसेरुका रस ४ सेर। कल्कके लिए—जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जिवन्ति, मुलेठी, चिरौंजी, फालसे, रसौत, मुलेठी, अशोककी छाल, मुनक्का दाख, शतावर व चौलाईकी जड़, प्रत्येक ४ तोला। पाकशेष होने पर शीतल होजाने पर चीनी १ सेर मिला कर रखना।

**आनन्द योग**—तिलनालभस्म, चिरचिटेकी भस्म, केलेकी भस्म, ढाककी भस्म, आमलेके पेड़की भस्म, सब मिलित २ सेर, जल ६४

सेर, शेष १६ सेर। यह १६ सेर क्षारजल छान कर पुनर्वार पका कर समस्त जल सुखा लेना चाहिये। इस चूर्णकी मात्रा-२ रत्ती। अनुपान-सेहुँड़ या बकरीका मूत्र।

**आनन्द भैरव रस**—सिंगरफ शुद्ध, काली मिर्च, सुहागेकी खील, मीठा तेलिया व पीपल प्रत्येक समान भाग। अदरखके रसमें मर्दन कर १ रत्ती प्रमाण वटी बना कर रखना।

**आनन्द भैरव रस**—(नम्बरान्तर) सिंगरफशुद्ध, मीठातेलिया त्रिकटु, सुहागेकी खील व गन्धक प्रत्येक समान भाग लेकर खट्टे निम्बूके रसमें मर्दन कर १ रत्ती प्रमाण वटी बना कर रखना। अतिसार, ज्वरातिसार, ग्रहणी, अग्निमान्द्य व अजीर्ण रोगमें प्रयोग करना चाहिए।

**इच्छाभेदी रस**—सोंठ, मिर्च, पारा, गन्धक व सुहागेकी खील प्रत्येक १ तोला, जमालगोटेके बीज ३ तोला, सबको पानीसे पीस कर २ रत्ती प्रमाण वटी बना कर रखना। अनुपान—चीनीका सर्बत।

**एलादि गुडिका**—इलायची छोटी १ तोला, तेजपात १ तोला, दालचीनी १ तोला, पीपल ४ तोला, चीनी, मुलेठी, पिण्डखजूर व किसमिस प्रत्येक ८ तोला, इन सबके चूर्ण शहद मिला कर पीस कर बेर प्रमाण वटी बना कर रखना। रक्तपित्त, कास, श्वास, ज्वर, हिक्का, वमन आदिमें प्रयोग करना चाहिए।

**कण्टकारी घृत**—घी ४ सेर। क्वाथके लिए कटेली ८ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। कल्कके लिये—रायसन, खरेटी, त्रिकटु व गोखरू मिलित १ सेर। यथाविधि पकाना चाहिये।

**कदल्यादि घृत**—घी ४ सेर क्वाथके लिये केलेके फूल १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। कल्कके लिए लालचन्दन, सरलकाष्ठ, जटामांसि, केलेकी जड़, इलायची, लौंग, हरड़, बहेड़ा, आमला, कैत-बेलके फल, कमलकी जड़, नीलोफरकी जड़, कसेरुकी जड़, सिंघाड़ेकी जड़, बड़, गूलर, पीपल, चिरौंजी, पिलखन, बेंत, आम, जामुन,

छोटा जामुन, बेर, महुआ, तेन्दू, अर्जुन, कैंडू, कुटकी, कदम, शिरीष व ढाक, प्रत्येक १ तोला।

**कनकसुन्दर रस**—सिंगरफ, मिर्च, गन्धक, पीपल, सुहागेकी खील, मीठातेलिया व धतूरेके बीज प्रत्येक समान भाग भांगके पत्तोंके भीगे जलमें मर्दन कर चने प्रमाण वटी बना कर रखना।

**कन्दर्पसार तैल**—सरसोंका तेल ४ सेर। क्वाथके लिये सतोनेकी छाल, कालेईखकी जड़, गिलोय, नीमकी छाल, सिरसकी छाल, कड़वा परवल ( वा बकायनकी छाल ), जयतके पत्ते, कड़ुवा तुंबा, इन्द्रायणकी जड़, व हल्दी इनमेंसे प्रत्येक ८० तोला लेना, पकानेके लिये जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। कसौंदीके पत्ते, भांगरा, जयन्तीके पत्ते, धतूरेके पत्ते, हल्दी, भाँगके पत्ते, व चीतेके पत्ते, खजूरके पत्ते, आँकके पत्ते व थूहरके पत्ते इन प्रत्येकका रस ४-४ सेर, गोबरका रस ४ सेर। कल्कके लिये माकाल ( बं० ), वच, ब्राह्मी, कड़ुवातुंबा, चीतेकी जड़, घिगुआर ( कोई २ हंसपदी वा घरका धुँआ लेते हैं ) कुचला, पटोलपत्र, हल्दी, नागरमोथा, पीपलामूल, अमलतासके पत्ते, आँकका दूध, काली कसौंदीकी जड़, कलिहारीकी जड़, आलकी जड़, मंजीठ, बकायन, इन्द्रायणकी जड़, चिछवा घासके पत्ते, करंजवेकी जड़, अष्टपादिका, मुर्वेकी जड़, सतोनेकी छाल, कुड़ेकी छाल, नीमकी छाल, बकायनकी छाल, गिलोय, बावचीके बीज ( बावचीके बीज २ भाग ) पवाड़के बीज, धनिया, भंगरा, मुलेठी, बनका जिमीकन्द, कुटकी, कचूर, दारुहल्दी, निशोथ, पखाख, गठवन ( ग्रन्थिपर्ण ), अगर, कूठ, जटामांसी, मुरामांसी, इलायची, कांसेकी छाल, खशकी जड़ प्रत्येक २ तोला। तैल पाक विधिसे पकाना।

**कफकेतु रस**—शंखभस्म, सोंठ, पीपल, मिर्च व सुहागेकी खील, प्रत्येक एक एक भाग, मीठातेलिया शुद्ध ५ भाग। अद्रकके रसमें ३ बार मर्दन कर १ रत्ती प्रमाण वटी बना कर रखना। सब प्रकारके कफ रोगोंमें और श्वास, कास, पीनस व शिरोरोगमें प्रयोग करना चाहिये।

**कर्पूर रस**--शुद्ध सिंगरफ, अफीम, नागरमोथा, इन्द्रजौ, जायफल व कपूर प्रत्येक समान भाग लेकर पानीमें पीस कर २ रत्ती प्रमाण वटी बना कर रखना। कोई २ इस औषधिमें एक भाग सुहागेकी खील भी डालते हैं। प्रबल अतिसार, ज्वरातिसार व रक्तातिसारमें प्रयोग करना चाहिये।

**कल्पलता वटी**--शुद्ध मीठातेलिया, शुद्ध सिंगरफ व शुद्ध धतूरेके बीज प्रत्येक १२ रत्ती, अफीम ३६ रत्ती लेकर दूधमें मर्दन कर १ रत्ती प्रमाण वटी बना कर रखना। ग्रहणीयुक्त शोथरोगमें व्यवहार करना चाहिये।

**कल्याण सुन्दर रस**--रस सिन्दूर, अभ्रकभस्म, चाँदीभस्म, ताम्रभस्म, स्वर्णभस्म व शुद्ध सिंगरफ प्रत्येक समान भाग लेना। चीतेके रसमें १ दिन मर्दन कर हाथी सुंडीके रसकी ७ दिन भावना देकर १ रत्ती प्रमाण वटी बना कर रखना।

**कांकायन गुड़िका**--कचूर, कूठ, दन्तीकी जड़, चीतेकी जड़, अरहर, सोंठ, बच, निशोथ प्रत्येक ८ तोला, हींग २४ तोला जवाखार १६ तोला, अम्लवेत १६ तोला, अजवायन, सुफेदजीरा, मिर्च व धनिया प्रत्येक २ तोला, कालाजीरा व अजमोद प्रत्येक ४ तोला, इन सब चीजों के चूर्णको खट्टे नीम्बूके रसमें मर्दन कर ४ माशा प्रमाण वटी बना कर रखना।

**कामेश्वर मोदक**--आमला, सेंधानमक, कूठ, कायफल, पीपल, सोंठ, अजवायन, अजमोद, मुलैठी, जीरा, कालाजीरा, धनिया, कचूर, काकड़ाश्रृङ्गी, बच, नागकेशर, तालीशपत्र, दालचीनी, तेजपात, इलायची, कालीमिर्च, हरड़ व बहेड़ा प्रत्येकका चूर्ण समान भाग सबके समान थोड़ासा भुनी हुई बीजोंके समेत भांगका चूर्ण और इस सारे चूर्णसे दूनी चीनी। पहिले पकानेके योग्य पानी डाल कर चीनीको पकाना, गाढ़ा होने पर उसमें ऊपर लिखा हुआ आमले आदिका चूर्ण मिला देना। पाक समाप्त होने पर उसमें थोड़ा २ घी व शहद मिला

कर मोदक तैय्यार करना चाहिए। तदनन्तर भूने हुए तिलका चूर्ण व कपूर छिड़क कर उसे सुगन्धित करना चाहिये। ग्रहणी, कास, श्वास आदि विविध रोगोंमें प्रयोग करना चाहिए। यह बल वीर्य व रति-शक्तिको बढ़ाता है।

**कासलक्ष्मीविलासरस**—वङ्ग, लोहा, अभ्रक, ताँबा, काँसी-भस्म, शुद्धपारा, शुद्धगन्धक व शुद्ध हरताल प्रत्येक ८ तोला, खपरिया ४ तोला एकत्र कशेरूके रस व कुलथी काथमें तीन दिन तक भावना देना। तदनन्तर उसमें इलायची, जायफल, तेजपात, लौंग, अजवायन, जीरा, त्रिकटु, त्रिफला, तगर, दालचीनी व वंशलोचन प्रत्येक २ तोला प्रमाण मिलाकर पुनर्वार कशेरूका रस व कुलथीके क्वाथमें मर्दन कर चने प्रमाण वटी बनाकर रखना।

**किरातादि तैल**—मूर्छित सरसोंका तेल ४ सेर, दहीका माड ४ सेर, चीतेका काथ ४ सेर। कल्कके लिये—मूर्वाकी जड़, लाख, हल्दी, दारुहल्दी, मंजीठ, इन्द्रायणकी जड़, नेत्रबाला, कूठ, रायसन, गजपीपल, सोंठ, पीपल, कालीमिर्च, पाठा, इन्द्रजौ, सेंधानमक, सौंचल नमक, बिट्नमक अडूसेकी छाल, सुफेद आँककी जड़, काला अनन्त मूल, देवदार, माकाल फल सब मिलित १ सेर। तैल पाक विधिसे पकाना। सब प्रकारके पुराने ज्वर और ग्रहणी, अतिसार, कामला, पाण्डु, शोथ, प्लीहा आदि उपद्रवोंमें प्रयोग करना चाहिए।

**कीटारि रस**—पारा, गन्धक, इन्द्रजौ, अजमोद, मनशिल, ढाक के बीज व गन्धक इन सब चीजोंको हँसपदीके रसमें एक दिन तक मर्दन कर १ रत्ती प्रमाण वटी बनाकर रखना।

**कुब्जप्रसारण तैल**—तेल १६ सेर। क्वाथके लिए—प्रसारणी १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, दूध ३२ सेर। कल्क द्रव्य—चीते की जड़, पीपलामूल, मुलेठी, सेंधा नमक, बच ( कोई २ खरैटी लेते हैं ), सोया, देवदार, रायसन, गजपीपल, प्रसरनकी जड, जटामाँसी, भिलावा प्रत्येक २ तोला। तैलपाक विधिसे पकाना।

**कुशावलेह**—कुश, कांस, गाण्डर, काला ईख, सागवा ईख इनकी जड़ प्रत्येक १० पल, जल ६४ सेर, शेष ८ सेर। इस क्वाथको छान कर उसमें २ सेर चीनी डालकर पकाना। गाढ़ा होने पर उतार कर उसमें मुलेठी, ककड़ीके बीज, पेठेके बीज, फूटके बीज, वंशलोचन, आमला, तेजपात, दाल चीनी, इलायची, नागकेशर, बरनेकी छाल, गिलोय व फूलफिरंग प्रत्येकका चूर्ण २ तोला प्रक्षेप देकर अच्छी तरह मिलाकर रखना।

**कुष्माण्ड खण्ड**—छिलका और बीज रहित पुराना पेठेका गूदा थोड़ासा पानी डालकर अस्विन्न ( उबाल ) कर व बारीक कपड़ेमें छानकर इसको धूपमें सुखाकर व शिलामें पीसकर ३ सेर २ छटाँक लेकर १ सेर घी डालकर भूनना, जब भूनते २ लाल होजाय तब उसमें पेठेका पानी ४ सेर और चीनी ६ सेर २ छटाँक डालकर पकाओ। आसन्न पाक होनेपर पीपल, सोंठ, जीरा प्रत्येकका चूर्ण ४ तोला, दालचीनी, इलायची, तेजपात, कालीमिर्च व धनिया प्रत्येकका चूर्ण १ तोला प्रक्षेप देकर अच्छी तरहसे मिला देना। तदनन्तर उतार कर शीतल होने पर इसमें आध सेर ( ऽ॥ ) शहद मिलाकर बोयाममें भर कर रखना। इसको रक्तपित्त, कास, श्वास, यक्ष्मा प्रभृति रोगोंमें प्रयोग करना चाहिए।

**क्रिमिमुद्गर रस**-पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, अजवायन ३ भाग, वायविडङ्ग ४ भाग, शुद्ध कुचला ५ भाग व ढाकके बीज ६ भाग इनका चूर्ण एकत्र मिलाकर रखना। मात्रा-१ माशासे ४ माशा तक।

**क्षयकेशरी रस**—त्रिकटु, त्रिफला, इलायची, जायफल, लौंग, प्रत्येक १ तोला, रससिन्दूर ४॥ तोला। बकरीके दूधमें पीसकर २ रत्ती प्रमाण वटी बनाकर रखना। क्षयरोगमें प्रयोग करना चाहिए।

**क्षीर कल्याण घृत**—क्षीर कल्याण व पानीय कल्याण घृत प्रायः एक प्रकारके हैं, विशेषता यह है-क्षीर कल्याण घृतमें घीसे दूना जल

व चौगुना दूध डालकर पकाते हैं। कल्क द्रव्य दोनोंके एक समान होते हैं। ( पानीय कल्याण घृत देखो )

**क्षीरषट्पलक घृत**—घी ४ सेर, दूध १६ सेर ( कोई कोई ४ सेर डालनेको कहते हैं ) कल्कके लिये-पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीते की जड़, सोंठ व जवाखार प्रत्येक ८ तोला।

**खण्डकाद्य लौह**—शतावर, गिलोय, अडूसेकी छाल, मुण्डी, खरेटी, मुसली, खैरकी लकड़ी, बीज रहित त्रिफला, भारंगी, कूठ, प्रत्येक १० तोला। पकानेके लिये-जल १६ सेर, शेष ४ सेर। इस काथमें लोहेकी भस्म २४ तोला, चीनी ३२ तोला, घी ३२ तोला, मिला कर पकाना चाहिए। गाढ़ा होने पर उसमें वंशलोचन, शिलाजीत दालचीनी, काकड़ासिंगी, बायविडङ्ग, पीपल, सोंठ व कालाजीरा प्रत्येकका चूर्ण २ तोला और त्रिफला, धनिया, तेजपात, कालमिर्च व नागकेशर प्रत्येकका चूर्ण १ तोला प्रक्षेप देकर पाकशेष करना चाहिए शीतल होनेपर आधसेर ( ऽ॥ ) शहद मिलाकर रखना चाहिए। रक्त पित्त, वातरक्त, कुष्ठ, कास, अम्लपित्त, खून गिरना, शोथ व प्लीहा आदि रोगोंमें प्रयोग करना चाहिए।

**खण्डामलकी**—अच्छी तरह उबाला हुआ व कपड़ेमें निष्पीड़ित ( छाना हुआ ) पेठेका गूदा ६। सेर, २ सेर घीमें भूनकर लेना चाहिए। तदनन्तर आमलेका रस ४ सेर, पेठेका रस ४ सेर और चीनी ६। सेर एकत्र मिलाकर व छानकर लेना चाहिए। इस रसमें ऊपर लिखा हुआ घीमें भूना हुआ पेठा यथाविधि पकाना चाहिए। करछीसे उसको बारम्बार हिलाना चाहिए, नहीं तो तलेमें जमकर जल जाता है। पाकशेष होनेपर ठण्डा होजाने पर शहद १ सेर और पीपल, जीरा व सोंठ प्रत्येकका चूर्ण १६ तोला, कालीमिर्चका चूर्ण ८ तोला, तालीशपत्र, धनिया, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर व नागरमोथा प्रत्येकका चूर्ण १६ तोला मिलाकर अमृतबानमें भरकर रखना चाहिए।

**खदिरादि वटिका**—खैरकी लकड़ी १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष ८ सेर। इस क्वाथमें जावित्री, कपूर, सुपारी, कंकोल व जायफल प्रत्येक ८ तोला प्रक्षेप देना चाहिए। पकाकर गोली बनाने लायक होनेपर मटर प्रमाण वटी बनाकर रखना।

**गन्धर्व हस्ततैल**—एरण्डका तेल ४ सेर। क्वाथके लिए-एरण्ड की जड़, १२॥ सेर, सोंठ १२॥सेर औ ८ सेर। प्रत्येकके पकानेके लिये जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, दूध १६ सेर। कल्कके लिये--एरण्डकी जड़ ३२ तोला और अद्रक २४ तोला।

**गर्भ चिन्तामणि रस**—रससिन्दूर, चाँदीकी भस्म, लोहेकी भस्म प्रत्येक २ तोला, अभ्रकभस्म ४ तोला, कपूर, वङ्गभस्म, ताम्रभस्म, जायफल, जावत्री, गोखरूके बीज, शतावर, खरेटी व गंगेरनकी जड़ प्रत्येकका चूर्ण १ तोला। पानीमें पीसकर २ रत्ती प्रमाण वटी बनाकर रखना।

**गर्भपीयूष वल्ली रस**—शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, सोनेकी भस्म, लोहेकी भस्म, चाँदीकी भस्म, सोनामक्खी भस्म ( मतान्तरमें-रूपामक्खी भस्म ), शुद्धहरताल, वङ्गभस्म व अभ्रकभस्म प्रत्येक १-१ तोला लेकर, ब्राह्मी, अडूसा, भाँगरा, पित्तपापड़ा व दशमूल इनके रसमें ७-७ बार करके पृथक् २ भावना देकर १ रत्ती प्रमाण वटी बनाकर रखना।

**गुड़ पिप्पली**—गुड़ १२॥ सेर, पीपल १२॥ सेर, हींग, त्रिकटु, सेंधानमक, चीता, बिडनमक, जवाखार, सज्जीखार, चिरचिटेका खार, ताड़की जटाका क्षार, तालमखानेका खार, इमलीका खार, समुद्रफेन व थूहरका दूध प्रत्येक ४ तोला। सबका चूर्ण कर कूट छानके मिला कर रखना।

**गुडूची तैल**—तिलका तेल ४ सेर। गिलोयका क्वाथ १६ सेर (गिलोय १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर) गिलोयका कल्क १ सेर। यथाविधि पकाना चाहिये।

**गुडूच्यादि लौह**—गिलोयका सत्, त्रिफला, त्रिकटु, त्रिमद,

( वायविडंग, चीतेकी जड़, नागरमोथा ) प्रत्येकका चूर्ण १ तोला, लोहेकी भस्म १० तोला। जलसे मर्दन कर ६ रत्ती प्रमाण वटी बना कर रखना।

**गुल्मकालानल रस**—शुद्धपारा, गन्धक, हरताल, तांबेकी भस्म, सुहागेकी खील व लोहेकी भस्म प्रत्येक २ तोला, जवाखार १० तोला, नागरमोथा, पीपल, सोंठ, कालीमिर्च, गजपीपल, हरड़, बच, कूठ प्रत्येकका चूर्ण १ तोला लेकर पित्तपापड़ा, नागरमोथा, सोंठ, चिरचिटा व पाठके काथकी भावना देकर रखना। मात्रा-४ रत्ती।

**ग्रहणी कपाट रस**—शुद्धपारा, गन्धक, जायफल, लौंग प्रत्येक ६ माशा, इन सब द्रव्योंको कुलहुल, बेलके पत्ते व सिंघाड़ा इन प्रत्येकके रसमें यथाक्रमसे भावना देकर २ रत्ती प्रमाण वटी बना कर रखना। यह ग्रहणी, अतिसार शोथ व पाण्डुरोगमें प्रयोग करना चाहिये।

**ग्रहणी शार्दूल वटिका**—जायफल, लौंग, जीरा, कूठ, सुहागेकी खील, बिड्‌नमक, दालचीनी, इलायची, धतूरेके बीज व अफीम प्रत्येक १ तोला लेकर प्रसारणीके रसमें मर्दन कर २ रत्ती प्रमाण वटी बना कर रखना। ग्रहणी अतिसार व प्रवाहिका रोगमें प्रयोग करना चाहिए।

**घोरनृसिंह रस**—ताम्रभस्म १ भाग, लौहभस्म २ भाग, वङ्गभस्म ३ भाग, अभ्रकभस्म ४ भाग, सोनामक्खी भस्म १ भाग, शुद्ध पारा १ भाग, गन्धक १ भाग, शुद्ध मनशिल १ भाग, काले सर्पका विष ४ भाग, त्रिकटु सब मिला कर ४ भाग, शुद्ध कुचला २२ तोला व शुद्ध मीठा तेलिया ८८ भाग। इन सब चीजोंको रोहित मत्स्य, महिष, मोर व सुअर इनके पित्तसे व चीतेके रसमें अच्छी तरह मर्दन कर सरसोंके बराबर वटी बना कर रखना।

**चक्री ( चाकी )**—शुद्ध मीठातेलिया, कालीमिर्च, शुद्ध हरताल, पारा, गन्धक, जमालगोटा, दन्तीकी जड़ व पीपल प्रत्येक समान भाग। अदरकके रसमें मर्दन कर १ रत्ती प्रमाण वटी बना कर रखना।

**चण्डेश्वर रस**—शुद्धपारा, गन्धक, मीठातेलिया व ताम्रभस्म

प्रत्येक समान भाग अद्रकके रसमें ७ बार और सम्हालूके रसमें ७ बार भावना देकर १ रत्ती प्रमाण गोली बना कर रखना। ( दो तीन बार भावना देनेसे भी काम चल सकता है )।

**चतुर्मुख रस**—शुद्ध पारा, गन्धक, लोह भस्म व अभ्रक भस्म प्रत्येक १ तोला, स्वर्णभस्म २ माशा। इन सब चीजोंको घीगुआरके गूदेके साथ मर्दन कर एरण्डके पत्तोंके बीचमें रख कर और अच्छी तरहसे बाँध कर तीन दिन तक धानके ढेरके बीचमें दबा कर रखना। तदनन्तर निकाल कर १ रत्ती प्रमाण वटी बना कर रखना।

**चन्दनादि तैल** तेल ८ सेर। क्वाथके लिए भारंगी, अडूसेकी छाल, कटेली, खरैटी व गिलोय सब मिला कर १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। कल्कके लिए सुफेदचन्दन, अगर, तालीशपत्र, नखी, मंजीठ, पद्माख, नागरमोथा, कचूर, लाख, हल्दी व लालचन्दन प्रत्येक ८ तोला। क्वाथके साथमें ही कल्कको पकाना चाहिए। कल्कके पक आने पर शिलारस, केशर, नखी, सुफेदचन्दन, कपूर, इलायची व लौंग इन सब गन्ध द्रव्योंको डाल कर गन्धपाक करना।

**चन्दनादि लोह**—लालचन्दन, नेत्रबाला, पाठा, खश, पीपल, हरड़, सोंठ, नीलोफर, आमला, नागरमोथा, चीतेकी जड़ व वाय-विडङ्गका चूर्ण प्रत्येक १ तोला, लोहभस्म १२ तोला लेकर पानीसे पीस कर २ रत्ती प्रमाणवटी बना कर रखना।

**चन्द्रकान्त रस**—रससिन्दूर, अभ्रक, लोहा, व ताम्रभस्म, गन्धक समान भाग लेकर थूहरके रसके साथ मर्दन कर १ माशा ( १ रत्ती अ० वा० ) प्रमाण वटी बना कर रखना।

**चन्द्रप्रभा गुटिका**—वायविडंग, चीतेकी जड़, त्रिकटु, त्रिफला, देवदारु, चव्य, चिरायता, पीपलामूल, नागरमोथा, कचूर, वच, सोना-मक्खी, सेंधानमक व सौंचलनमक, जवाखार, सज्जीखार, हल्दी, दारुहल्दी, धनिया, गजपीपल व अतीस प्रत्येक २ तोला, शुद्ध शिला-जीत ६४ तोला, शुद्ध गुग्गल १६ तोला, लोहभस्म १६ तोला चीनी

३२ तोला, वंशलोचन ८ तोला, दन्तीकी जड़ व निशोथ ८ तोला और दालचीनी, तेजपात, इलायची मिला कर ८ तोला लेकर जलके साथ पीस कर ४ रत्ती प्रमाण वटी बनाकर रखना। वृद्धवैद्य लोग इस औषधिमें ४ तोला शुद्धपारा व ४ तोला शुद्ध गन्धक (कज्जली) अथवा केवल रससिन्दूर ८ तोला डालनेका उपदेश करते हैं। कोई कोई ४ तोला अभ्रक भी डालते हैं। सब प्रकारके अर्शरोग (बवासीर) व प्रमेह आदिमें प्रयोग करना चाहिए।

**चन्द्रशेखर रस**—पारा १ भाग, गन्धक १ भाग, कालीमिर्च १ भाग, सुहागेकी खील १ भाग, सबके समान शुद्ध मनशिल लेकर रोहित मछलीके पित्तकी भावना देकर २ रत्ती प्रमाण वटी बना कर रखना।

**चन्द्रामृत रस**—त्रिकटु, त्रिफला, चव्य, धनिया जीरा, सेंधा-नमक, प्रत्येकका चूर्ण १ तोला, कज्जली ४ तोला, लोहभस्म २ तोला, सुहागेकी खील ८ तोला, कालीमिर्च ४ तोला, बकरीके दूधमें पीस कर ८। ९ रत्ती प्रमाण वटी बना कर रखना। सब प्रकारकी खाँसी, श्वास, रक्तष्ठीवन (खून थूकना), ज्वर, पाण्डु व क्रिमि आदिमें प्रयोग करना चाहिए।

**चन्द्रोदयावर्ती**—हरड़, वच, कूट, पीपल, कालीमिर्च, बहेड़े की गिरी, शंखनाभि भस्म व मनशिल इन सबको समान भाग लेकर बकरीके दूधमें पीसकर बत्ती बनाकर रखना।

**चातुर्थकारि रस**—कज्जली २ तोला, लोहभस्म, अभ्रकभस्म व शुद्ध हरताल प्रत्येक १ तोला, सोनेकी भस्म ६ माशा लेकर काला धतूरा व मौलसिरीके रसमें मर्दन कर २ रत्ती प्रमाण वटी बना कर रखना।

**चिन्तामणी चतुर्मुख**—रससिन्दूर २ तोला, लोहभस्म १ तोला, अभ्रकभस्म १ तोला, सोनेकी भस्म ६ माशा लेकर घिगु-वारके रसमें मर्दन कर एरण्डके पत्तोंमें लपेट कर धानके ढेरमें तीन

दिन तक दबाकर रखना। तदनन्तर वहांसे निकाल कर २ रत्ती प्रमाण वटी बनाकर रखना।

**चैतसघृत**—घी ४ सेर। क्वाथके लिए—खम्भार को छोड़कर दशमूलकी और नौ चीजें और रास्ना, एरण्डकी जड़, निशोथकी जड़ खरेटी, मूर्वाकी जड़ व शतावर प्रत्येक १६ तोला, पकानेके लिए जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। कल्कके लिए पानीय कल्याण घृतमें कहे हुए २८ द्रव्योंमेंसे प्रत्येक २ तोला। जल १६ सेर दूध आदि भी पानीय कल्याण घृतके अनुसार डालना।

**च्यवनप्राश**—बेलकी जड़की छाल, अरणीके जड़की छाल, सोनापाठाकी छाल, खम्भारीकी छाल, पाढलकी छाल, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, पीपल, गोखरू, बड़ी कटेली, कटेली काकड़ासिंगी भुईआमला, दाख, जिवन्ती, कूठ, काला अगर, हरड़, गिलोय, ऋद्धि, जीवक, ऋषभक, कचूर, नागरमोथा, पुनर्नवा, मेदा, छोटी इलायची नीलोफर, लालचन्दन, विदारिकन्द, अडूसेकी जड़, काकोली व काकजंघा, ये सब प्रत्येक ८ तोला, ढीले करके पोटलीमें बाँधे हुए आमले गिनतीके ५०० (या ऽ७॥–छटाँक) लेकर इन सबको ६४ सेर पानी डालकर पकाना १६ सेर पानी बाकी रहने पर उतार कर क्वाथ छान लेना चाहिए और पोटलीमें बँधे हुए आमलोंका खोलकर उनके बीज अलग निकाल कर घी ६ पल व तेल ६ पलमें थोड़ासा भूनकर सिल बट्टेसे अच्छी तरहसे बारीक पीस लेना चाहिए। तदनन्तर मिश्री ५० पल लेकर ऊपर लिखित क्वाथका पानी व आमलेकी लुगदी सब को मिलाकर पकाना चाहिए। लेह (चटनी) के समान गाढा होने पर उसमें वंशलोचन ४ पल, पीपल २ पल, दालचीनी २ तोला, तेजपात २ तोला, इलायची २ तोला, नागकेशर २ तोला इन सबका चूर्ण प्रक्षेप देकर और अच्छी तरह मिलाकर उतार देना चाहिए। शीतल होने पर उसमें शहद ६ पल मिलाकर अमृतबानमें भरकर रखना चाहिए। मात्रा–२ तोला।

छागलाद्यघृत–घी ४ सेर। खस्सी बकरेका मांस ऽ६। सवा छे सेर, दशमूल ऽ६। सेर, पकानेके लिए जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। दूध ४ सेर, शतावरका रस ४ सेर। कल्कके लिए जीवनीय वर्ग अर्थात् जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, महामेदा, मुद्गपर्णी, माषपर्णी जीवन्ती व मुलेठी सब मिलाकर १ सेर।

जलोदरारिरस–पीपल, मरिच, ताँबेकी भस्म, व हल्दीका चूर्ण इन सबको थूहरके दूधमें १ दिन मर्दनकर सब चूर्णके समान भाग मिलाकर शीशीमें भरकर रखें। मात्रा–४ माशा।

जीरकाद्यमोदक–जीरा १ सेर, सोंठ ऽ।= छैः छटाँक, धनियाँ ऽ।= छैः छटाँक, सौंफ, अजवायन व कालाजीरा प्रत्येक ८ तोला, दूध ८ सेर, चीनी ६। सेर, घी १ सेर। इन सबको मृदु अग्निके तापमें यथाविधि पकाना। आसन्न पाकके समय त्रिकटु, दालचीनी, तेजपात इलायची, वायविडंग, चव्य, चीतेकी जड़ नागरमोथा व लौंग प्रत्येक ८ तोला प्रक्षेप देकर पाकशेष करके शीतल होनेपर मोदक बनाकर रखना

ज्वर कुञ्जरपारीन्द्र रस–शुद्ध पारा २ तोला, अभ्रक भस्म १ तोला और शुद्धगन्धक, चाँदीकी भस्म, सोनामक्खी भस्म, रसौत, खपरियाभस्म, ताम्रभस्म, मुक्ता भस्म, प्रवाल भस्म, लौह भस्म, शिलाजीत, गेरुमिट्टी, शुद्ध मनशिल व स्वर्णभस्म प्रत्येक ४ तोला। एक साथ मिलाकर खिरणी, तुलसीके पत्ते, सोंठ, अरणि, भुंई आमला जंगली तोरई चिरायता, गिलोय, कलिहारी, मालकंगनी, मुद्गपर्णी, व शालपर्णी इन प्रत्येकके रसमें ३-३ बार भावना देकर ४ रत्ती प्रमाण वटी बनाकर रखना सब प्रकारके पुराने बुखार और श्वास, कास, प्रमेह, पाण्डु, आमला, ग्रहणी व क्षय आदि उपद्रवोंमें प्रयोग करना चाहिए।

ज्वरभैरव रस–सोंठ, पीपल, मिर्च, बहेड़ा, आमला, हरड़, सुहागेकी खील, मीठा तेलिया, शुद्ध गन्धक, पारा व जमालगोटा

प्रत्येक समान भाग लेकर गुड़के रसमें मर्दन कर १ रत्ती प्रमाण वटी बनाकर रखना।

**ज्वरमातङ्ग केशरी**—शुद्ध पारा, गन्धक, हरताल, सोनामक्खी भस्म, सोंठ, पीपल, मिर्च, हरड़, जवाखार, सज्जीखार, सेंधानमक, नीमके बीज, शुद्ध कुचला व चीतेकी जड़ प्रत्येक १-१ भाग, जमाल-गोटा शुद्ध २ भाग, मीठा तेलिया शुद्ध २ भाग लेकर सम्हालूके पत्तो के रसमें मर्दन कर १॥ रत्ती प्रमाण वटी बनाकर रखना।

**ज्वरहरवटी**—सीसा भस्म, शुद्ध हरताल, शुद्ध मीठा तेलिया, रससिन्दूर प्रत्येक समान भाग लेकर पानीसे पीसकर सरसों प्रमाण वटी बनाकर रखना।

**ज्वराङ्कुश**—शुद्ध पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, सुहागेकी खील २ भाग, शुद्ध मीठातेलिया १ भाग, कालीमिर्च ५ भाग, कायफल ५ भाग, दन्तीके बीज ५ भाग लेकर जलमें मर्दन कर मटर प्रमाण वटी बनाकर रखना।

**ज्वरान्तक रस**—ताम्र भस्म, शुद्ध गन्धक, पारद, सौराष्ट्रमृत्तिका सोनामक्खी भस्म, लौह भस्म, शुद्ध हिंगुल, अभ्रक भस्म, स्वर्णभस्म व रसौत प्रत्येक समान भाग लेकर भूनिम्बादि गणके क्वाथके साथ भावना देकर १ रत्ती प्रमाण वटी बनाकर रखना। भूनिम्बादिगण-चिरायता, देवदार, सोंठ, नागरमोथा, कुटकी, इन्द्रजौ, धनिया, गज-पीपल व दशमूलकी दश चीजें।

**ज्वरारिरस**—शुद्ध हिंगुल, गन्धक, पारा ताम्र भस्म, सीसाभस्म अभ्रक भस्म, सुहागेकी खील, विड़ नमक व शुद्ध मनशिल लेकर १० दिन तक अमलतासके पत्तोंके रसकी भावना देकर १ रत्ती प्रमाण वटी बनाकर रखना।

**ज्वराशनिरस**—पारा, गन्धक, सेंधानमक, मीठातेलिया व ताम्र-भस्म प्रत्येक समान भाग, सबके समान लौहभस्म; लौहभस्मके समान

भाग अभ्रक भस्म लेकर लोहेके खरलमें लोहेकी मुसलीसे सम्हालूक पत्तोंके रसमें मर्दन कर उसमें पारेके समान भाग अर्थात् १ भाग कालीमिर्चका चूर्ण मिलाकर पुनर्वार अच्छी तरहसे मर्दन कर १ रत्ती प्रमाण वटी बनाकर रखना। पुराना बुखार और जिगर, तिल्ली, गुल्म, उदर, शोथ, कास व श्वास रोगमें प्रयोग करना चाहिए।

**तरुण ज्वरारि**—जमालगोटा, पारा, गन्धक, मीठातेलिया प्रत्येक समान भाग लेकर घीगुवारके रसमें मर्दन कर २ रत्ती प्रमाण वटी बनाकर रखना।

**तारकेश्वर रस**—रससिन्दूर, लोहभस्म बंगभस्म व अभ्रकभस्म प्रत्येक समान भाग शहदमें मर्दन कर १ माषा प्रमाण वटी बनाकर रखना।

**तारकेश्वर रस**—( मूत्रकृच्छ्र ) पारा, गन्धक, लोहभस्म, अभ्रक भस्म, धमासा, जवाखार, गोखरूके बीज व हरड़ इन सबको समान भाग लेकर पेठेके रसमें, कुशादि पंचतृणमूलके क्वाथमें व गोखरूके रसमें भावना देकर और अच्छी तरह पीसकर २ रत्ती प्रमाण वटी बनाकर रखना।

**तालीशादि मोदक वा चूर्ण**—तालीशपत्र १ तोला, कालीमिर्च २ तोला, सोंठ ३ तोला, पीपल ४ तोला, बंशलोचन ५ तोला, दालचीनी ६ माषा, इलायची ६ माषा, चीनी ऽ॥ आधसेर पहिले चीनी की चाशनी बनाकर उसमें तालीशपत्र आदिका चूर्ण डालकर यथाविधि पूर्वक मोदक तैयार कर रखना। कास, श्वास, अरुचि, पाण्डु, कामला, ग्रहणी, अतिसार, प्लीहा व शोथ आदिमें प्रयोग करना चाहिए। मोदक पाक न करके केवल चूर्णरूपसे भी व्यवहार किया जा सकता है।

**त्रिकट्वादि लोह**—त्रिकटु, त्रिफला, दन्तीकी जड़, चिरचिटा, वायविडंग, चीतेकी जड़, नागरमोथा, मूसीमली व पुनर्नवा प्रत्ये-

का चूर्ण समान भाग, सबके समान लोहकी भस्म एक साथ मर्दन कर रखना। उपयुक्त मात्रामें प्रयोग करना यह शोथ रोगकी महौषधि है

त्रिफलादि लौह- त्रिफला, नागरमोथा, त्रिकटु, वायविडंग, कूठ, वच, चीतेकी जड़ व मुलेठी प्रत्येकका चूर्ण ८ तोला, लोहेकी भस्म ६४ तोला, गुग्गल ६४ तोला, इन सब चीजोंको १६ तोला शहद के साथ मर्दन कर रखना।

त्रिफलाद्य घृत—घी ४ सेर। काथके लिए-त्रिफला ८ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। गौका दूध १६ सेर। कल्कके लिए—त्रिफला १ सेर। यथाविधि पकाना।

त्रैफलघृत—घी ४ सेर। काथके लिए-त्रिफलाकी प्रत्येक चीजें २ सेर अर्थात् सब मिलकर ६ सेर, जल ४८ सेर, शेष १२ सेर। दूध ४ सेर। कल्कके लिए-त्रिफला, त्रिकटु, दाख मुलेठी, कुटकी पुण्डरिया लकड़ी, छोटी इलायची, वायविडंग, नागकेशर नीलोत्पल, अनन्तमूल, श्यामलता, लालचन्दन, हल्दी व दारुहल्दी प्रत्येक २ तोला

त्रैलोक्यचिन्तामणि रस—रससिन्दूर ३ भाग, काले सर्पका विष २ भाग, मीठातेलिया ६ भाग, हरताल १ भाग और गोदन्ती हरतालभस्म, अभ्रकभस्म शुद्ध नीलाथोथा, मनशिल, गन्धक, सुहागेकी खील, जमालगोटा धतूरेके बीज, दन्तीकी जड़, कनेरकी जड़ व कलिहारी प्रत्येक १ भाग इन सब चीजोंको ढाककी जड़के रसमें ७ बार भावना देकर चीते जड़के क्वाथ, अदरकका रस, मछलीका पित्ता, मोर का पित्ता, भैंसका पित्ता, सुअरका पित्ता बकरेका पित्ता व साँपके पित्ते से क्रमशः दशबार भावना देकर धानके बराबर गोली बनाकर रखना।

त्र्यम्बकाभ्र रस—काला अभ्रक भस्म लेकर कटेली, खरेटी, गोखरू, घीगुवार, पीपलामूल, भंगरा अडूसा, बेरके पत्ते, आमला, हल्दी व गिलोय प्रत्येकके १ पल परिमाण रसमें पृथक् २ भावना देकर रखना। मात्रा-१ रत्ती प्रमाण।

त्र्याहिकारि रस—पारा, गन्धक, मनशिल, हरताल प्रत्येक एक

एक भाग, अतीस ४ भाग, लोहेकी भस्म २ भाग, चाँदीकी भस्म आधा भाग लेकर नीमकी छाल व कोयलके रसमें मर्दन कर ३ रत्ती प्रमाण वटी बना कर रखना।

**दुग्धवटी**–( १ ) मीठा तेलिया १२ रत्ती, अफीम १२ रत्ती, लोह-भस्म ६ रत्ती, अभ्रकभस्म ६० रत्ती लेकर दूधमें मर्दन कर २ रत्ती प्रमाण वटी बना कर रखना। विविध प्रकारके शोथ, ग्रहणी, पाण्डु व विषमज्वर आदिमें प्रयोग करना चाहिए।

**दुग्धवटी**–( २ ) पारा, गन्धक, मीठातेलिया, ताँबेकी भस्म, अभ्रक भस्म, लोहेकी भस्म, हरताल, सिंगरफ, संखिया व अफीम प्रत्येक समान भाग, दूधमें पीस कर आधा जौ प्रमाण वटी बनाकर रखना।

**दन्ती हरीतकी**–ढीली पोटली बँधी हुई हरड़ २५ नग, दन्तीकी जड़ ऽ३= तीन सेर २ छटाँक, चीतेकी जड़ ऽ३= पकानेके लिए जल ६४ सेर, शेष ८ सेर। इस काथमें ऽ३= पुराना गुड़ घोल कर छानना और पूर्वोक्त पोटलीमें बँधी हुई उबली हुई २५ हरड़ आध सेर तेलमें भून कर उनको इस काथमें पकाना। आसन्न पाक होने पर उसमें निशोथका चूर्ण ऽ॥ आध सेर, पीपलका चूर्ण ४ तोला व सोंठका चूर्ण ४ तोला प्रक्षेप देकर पाकशेष करना अर्थात् लेहके समान बना कर उतार देना। शीतल होने पर उसमें शहद ऽ॥ आध सेर और दाल-चीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर प्रत्येकका चूर्ण २ तोला मिला कर अमृतवानमें भर कर रखना।

**दाड़िमाद्य घृत**–घी ४ सेर। काथके लिए–अनारके बीज, वाय-विडंग, हल्दी, चव्य, जीरा, त्रिफला, सोंठ, पीपल, गोखरूके बीज, अजवायन, धनियाँ, अम्लवेत, पीपलामूल ( अथवा गजपीपल ), बेल-गिरि व सेंधानमक प्रत्येक २ तोला, पकानेके लिए जल १६ सेर।

**दीपिका तैल**–बड़े पञ्चमूलके आठ २ अंगुल नापके लकड़ीके टुकड़े साफ कपड़ेकी लीरोंसे अच्छी तरह लपेट कर व तेलमें भिगोकर जलाना। इससे जो तेलके बूँद गिरेंगे, उनको गरम करके कानोंमें डालना।

**दुर्वाद्यघृत**—लाल साठिचावल ४ सेर, जल १६ सेरमें मर्दन कर उस जलको छानके लेना। तदनन्तर यह जल १६, सेर बकरीका दूध १६ सेर और दुर्वा, कमलकेशर, मंजीठ, एलवा, चीनी, सुफेदचन्दन, खश नागरमोथा, लाल चन्दन व पद्माख प्रत्येक २ तोला परिमाण कल्कद्रव्य लेकर इनके साथ ४ सेर बकरीका घी यथाविधि पकाना। रक्तपित्त रोगमें और मुख नाक आदिसे रक्तके गिरनेमें प्रयोग करना चाहिए।

**दृष्टिप्रदावर्ति**—त्रिफला, मुर्गेके अण्डेके छिलके, हीराकसीस, लोहेकी भस्म, नीलोफर, वायविडंग, व समुद्रफेन, इन सबको ताँबेके बर्तनमें पीस कर ७ दिन तक बकरीके दूधकी भावना देकर फिर बकरीका दूध मिला कर वर्ति बना कर रखना।

**धात्री लौह**—आमलेका चूर्ण १ सेर, लोहभस्म ऽ॥ आध सेर, मुलेठीका चूर्ण ऽ। एक पाव, इन सबको आमलेके क्वाथमें (किसी २ के मतमें गिलोयके क्वाथमें) सातदिन सातबार भावना देना भावना के लिए—आमला ऽ१॥ सेर, पकानेके लिए जल १४ सेर, शेष ऽ३॥ सेर इस क्वाथसे भावना देनी चाहिए। तदनन्तर खूब तेज धूपमें सुखाकर और फिर बारीक पीसकर अमृतबानमें भर कर रखना।

**धात्रीषट्पलकघृत**—घी ४ सेर। आमलेका रस १६ सेर। कल्क के लिए—पीपल, पीपलामूल, चव्य चीतेकी जड़, सोंठ व जवाखार प्रत्येक १ पल। जल १६ सेर प्रक्षेपके लिए चीनी ऽ॥। बारह छटाँक व सेंधानमक ऽ। पाव।

**नवज्वरांकुश**—पारा १ भा०, गन्धक २ भा०, सिंगरफ ३ भाग, जमालगोटेके बीज ४ भाग, दन्तीकी जड़के क्वाथमें मर्दन कर १ रत्ती प्रमाण वटी बना कर रखना।

**नवज्वरारि रस**—पारा १ भा०, गन्धक २ भा०, मीठा तेलिया ३ भा०, सत्यानासीकी जड़ ४ भा०, जमालगोटा ५ भा०, कागजी निंबू के रसमें मर्दन कर मूँग प्रमाण वटी बनाकर रखना।

**नवायसचूर्ण**-त्रिकटु, त्रिफला, नागरमोथा, वायविडंग, चीते की जड़ प्रत्येक १ तोला, लोहभस्म ९ तोला लेकर पानीसे पीस कर ४ रत्ती प्रमाण गोली बना कर रखना। मात्रा १-९ रत्ती तक।

**नयनामृत रस**-रससिंदूर ४ भाग, सीसाभस्म ४ भा०, रसौत ८ भा०, कपूर १ भाग, इन सबको एक साथ पीस कर रखना। इसका अञ्जन करनेसे तिमिर व पटल आदि रोग नष्ट होजाते हैं।

**नारिकेल खण्ड**-पक्के नारियलकी गिरीको सिलबट्टेसे पीस कर और उसको कपड़ेमें छान कर उसको १ सेर लेकर २ छटाँक घीमें थोड़ासा भूनकर लेना। तदनंतर ४ सेर नारियलके पानीमें १ सेर चीनी घोल कर व छान कर उसमें पूर्वोक्त छानी हुई गिरी डाल कर पकाना। पाकशेष होने पर उसमें धनिया, पीपल, नागरमोथा, वंशलोचन, जीरा व कालाजीरा प्रत्येकका चूर्ण ६ माशा और दालचीनी, तेजपात, इलायची नागकेशर प्रत्येकका चूर्ण १ माशा प्रक्षेप देकर अच्छी तरह पर मिला कर अमृतबानमें भर कर रखना।

**नित्यानन्दरस**-हिंगुलोत्थपारा, गन्धक, ताम्रभस्म काँसीभस्म, वङ्गभस्म, हरताल, नीलाथोता, शंखभस्म, कौड़ीभस्म, त्रिकटू, त्रिफला लोहभस्म, वायविडंग, पाँचों नमक, चव्य, पीपलामूल, हाऊबेर, बच, कचूर, पाठा, देवदारु इलायची, विधायरेकी जड़, निशोथ, चीतेकी जड़, व दन्तीकी जड़ प्रत्येक समान भाग। हरड़के काथमें मर्दन कर ५ रत्ती प्रमाणवटी बना कर रखना।

**पञ्चतिक्तघृत**-घी ४ सेर। क्वाथके लिए-नीमकी छाल, पटोल-पत्र, कटेली, गिलोय, व अडूसेकी छाल प्रत्येक ८० तोला, पकानेके लिए जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। कल्कके लिए-मिलित त्रिफला १ सेर।

**पञ्चाननरस**-पारा, नीलाथोता, गन्धक, जमालगोटा, पीपल व अमलतासकी गिरी प्रत्येक समान भाग, थूहरके दूधकी भावना देकर रखना। मात्रा-२ रत्ती।

**पञ्चामृतपर्पटी**-गन्धक ८ तोला, पारा ४ तोला, लोहभस्म २

तोला, अभ्रक १ तोला, ताम्रभस्म ६ माशा-लेकर इन पाँच द्रव्योंको लोहेके बर्त्तनमें मर्दन कर लौंगपर्पटीके समान बनाना। त्रिविध प्रकार की संग्रहणी व ग्रहणीके त्रिविध प्रकारके उपद्रवोंमें प्रयोग करना चाहिये मात्रा २ रत्ती।

पंचामृत रस-पारा १ तोला, गन्धक १ तोला, सुहागेकी खील ३ तोला व कालीमिर्च ३ तोला लेकर पानीमें पीस कर १ रत्ती प्रमाण बटी बना कर रखना। शोथ, ज्वरातिसार, संयुक्त शोथ, जलोदर व शिरःशूल आदि रोगोंमें प्रयोग करना चाहिये।

पाठादि तैल-कड़वा तैल १ सेर। कल्कके लिये-पाठा, हल्दी, दारुहल्दी, मूर्वा, पीपल, आकके पत्ते व दन्तीकी जड़ सब मिला कर १६ तोला, जल ४ सेर।

पानीय कल्याण घृत-घी ४ सेर। कल्कके लिये-इन्द्रायणकी जड़, त्रिफला, रेणुक, देवदारु, एलवा, शालपर्णी, तगर, हल्दी, दारुहल्दी, श्यामालता, अनन्तमूल, फूलप्रियंगु, नीलीकुमुदिनी, इलायची, मंजीठ, दन्तीकी जड़, दाड़िमके बीज, नागकेशर, तालीशपत्र, बड़ी कटेली, चमेलीके फूल, वायविडंग, पृष्ठपर्णी, कूठ, लालचन्दन व पद्माख इन २८ द्रव्योंमेंसे प्रत्येक २ तोला, पकानेके लिये जल १६ सेर।

पानीय भक्त बटी-त्रिकटु, त्रिफला, नागरमोथा, निशोथ व चीतेकी जड़ प्रत्येक २ तोला, कज्जली १ तोला, लोहभस्म, अभ्रक भस्म, वायविडंग प्रत्येक ४ तोला लेकर त्रिफलाके क्वाथमें मर्दन कर ३। ४ रत्ती प्रमाण बटी बनाना।

पाराशर घृत-घी १६ सेर। मुलेठी, खरैटी, गिलोय व वृहत् पंचमूल मिलित १२॥ सेर, जल १२८ सेर, शेष १६ सेर, आमलेका रस १६ सेर, दूध ६४ सेर, कल्कके लिये-जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, मुलेठी, ऋद्धि व वृद्धि।

पाषाणभिन्न रस-पारा १ पल, गन्धक २ पल, शिलाजीत १ पल लेकर एकत्र मिला कर सुफेद पुनर्नवा, अडूसा व सुफेद कोयलके

रसमें एक एक दिन मर्दन कर व सुखा कर दोलायन्त्रमें स्वेदन करा कर रखना। मात्रा-२ रत्ती।

पुटपाक विषम ज्वरान्तक लौह—सिंगरफसे निकाला हुआ पारा १ तोला, गन्धक १ तोला इन दोनोंको अच्छी तरहसे कज्जली बना कर पर्पटीके समान पकाना चाहिये। इसके साथ सोना ३ माशा और लौहभस्म, अभ्रक भस्म व ताम्रभस्म प्रत्येक २ तोला, वङ्गभस्म सुनेरी गेरु मिट्टी व प्रवाल भस्म प्रत्येक आधा तोला, मोती भस्म, शंख व सीपकी भस्म प्रत्येक २ माशा, इन सब चीजोंको पानीके साथ पीस कर सीपीमें भरकर सीपीका उपरला हिस्सा कीचड़से बन्द करके इन सीपोंको २० । २५ उपलोंकी अग्निमें पुटपाक करना। शीतल होने पर औषधिको लेकर शीशीमें भर कर रखना। मात्रा-२ रत्ती। सब प्रकारके पुराने ज्वर और प्लीहा, यकृत्, गुल्म, कामला, पाण्डु, ग्रहणी, कास व श्वास आदि उपद्रवोंमें भी प्रयोग करना चाहिये।

पुनर्नवादि मण्डूर—शुद्ध मण्डूर ५ पल, पकानेके लिए गोमूत्र ५ सेर। आसन्न पाकके समय पुनर्नवा, निशोथ, सोंठ, पीपल, मिर्च, वायविडंग, देवदारु, चीतेकी जड़, कूठ, आमला, हरड़, बहेड़ा हल्दी, दारुहल्दी, दन्तीकी जड़, चव्य, इन्द्रजौ, कुटकी, पीपलामूल व नागरमोथा प्रत्येकका चूर्ण १ तोला लेकर प्रक्षेप देकर अच्छी तरहसे मिला कर रखना। मात्रा-४ माशा।

पुष्यानुग चूर्ण—पाठा, जामुनके बीजोंकी गिरी, आमके गुठली की गिरी, पाषाण भेद, रसौत, लक्ष्मणा ( सुफेद फूलकी कटेली ) धा पाठा, मोचरस, वराहक्रान्ता, कमलकेशर, काश्मीरी केशर, अतीस, नागरमोथा, वेलगिरि, लोध, गेरुमिट्टी, त्रिफला, कालीमिर्च, सोंठ, दाख, लालचन्दन, सोनापाठाकी छाल, कुड़ेकी छाल, अनन्तमूल, धायके फूल, मुलेठी व अर्जुनकी छाल इन सब द्रव्योंको समान भाग पुष्यनक्षत्रमें ग्रहण कर चूर्ण तैय्यार कर रखना। मात्रा-१-२ माशा तक।

**प्रताप मार्तण्ड रस**—मीठा तेलिया, [illegible] समान भाग लेकर पानीसे पीस कर १ रत्ती प्रमाण वटी बना कर रखना।

**प्रदरान्तक रस**—पारा, गन्धक, [illegible], शीशाभस्म, [illegible] भस्म व कौड़ी भस्म प्रत्येक ६ माशा, लोहभस्म ३ तोला इन सबको घिगुवारके रसमें १ दिन तक मर्दन कर २ रत्ती प्रमाण वटी बना कर रखना।

**प्रदरारि लौह**—कुड़ेकी छाल १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष ८ सेर। क्वाथको छान कर दूसरी बार पकाना। गाढ़ा होने पर वराहक्रान्ता, मोचरस, पाठा, बेलगिरी नागरमोथा, धायके फूल, अतीस, अभ्रक-भस्म व लोहभस्म प्रत्येक १ प्रक्षेप देकर १ रत्ती प्रमाण वटी बनाकर रखना

**प्रभाकर वटी**—सोनामक्खी, लोहा, अभ्रकभस्म, वंशलोचन व शिलाजीत समान भाग लेकर अर्जुनकी छालके क्वाथकी भावना देकर ४ रत्ती प्रमाण वटी बना कर रखना।

**प्रमेहमिहिर तैल**—तिलका तेल ४ सेर। क्वाथके लिए लोध ८ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर शतावरका रस ४ सेर, दूध ४ सेर, दहीका तोड़ १६ सेर। कल्कके लिये सोया, देवदारु, नागरमोथा, हल्दी दारुहल्दी, मूर्वाकी जड़, कूठ, असगन्ध, सुफेदचन्दन, लालचन्दन, रेणुक, कुटकी, मुलेठी, रायसन, दालचीनी, इलायची, भारंगी, चव्य, धनिया, इन्द्रजौ, करञ्जवेके बीज, अगर, तेजपात, त्रिफला, नालुका, नेत्रवाला, खरेटी, गोरखमुण्डी, मंजीठ, सरलकाठ, पद्माख, लोध, सौंफ, वच, जीरा, खश, जायफल, अडूसेकी छाल व तगर प्रत्येक २ तोला।

**प्रसारणी तैल**—एरण्डतैल ४ सेर, १६ सेर प्रसारणीके रसमें पका कर रखना।

**प्राणदा गुड़िका**—सोंठ ३ भाग, कालीमिर्च १ भाग, पीपल २ भाग, चव्य १ भाग, तालीशपत्र १ भाग, नागकेशर ४ भाग, पीपलामूल २ भाग, तेजपात १ भाग, छोटी इलायची २ भाग, दालचीनी १ भाग, खश १ भाग पुराना गुड़ २४० भाग लेकर मोदक पाक करना। सब प्रकारके

अर्श ( बवासीर ) और अग्निमान्द्य, विषमज्वर, पाण्डु, क्रिमि, हृद्रोग, शूल, मूत्रकृच्छ्र व श्वास आदिमें प्रयोग करना चाहिये।

**प्राणेश्वर रस**—पारा, गन्धक, अभ्रक भस्म, सुहागेकी खील, सोया, अजवायन, जीरा प्रत्येक २ तोला और जवाखार, हींग, पाँचों नमक, वायविडंग, इन्द्रजौ, राल व चीता प्रत्येक १ तोला लेकर जलमें मर्दन कर २ रत्ती प्रमाण वटी बनाकर रखना। अतिसार आदि उदर-रोगोंमें प्रयोग करना चाहिये।

**प्लीहान्तक रस**—ताम्र भस्म, चाँदी भस्म, अभ्रक, लोहा, मोती भस्म, सिंगरफ, रसौत, पारा, गन्धक, गुग्गल, त्रिकटु, रायसन, जमाल गोटेके बीज, त्रिफला, कुटकी, दन्तीकी जड़, बननोरईकी जड़, सेंधा-नमक, निशोथ व जवाखार इन सबको एरण्ड तेलमें मर्दन कर १ रत्ती प्रमाण वटी बना कर रखना।

**बङ्गेश्वर रस**—रससिन्दूर व बङ्ग भस्म समान भाग मिला कर पानीसे पीस कर २ रत्ती प्रमाण वटी बनाना।

**वज्रक्षार**—सामुद्र नमक, सेंधा नमक, कचकच्च नमक, सोंचल नमक, जवाखार, सुहागेकी खील व सज्जीखार इनका चूर्ण समान भाग लेकर थूहर व आँकके दूधमें ३ दिन तक मर्दन कर धूपमें सुखा कर उसको आँकके पत्तोंमें लपेट कर हाँडीमें भरकर और उसका मुख बन्द कर आँच देनी चाहिए। हाँडीके बीचकी औषधिके जलजाने पर आँचसे उतार कर ठण्डा होजाने पर औषधि निकालकर उसका चूर्ण करके उसमें त्रिकटु, त्रिफला, अजवायन; जीरा व चीता इनका चूर्ण समान भाग पूर्वोक्तके समान मिलाकर रखना। मात्रा १ तोला तक।

**बलागर्भ घृत**—घी १ सेर, दशमूलका क्वाथ ८ सेर, बकरेके माँसका क्वाथ ४सेर, दूध ४सेर। कल्कके लिए खरेटी कुटीहुई १सेर

**वसन्त कुसुमाकर रस**—स्वर्ण भस्म २ भाग, चाँदी भस्म २ भाग ( कोई २ चाँदीके बदले कपूर व्यवहार करते हैं ), बङ्गभस्म, सीसा भस्म, लोह भस्म प्रत्येक ३ भाग, अभ्रक भस्म, प्रवाल भस्म,

मुक्ताभस्म प्रत्येक ४ भाग इन सबको एकत्र पीस कर क्रमशः गौका दूध, ईखका रस, अडूसेकी छालका रस, लाखका क्वाथ, नेत्रबालाका क्वाथ, केलेकी जड़का रस, केलेके फूलोंका रस, कमलका रस, चमेली के फूलोंका रस, केशरका पानी व कस्तूरी इन सब चीजोंसे भावना देकर २ रत्ती प्रमाण वटी बनाकर रखना ।

**वसन्ततिलक रस**—सोना भस्म १ भाग, अभ्रक भस्म २ भाग लोह भस्म ३ भाग, पारा ४ भाग, गन्धक ४ भाग, बङ्ग भस्म २ भाग, मोती भस्म २ भाग, मूँगा भस्म २ भाग इन सबको एक साथ पीसकर गोखरू, अडूसा व ईखके रसमें मर्दन कर तदनन्तर आतशी शीशीमें भरकर बालुका यन्त्रमें उपलोंकी अग्निमें ७ पहर तक पकाना । शीतल होने पर औषधिको निकाल कर उसमें कस्तूरी ४ भाग व कपूर ४ भाग मिला कर पीसकर रखना । मात्रा-२ रत्ती ।

**वातगजांकुश रस**—पारा, गन्धक, लोहा, सोनामक्खी, हरताल, हरड़, काकड़ासिंगी मीठा तेलिया त्रिकटु, अग्निमन्थ, सुहागे की खील प्रत्येक समान भाग लेकर मुण्डीके रसमें १ दिन व सम्हालू के रसमें १ दिन मर्दन कर २ रत्ती प्रमाण वटी बनाकर रखना ।

**वातरक्तान्तक रस**—पारा, गन्धक, लोहा, मोती, * हरताल, मनशिल × शिलाजीत, गुग्गल, बायबिडङ्ग, त्रिफला, त्रिकटु, बावची पुनर्नवा, देवदारु, चीतेकी जड़, दारु हल्दी, चीतेकी जड़ व सुफेद कोयल प्रत्येक समान भाग लेकर त्रिफलाके क्वाथमें व भंगरेके रसमें यथाक्रमसे ३ बार भावना देकर उड़द प्रमाण वटी बनाकर रखना ।

**वासा कूष्माण्ड खण्ड**—अडूसेकी छाल २ सेर, पकानेके लिए जल १६ सेर, शेष ४ सेर । पुराने पेठका गूदा ऽ१॥= सेर, घी १ सेर

---

*जहाँ पर लोहा, सोना, मोती आदि सिर्फ लिखा हो वहाँ पर उनकी भस्म लेना ।

× जहाँ पर सिर्फ हरताल, मनशिल, पारा, गन्धक लिखा हो वहाँ पर शुद्ध लेना ।

में अच्छी तरह भूनकर उसमें इस अड्सेका क्वाथ ४ सेर, व चीनी ऽ३= सेर डालकर पकाना। आसन्न पाकके समय—नागरमोथा, आमला, वंशलोचन, भारंगी, दालचीनी तेजपात व इलायची प्रत्येक का चूर्ण ६ माषा व पीपलका चूर्ण ८ तोला प्रक्षेप देकर अच्छी तरह से मिलाकर उतारकर शीतल होनेपर उसमें ऽ। पाव शहद मिलाकर रखना। रक्तपित्त, कास, श्वास, क्षय, हिक्का, हृद्रोग, अम्लपित्त व पीनस आदि रोगोंमें प्रयोग करना चाहिए।

**वासाचन्दनाद्य तैल**—तेल १६ सेर। क्वाथके लिए-अड्सेकी छाल १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। लालचन्दन, गिलोय भारंगी, कटेली और दशमूल मिलित प्रत्येक ऽ२॥ सेर अर्थात् सब मिलाकर १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, लाक्षाका क्वाथ १६ सेर, दहीका तोड़ १६ सेर। कल्कके लिए लालचन्दन, रेणुक, खट्टाशी असगन्ध, शालपर्णी, दालचीनी, इलायची, तेजपात, पीपलामूल, नागकेशर, मेदा, महामेदा, त्रिकटु, रायसन, मुलेठी, शिलारस, कचूर, कूठ, देवदारु, फूलप्रियंगु व बहेड़ा प्रत्येक ८ तोला। यथाविधि पकाना।

**वासावलेह**—अड्सेकी छाल ऽ२ सेर, पकानेके लिए जल १६ सेर, शेष ४ सेर। इस क्वाथको छानकर इसमें चीनी ऽ१ सेर व घी ऽ। पाव मिलाकर पकाना। लेहके समान होने पर पीपलका चूर्ण ऽ। पाव प्रक्षेप देकर व अच्छी तरह मिलाकर उतार देना। शीतल होने पर उसमें शहद ऽ१ सेर मिलाकर रखना। कास, श्वास, यक्ष्मा, पसलीका दर्द, छातीका दर्द, ज्वर व रक्तपित्त रोगमें प्रयोग करना चाहिए।

**विजय भैरव व महाविजय भैरव तैल**—कज्जली ४ तोला मनशिल २ तोला व हरताल २ तोला काँजीमें पीसकर इससे एक कपड़ेके टुकड़े पर लेप कर देना। तब उसको सुखाकर बत्तीके समान बनाकर उसका अगला सिरा जला देना। उसके थोड़ा २ करके तेल डालते रहना। यह तेल जलकर नीचेके बर्तनमें बूँद २ करके गिरेगा

( ऊपर लिखित वस्तुमें १६ तोला तेल तैय्यार होगा ) इसका ही नाम विजय भैरव तैल है। इस तेलमें अफीम मिला देनेसे इसीको नाम महाविजय भैरव कहते हैं।

**विडङ्ग लौह**—पारा, गन्धक, मिर्च, जायफल, लौंग, पीपल, हरताल, सोंठ व वङ्ग भस्म प्रत्येक द्रव्य समान भाग, सबके समान लोह भस्म और इन समस्त द्रव्योंके समान वायविडङ्गका चूर्ण लेकर जलमें मर्दन कर वटी बनाकर रखना।

**विडङ्गादि तैल**—तेल ४ सेर। कल्कके लिये वायविडंग काली मिर्च आँकको जड़, सोंठ, चीतेकी जड़, देवदारु, परका ( कोई २ कहते हैं-येलवा ) व पाँचों नमक सब मिलाकर १ सेर।

**विषमज्वरान्तकलौह**—पारा २ भाग, गन्धक २ भाग, ताँबा १ भाग, सोनामक्खी १ भाग, लोहेकी भस्म ६ भाग लेकर जयन्तीके पत्तोंके रसमें व अडूसेके रसमें पृथक् २ भावना देकर मटर प्रमाण वटी बनाकर रखना।

**बृहच्चन्दनादि तैल**—तेल ४ सेर। क्वाथके लिये—लाख ८२ सेर जल १६ सेर, शेष ४ सेर, दहीका तोड़ १६ सेर। कल्कके लिए-लाल चन्दन, नेत्रबाला, नखी, कूठ, मुलेठी, शिलारस, पद्माख, मंजीठ, सरलकी लकड़ी, देवदारु, कचूर, इलायची, खट्टासी, नागकेशर, तेज-पात, छालछरीला, मुरामांसी, जटामांसी, कंकोल, फूलप्रियंगु, नागर-मोथा, हल्दी दारुहल्दी, अनन्तमूल, श्यामालता, लताकस्तूरी, लौंग, अगर, केशर दालचीनी, रेणुक व नलिका प्रत्येक २ तोला। गन्ध द्रव्य डालकर पाकशेष करना चाहिए।

**बृहच्चन्द्रोदय मकरध्वज**—सोनेके पत्र १तोला, पारा ८तोला दोनोंको एक साथ अच्छी तरहसे घोट कर उसमें गन्धक १६ तोला मिलाकर कज्जली बनाना और लाल रङ्गके कपासके फूलोंके रसमें व घीकुवारके रसकी भावना देकर सुखा लेना। तदनन्तर मकरध्वजके समान बालुका यन्त्रमें पकाना। यह औषधि १ तोला, कपूर ४ तोला

और जायफल, कालीमिर्च ( पीपल ), लौंगका चूर्ण प्रत्येक ४ तोला, कस्तूरी ४ रत्ती इन सबको एक साथ पीसकर रखना। मात्रा–२ रत्ती।

**बृहच्छागलाद्य घृत**–घी १६ सेर। क्वाथके लिये—खस्सी बकरेका मांस १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। दशमूल प्रत्येक ऽ१। सेर, जल ६३ सेर, शेष १६ सेर। अश्वगन्ध १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। खरेटी १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। शतावरका रस १६ सेर। कल्कके लिए—जिवन्ती, मुलेठी, दाख, काकोली, क्षीरकाकोली, नीलोफर नागरमोथा, लाल चन्दन, रायसन, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, श्यामालता, अनन्तमूल, मेदा, महामेदा, कूठ, जीवक, ऋषभक, कचूर, दारुहल्दी, फूलप्रियङ्गू त्रिफला, तगर, तालीशपत्र, पद्माख, इलायची, तेजपात, शतावर, नागकेशर, जाईके फूल, धनिया, मंजीठ, अनार, देवदारु, रेणुक, एलवा, वायविडङ्ग व जीरा इनमेंसे प्रत्येक ४ तोला। ताँबेके बर्त्तनमें मृदु अग्निमें पकाना। पाकशेष होने पर छान कर २ सेर चीनी मिला कर रखना।

**बृहच्छूरणमोदक**–जमीकन्दका चूर्ण १६ भाग, चीतेकी जड़ ८ भाग, सोंठ ४ भाग, मिर्च २ भाग और त्रिफला, पीपल, पीपलामूल, शतावर, तालीशपत्र, भिलावा व वायविडंग प्रत्येक ४ भाग, मुशली ८ भाग, बिधायरा १६ भाग, दालचीनी २ भाग, इलायची २ भाग, पुरानागुड़ १८० भाग लेकर सबका चूर्ण एक साथ थोड़ासा पानीके साथ पीस कर मोदक बनाकर रखना। स्वल्प शूरण मोदकमें लिखे हुए रोग व श्वास, कास आदि विविध प्रकारके उपद्रवोंमें प्रयोग करना चाहिए।

**बृहत् कस्तूरीभैरव**–कस्तूरी, कपूर, ताम्रभस्म, धायके फूल, कौंचके बीज, चाँदी, सोना, मोती, प्रवाल, लोहा, पाठा, वायविडंग, नागरमोथा, सोंठ, नेत्रबाला, हरताल, अभ्रक व आमला प्रत्येक समान भाग लेकर आँकके पत्तोंके रसमें मर्दन कर १ रत्ती प्रमाण वटी बना कर रखना।

**बृहत् कुटजावलेह**—कुड़ेकी छाल १२॥ सेर, जल ६४ सेर शेष १६ सेर, इस क्वाथको छानकर उसमें चीनी २॥ सेर मिलाकर दूसरी बार पकाना। लेहके समान गाढ़ा होजाने पर उसमें अजमोदा, बाराहिक्रान्ता, बेलगिरि, धायके फूल, नागरमोथा, अनारके छिलके, अतीस, लोध, मोचरस, कृमिमस्तंगी, रसौत, धनिया, खस व नेत्रवाला इनमें से प्रत्येकका चूर्ण २ तोला प्रक्षेप देकर उतार लेना। शीतल होने पर उसमें १ पाव शहद मिलाकर रखना। ज्वरातिसार और सब प्रकारके अतिसार, ग्रहणी, खून गिरना, शोथ, अर्श, अम्लपित्त व शूल आदि रोगोंमें प्रयोग करना चाहिए।

**बृहत् सर्वज्वरहरलौह**—लोहा १६ तोला, पारा २ तोला, गंधक २ तोला, बहेड़ा, आमला, हरड़, सोंठ, पीपल, मिर्च, बायविडंग, नागरमोथा, गजपीपल, पीपलामूल, हल्दी, दारुहल्दी व चीतेकी जड़ प्रत्येक १ तोला लेकर अद्रकके रसमें मर्दन कर २ रत्ती प्रमाण वटी बनाकर रखना। पुरानाज्वर, विषमज्वर, पक्षज, मासज, वत्सज ज्वर व प्लीहा, यकृत् संयुक्त ज्वर आदिमें प्रयोग करना चाहिए।

**बृहत् सूतिका विनोदरस**—सोंठ १ भाग, मिर्च २ भाग, पीपल ३ भाग, सांभरनमक आधा भाग, जवत्री २ भाग व नीलाथोथा २ भाग सबको एक साथ सम्हालूके पत्तोंके रसमें मर्दन कर २ रत्ती प्रमाण वटी बनाकर रखना।

**बृहत् सोमनाथरस**—फरहदके रसमें शुद्ध हिंगुलोत्थ पारा २ तोला व मूसाकर्णीके रसमें शुद्ध गन्धक २ तोला, इन दोनोंकी कज्जलि बनाकर उस कज्जलिमें लोहभस्म ८ तोला मिलाकर त्रिगुवारके रसमें मर्दन कर उसमें अभ्रक भस्म, वङ्गभस्म, रूपाभस्म, खपरिया भस्म, सोनामक्खीकी भस्म व स्वर्णभस्म प्रत्येक १ तोला मिलाकर त्रिगुवार व ब्राह्मीके रसकी भावना देकर रखना। मात्रा—२ रत्ती।

**बृहत् सोमराजी तैल**—सरसोंका तेल १६ सेर। बावचीका क्वाथ १६ सेर (बावची १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर) पवाड़का

काथ १६ सेर ( पवाड़के बीज १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर ), गोमूत्र १६ सेर। कल्कके लिए-चीतेकी जड़, कलिहारी, सोंठ, कूठ, हल्दी, करञ्जवेके बीज, हरताल, मनशिल, अष्टपादिका ( हापरमाली घ० ), आँकका दूध, कनेरकी जड़, सतोनेके जड़की छाल, गोबरका रस, खैरकी लकड़ी, नीमके पत्ते, मिर्च व कसौंदी प्रत्येक २ तोला।

बृहद्गुडुचि तैल—तिलका तेल ४ सेर। गिलोयका काथ १६ सेर ( गिलोय १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर ) दूध १६ सेर। कल्कके लिए—असगन्ध, विदारिकन्द, काकोली, क्षीरकाकोली, गोपीचन्दन, शतावर, गोरखमुण्डी, गोखरू, बड़ी कटेली, कटेली, वायविडंग, त्रिफला बावचीके बीज, ब्राह्मी, इन्द्रायणकी जड़, गठिवन, मंजीठ, लालचन्दन, हल्दी, सोया व सतोनेकी छाल प्रत्येक २ तोला। यथा विधि पकाना।

बृहद्धात्रिघृत—घी ४ सेर। आमलेका रस ४ सेर, विदारिकन्द का रस ४ सेर, शतावरका रस ४ सेर, दूध ४ सेर, तृणपंचमूलका काथ ४ सेर। कल्कके लिए-इलायची, लौंग, त्रिफला, कैतवेल, नेत्रबाला, सरलकी लकड़ी, जटामांसी, केलेकी जड़, व कुमुदनीकी जड़ प्रत्येक ६ तोला। यथा नियमसे पकाकर कल्क छानकर फेंक देना। तब मुलेठी, निशोथ, जवाखार, बिधायरेकी जड़ प्रत्येकका चूर्ण ८ तोला, चीनी १ सेर प्रक्षेप देकर शीतल होने पर उसमें १ सेर मिलाकर अमृतवानमें रख देना।

बृहद्वंगेश्वर—बङ्गभस्म, पारा गन्धक, रूपाभस्म, कपूर, अभ्रक भस्म प्रत्येक २ तोला, सोना भस्म, मोतीभस्म प्रत्येक ४ माशा लेकर कसेरूके रसकी भावना देकर २ रत्ती प्रमाण गोली बनाकर रखना।

बृहद्वातगजांकुश—पारा, गन्धक, अभ्रक, लोहा, ताम्र हरताल, सोना, सोंठ, खरेटी, धनियाँ, कायफल, हरड़, मीठातेलिया, काकड़ासिंगी, पीपल, कालीमिर्च, व सुहागेकी खील प्रत्येक समान भाग लेकर मुण्डी व रूद्दालूके रसमें मर्दन कर २ रत्ती प्रमाण वटी बनाकर रखना।

बृहद्वासावलेह—अडूसेकी छाल १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष

१६ सेर। इस १६ सेर क्वाथमें १२॥ सेर चीनी मिलाकर पकाना। गाढ़ा होने पर त्रिकटु, दालचीनी, तेजपात, इलायची, कायफल, नागरमोथा कुठ, जीरा, पीपलामूल, कमेला, चव, वंशलोचन, कुटकी, गजपीपल, तालीशपत्र व धनिया इनमेंसे प्रत्येकका चूर्ण २ तोला प्रक्षेप देकर उतार लेना। शीतल होजाने पर १ सेर शहद मिलाकर रखना। राजयक्ष्मा, रक्तपित्त, कास, श्वास, क्षत, क्षय व ज्वर आदिमें प्रयोग करना चाहिए।

**बृहद्विष्णु तैल**—तिलका तेल १६ सेर। शतावरका रस १६ सेर, दूध १६ सेर, जल ३२ सेर। कल्कके लिए—नागरमोथा, असगंध जीवक, ऋषभक, कचूर, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, मुलेठी, सौंफ, देवदारु, पद्माख, छानछबीला, जटामांसी, इलायची, दालचीनी कुठ, वच, लालचन्दन, केशर, मंजीठ, कस्तूरी, सुफेद चन्दन, सेंधा नमक शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी गुन्दवरोसा, गठिवन व नखी इनमेंसे प्रत्येक ८ तोला।

**बृहद्विद्याधराभ्र**—पारा, गन्धक, त्रिफला, त्रिकटु, वायविडङ्ग, नागरमोथा, निशोथ, दन्ती, चीता, मूसाकर्णी व पीपलामूल इनमेंसे प्रत्येकका चूर्ण २ तोला लेना। काले अभ्रककी भस्म ८ तोला लोह-भस्म ३२ तोला लेकर घी व शहदके साथ मर्दन कर बेरके प्रमाण वटी बनाकर रखना।

**बृहन्नृपवल्लभ रस**—पारा, गन्धक, लोहा, अभ्रक, सीसा, चीतेकी जड़, निशोथ, सुहागेकी खील, जायफल, हींग, दालचीनी, इलायची, नागरमोथा, लौंग, तेजपात, कालाजीरा, अजवायन, सोंठ, सेंधानमक, कालीमिर्च व रौप्य प्रत्येक १ तोला, सोना १२ रत्ती लेकर अदरकके रसमें व आमलेके रसमें भावना देकर चनेके बराबर वटी बनाकर रखना।

**बृहन्माणकादि गुड़िका**—पुराना माणकन्द, चिरचिटेकी जड़ की भस्म, शालपर्णी, चीतेकी जड़, थूहरकी जड़, सोंठ, सेंधानमक,

माहूषी जटाकी भस्म, वायविडङ्ग, हाउबेर, चव, बच, विट्ट नमक व सौंचल नमक, जवाखार, पीपल, सरफोंका, जीरा व करहदकी जड़ प्रत्येक ४ तोला, गोमूत्र २४ सेर। इन सबको एक साथ पकाकर गाढा होने पर उसमें जीरा, त्रिकटू, हींग, अजवायन, कूठ, कचूर, निशोथ, दन्तीकी जड़ व इन्द्रायणकी जड़ प्रत्येकका चूर्ण २ तोला प्रक्षेप देकर उतार लेना। शीतल होनेपर ३ पल शहद मिलाकर रखना। मात्रा दशाषा

**व्याघ्री तैल**—कड़वातेल १ सेर, जल ४ सेर। कल्कके लिए कटेली, दन्तीकी जड़, बच, सहजनेकी छाल, सम्हालू, त्रिकटू व सेंधानमक सब मिलाकर १६ तोला।

**व्रणराक्षस तैल**—सरसोंका तेल ऽ॥ सेर। कल्कके लिए-पारा, गन्धक ( कज्जली बनाकर ), हरताल, चीनी सिन्दूर, मनशिल, लहसुन, मीठातेलिया व ताँबा प्रत्येक २ तोला लेकर धूपकी गर्मीमें पकाना

**ब्रह्मरन्ध्र रस**—पारा, गन्धक, अभ्रक, हरताल, सिंगरफ, मिर्च, सुहागेकी खील व सेंधानमक प्रत्येक समान भाग, सबके समान मीठा तेलिया इन सब चीजोंको सब चीजोंके तोलका चौथाई भैंसके पित्तेमें मर्दन कर रखना। ब्रह्मरन्ध्र ( कपाल ) में चीरा देकर इस औषधिको लगा देते हैं।

**भुवनेश्वर**-सेंधानमक, त्रिफला, अजवायन, बेलगिरी व घरका धुआँ प्रत्येक समान भाग लेकर जलमें मर्दन कर १ माषा प्रमाण बटी बनाकर रखना। सब प्रकारके अतिसार रोगमें प्रयोग करना चाहिए।

**भैरव रस**—पारा, गन्धक, मीठा तेलिया, सुहागेकी खील, मिर्च चव्य व चीतेकी जड़, इन सबको अद्रकके रसमें मर्दन कर ३ रत्ती प्रमाण बटी बनाकर रखना।

**भार्गी गुड़**--भारङ्गी ८०० तोला, दशमूल प्रत्येक ८० तोला, कपड़ेमें ढीली तरहसे पोटलीमें बाँधी हुई १०० नग हरड़, इन सबका ११६ सेर जलमें क्वाथ करके २९ सेर बाकी रहने पर उतार छान कर लेना। तदनन्तर इस क्वाथके पानीमें ही पूर्वोक्त १०० हरड़े और पुराना

गुड़ ८०० तोला डालकर दूसरी बार पकाना। गाढ़ा होनेपर उसमें त्रिकटु, दालचीनी, तेजपात व इलायची इनमेंसे प्रत्येक का चूर्ण ८ तोला व जवाखार ४ तोला प्रक्षेप देकर अच्छी तरहसे मिला देना। शीतल होने पर उसमें ४८ तोला शहद मिलाकर रखना।

**मकरध्वज**—सोना १ तोला, पारा ८ तोला, गन्धक १६ तोला लेकर पहिले सोनेके पत्रोंको कैंचीसे बारीक २ काटकर पारेके साथ मिलाकर घोटना। तदनन्तर उसमें गन्धक मिलाकर अच्छी तरह घोट कर कज्जली बनाकर घीगुवारके गूदेमें मर्दन कर व सुखाकर ७ कपड़-मिट्टीकी हुई आतशि शीशीमें भरकर शीशीके मुखपर सेलखडीकी डाट बनाकर लगा देना। तब किसी एक मिट्टीके नाँदके पेंदेमें छेद करके उस छिद्रके ऊपर इस शीशीको टिकाके रख देना और नाँद को चारों तरफसे शीशीके गले तक बालूसे भरकर चूल्हे पर चढ़ा देना। फिर मृदु, मध्य, खर अग्नि क्रमशः ३ दिन तक देना। इससे अरुण वर्णका औषधांश शीशीकी नलीमें जम जावेगा। शीशीको गले से तोड़कर यह औषधि निकाल लेना, इसीको मकरध्वज कहते हैं। विशेष २ अनुपानके साथ खानेसे यह सब रोगोंको नाश करता है।

**मकरध्वज रस**—बृहच्चन्द्रोदय मकरध्वज व मकरध्वज रस प्रायः एक ही चीज है, भेद सिर्फ यह है—मकरध्वज रसमें गन्धक १६ तोलेके बदले गन्धक २४ तोला डालते हैं।

**मध्यम गुडुची तैल**—तिलका तेल ४ सेर। गिलोयका क्वाथ १२ सेर ( कोई ) १६ सेर लेते हैं। दूध ४ सेर। यथाविधि पकाना।

**मध्यम नारायण तैल**—तिलका तेल १६ सेर। कल्कके लिए बच, लालचन्दन, कूठ, इलायची, जटामांसी, शिलाजीत, सेंधानमक, अश्वगन्ध, खरेटीकी जड़, रायसन, सोया, देवदारु, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी व तगर प्रत्येक ८ तोला। क्वाथके लिए अश्वगन्ध, खरेटी, बेलके जड़की छाल, पाढलकी छाल, बड़ी कटेली, कटेली गोखरू, गंगेरन, नीमकी छाल, सोनापाठेकी छाल, पुनर्नवा, प्रसरन

व अरणी ये सब चीजें प्रत्येक १० पल लेकर ६ मन १६ सेर जलमें पका कर १ मन २४ सेर शेष रहने पर उतार देना। यह क्वाथ और शतावरका रस १६ सेर, दूध १ मन २४ सेर, इन सब द्रवद्रव्य व ऊपर लिखित कल्क द्रव्यके साथ तेलको पकाना।

**मरिचाद्यतैल**—सरसोंका तेल ४ सेर, गोमूत्र १६ सेर। कल्कके लिए-मिर्च, हरताल, मनशिल, नागरमोथा, आँकका दूध, कनेरकी जड़, निशोथ, गोबरका रस, इन्द्रायणकी जड़, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, देव-दारु व लालचन्दन प्रत्येक ४ तोला।

**महागन्धक**—पारा २ तोला, गन्धक २ तोला एकत्र मर्दन कर कज्जलि बनाना। इस कज्जलीको थोड़ासा पानीसे घोट कर कींचड़के समान बना लेना। तब उसको एक लोहेकी करछीमें रखकर मृदु अग्नि में पकाना। तदनन्तर उसमें जायफल, जवत्री, लौंग, व नीमके पत्ते ( कोई २ इसमें सम्हालूके पत्ते व इलायचीका चूर्ण प्रत्येक २ तोला मिलानेको कहते हैं ) प्रत्येकका चूर्ण २ तोला मिलाकर जलमें मर्दन कर इस औषधिको एक सीपमें रखकर एक दूसरी सीपसे उसका मुख बन्द करके केलेके पत्तेमें लपेट कर और कींचड़से लेपकर उपलोंकी अग्नि में पुट पाक करना। ऊपरका लेप थोड़ासा लालरंग होने पर अग्निसे बाहर निकाल कर औषधिको घोट कर रखना चाहिए। इसको प्रबल वेगवान ग्रहणी, अतिसार, श्वास, सूतिका प्रभृति रोगोंमें प्रयोग करना चाहिए। यह बालकोंके उदररोगकी भी परमोत्तम औषधि है।

**महाचन्दनादि व बृहत् चन्दनादि तैल**—तेल ४ सेर, लाख २ सेर, जल १६ सेर, शाष ४ सेर, दहीका तोड़ १६ सेर। कल्कके लिए-लालचन्दन, नेत्रवाला, कचूर, कूठ, मुलेठी, छानछबीला, पद्माख, मंजीठ, सरलकी लकड़ी, देवदारु, कचूर, इलायची, खट्टासी, नागकेशर, तेज-पात, शिलारस, मुरामांसी, जटामांसी, कंकोल, फूलप्रियंगु, नागर-मोथा, हल्दी, दारुहल्दी, श्यामालता, अनन्तमूल, लताकस्तूरी, लौंग, अगर, केशर, गिलोय, रेणुक, नलिका प्रत्येक २ तोला।

**महाचैतसघृत**—घी ४ सेर क्वाथके लिए-शणके बीज, निशोथ, एरण्डकी जड़, दशमूल, शतावर, रायसन, पीपल, सहजनेकी छाल, प्रत्येक १६ तोला, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। कल्कके लिए-विदारी-कन्द मुलेठी; मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, चीनी, पिण्ड-खजूर, किशमिश, शतावर, ताड़मलक ( तालमखाना ), गोखरू और चैतस घृतमें कहा हुआ सबका सब कल्क सब द्रव्य मिलाकर १ सेर।

**महातिक्तघृत**-घी ४ सेर। आमलेका रस ८ सेर कल्कके लिए-सतौनेकी छाल, अतीस, अमलतास, कुटकी, पाठा, नागरमोथा, खश, त्रिफला, परवल, नीमकी छाल, पित्तपापड़ा, धमासा, लालचन्दन, पीपल, गजपीपल, पद्माख, हल्दी, दारूहल्दी, वच, इन्द्रायण, शतावर, श्यामालता, अनन्तमूल, इन्द्रजौ, अडूसा,: मूर्वा, गिलोय, चिरायता, मुलेठी व त्रायमाण ये सब द्रव्य मिलाकर १ सेर। जल ३२ सेर।

**महादशमूलतैल**-सरसोंका तेल १६ सेर। क्वाथके लिए दश-मूल १२॥ सेर जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, खट्टे निम्बूका रस १६ सेर, अद्रकका रस १६ सेर, धतूरेका रस १६ सेर, कल्कके लिए-पीपल व पीपलामूल प्रत्येक १६ तोला और गिलोय, दारूहल्दी, सोया, पुनर्नवा, सहजनेकी छाल, कुटकी, करंजवेके बीज, कालाजीरा, हुलहुल सरसों, वच, सोंठ, चीतेकी जड़, कचूर, देवदारु, खरेटी, रायसन, हुलहुल, कायफल, सम्हालू, चव, गेरु मिट्टी, पीपलामूल, सूखीमूली, अजवायन जीरा, कूठ, अजमोद व बिधायरेकी जड़ प्रत्येक ८ तोला।

**महापंचगव्यघृत**-क्वाथके लिए-दशमूल, त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी, कुड़ेकी छाल, सतौनेकी छाल, चिरचिटेकी जड़, नीलवृक्ष, कुटकी, अमलतास, गूलरकी जड़, कूठ, धमासा प्रत्येक २ पल, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। कल्कके लिए-भारंगी, अजमनी, त्रिकटु, निशोथ, समुद्रफल, गजपीपल, अरहर, मूर्वाकी जड़, दन्तीकी जड़, चिरायता, चीतेकी जड़,श्यामालता, अनन्तमूल, रोहिततृण,अजवायन व वनमाल्लिका ( मोंगरी ) प्रत्येक २ तोला। गौका घी ४ सेर, गोबर

का रस, ४ सेर, गोमूत्र ४ सेर, गायका दूध ४ सेर, खट्टा गायका दही ४ सेर।

**महामाष तैल** - तेल ४ सेर। क्वाथके लिए-ढीली पोटलीमें बँधी हुई उड़दकी दाल ४ सेर, दशमूल ॥ सेर, ढीली पोटलीमें बँधा हुआ बकरेका मांस ॥ सेर, इन सबको ६४ सेर जलमें पकाकर १६ सेर शेष रहने पर उतार छानकर रखना। दूध १६ सेर। कल्कके लिए-कौंचके बीज, एरण्डकी जड़, सोया और सेंधा, बिट व सौंचलनमक जीवनीय वर्ग, मंजीठ, चव, चीतेकी जड़, कायफल, त्रिकटु, पीपलामूल, रायसन, मुलेठी, सेंधानमक, देवदारु, गिलोय, कूठ, अशगन्ध, वच, कचूर प्रत्येक २ तोला।

**महामृगाङ्क रस**—सोना १ भाग, रससिन्दूर २ भाग, मोती २ भाग, गन्धक ४ भाग, सोनामक्खी ५ भाग, रौप्यभस्म ४ भाग, प्रवाल ७ भाग, सुहागेकी खील २ भाग लेकर बिजौरा निम्बूके रसमें ३ दिन तक मर्दन कर और धूपमें सुखाकर मूषामें भरकर लवणयन्त्रमें ४ पहर तक पकाना। शीतल होने पर सारे चूर्णके ६४ भागमें १ भाग हीराभस्म व १६ भाग वैक्रान्त भस्म मिलाकर रखना।

**महारुद्र गुडूची तैल**—सरसोंका तेल ४ सेर। क्वाथके लिए-गिलोय १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, नीमकी छाल ८ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, गोमूत्र ४ सेर। कल्कके लिए-गिलोय, बावची, दन्तीकी जड़, कनेरकी जड़, त्रिफला, अनारके बीज, नीमके बीज, हल्दी, दारुहल्दी, बड़ी कटेली, कटेली, गङ्गेरन, त्रिकटु, तेजपात, जटामांसी, पुनर्नवा, पीपलामूल, मंजीठ, अशगन्ध, सोया, लालचन्दन, श्यामालता, अनन्तमूल, सतोनेकी छाल व गोबरका रस प्रत्येक २ तोला

**महालाक्षादि तैल**—मूर्छित तिलका तेल ४ सेर, लाखका क्वाथ १६ सेर, दहीका तोड़, १६ सेर। कल्कके लिए-सोया, हल्दी, मूर्वाकी जड़, कूठ, रेणुक, कुटकी, मुलेठी, रायसन, अशगन्ध, देवदारु नागर मोथा व लाल चन्दन प्रत्येक २ तोला। तेलका पाक समाप्त होने पर

शिलारस, नखी व कपूर प्रत्येक २ तोला मिलाकर रखना यह सब प्रकारके विषम ज्वरोंमें और श्वास, कास, प्रतिश्याय व कमर, पीठ आदि के दर्दमें प्रयोग करना चाहिए।

लाखका क्वाथ बनानेका नियम—लाखको छः गुना या आठगुने जलमें भिगोकर रखनेसे उससे जो क्वाथ निकले, उसको २१ बार छान कर लेनेसे ही लाखका क्वाथ सिद्ध होगया। या आठगुने जलमें पका-कर चौथाई बाकी रहने पर उतार छानकर लेना।

**महाश्वासारि लौह**—लोहा ४ तोला, अभ्रक १ तोला, चीनी ४ तोला, शहद ४ तोला और त्रिफला, मुलेठी, दाख, पीपल, बेरकी गुठलीकी गिरी, वंशलोचन, तालीशपत्र, वायविडंग, इलायची, कूठ व नागकेशर इनमेंसे प्रत्येकका चूर्ण १ तोला लेकर इन सब चीजोंको लोहेके बर्त्तनमें लोहके डंडेसे २ पहर तक घोटकर रखना।

**माणकादि गुड़िका**—पुराना माणकन्द, चिरचिटेकी जड़की भस्म गिलोय, अडूसेकी जड़, शालपर्णी, सेंधानमक, चीतेकी जड़, सोंठ, ताड़की जटाका क्षार प्रत्येक ६ तोला। विड्नमक, सौंचलनमक, जवा-खार व पीपलामूल प्रत्येक २ तोला लेकर इन सब चीजोंके चूर्णको १६ सेर गोमूत्रमें पकाना। गाढ़ा होनेपर उतार देना और शीतल होने पर उसमें ३ पल शहद मिलाकर गोली बनाकर रखना। मात्रा—६माशा।

**माष तैल**—तेल ४ सेर। क्वाथके लिए—उड़दकी दाल, मटर,जौ पियाबाँसेकी जड़, कटेली, गोखरू, सोनापाठकी जड़, कौंचके बीज इनका क्वाथ। कपासके बीज, शणके बीज, कुलथी, बेरकी गिरी इनका क्वाथ और खस्सी बकरेके मासका क्वाथ, ये तीनों मिलाकर १६सेर। कल्कके लिए—सोंठ, पीपल, सोया, एरण्डकी जड़, पुनर्नवा, प्रसारणी, रायसन, खरेटी, गिलोय व मिर्च सब मिलाकर १ सेर।

**मुस्तकादि मोदक**—त्रिकटु, त्रिफला, चीतेकी जड़, लौंग, जीरा, कालाजीरा, अजवायन, अजमोद, सौंफ, पान, सोया, शतावर, धनिया, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर, वंशलोचन, मेथी

व जायफल प्रत्येक २ तोला, नागरमोथा ४८ तोला, इन सबके चूर्णको ऽ३ सेर ( कोई २ कहते हैं ऽ१॥ सेर ) चीनीके साथ पका कर मोदक बनाके रखना। अतिसार, ग्रहणी, अरुचि व अग्निमान्द्य रोगमें प्रयोग करना चाहिये।

**मूत्रकृच्छ्रान्तक रस**—रससिन्दूर, हरताल व नीलाथोता समान भाग लेकर शतावरके रसमें १ दिन तक मर्दन करके सरसोंके तेलमें १ पहर तक पकाना। अनन्तर चूर्ण बना कर ४ रत्ती प्रमाण वटी बना कर रखना।

**मूर्छान्तक रस**—रससिन्दूर, सोनामक्खी, सोना, शिलाजीत व व लोहा इन सबको समान भाग लेकर शतावर व विदारिकन्दके स्वरसकी भावना देकर ४ रत्ती प्रमाण वटी बना कर रखना।

**मृगाङ्क रस**—पारा १ तोला, गन्धक २ तोला, सोना १ तोला, मोती २ तोला, सुहागेकी खील २ माशा इन सबको काँजीमें पीसकर गोलाकार बनाना। तदनन्तर गोलेको सुखा कर मूषामें भर कर लवण-यन्त्रमें × पकाना। मात्रा–४ रत्ती।

**यकृदरि लोह**—लोहभस्म ४ तोला, अभ्रक ४ तोला, ताम्र २ तोला, कागदी निम्बूके जड़की छाल ८ तोला, अन्तर्धूमसे जलाया हुआ काले हरिणका चमड़ा ८ तोला इन सब चीजोंको पानीसे पीस कर ३ रत्ती प्रमाण वटी बना कर रखना।

**योगराज गुग्गल**—चीतेकी जड़, पीपलामूल, अजवायन, काला-जीरा, वायविडंग, अजमोद, जीरा, देवदारु, वच, इलायची, सेंधा-नमक, कूठ, रायसन, गोखरू, धनिया, त्रिफला, नागरमोथा, त्रिकटु, दालचीनी, खश, जवाखार, तालीशपत्र व तेजपात प्रत्येकका चूर्ण

---

× तामेकी हाँडीके भीतरका हिस्सा पारेसे लेप कर। इस हाँडीके मुखमें एक दूसरी हाँडी ऊपर मुख करके रख करके दोनोंके सन्धिस्थान को मिट्टी व नमकसे लेप कर ऊपर वाली हाँडीको नमकसे भर कर नीचे अग्नि जलाना, इसीको लवण यन्त्र कहते हैं।

समान भाग, सब चूर्णके समान गुग्गल लेना। पहिले गुग्गलको घीमें मर्दन कर उसमें ऊपरलिखित सब चूर्ण मिला कर फिर घी डाल कर घोटना। तब गोली बना कर या वैसे ही अमृतवानमें भर कर रखना।

**योगेन्द्र रस**—रससिन्दूर १ तोला, लोहा, अभ्रक, सोना, वङ्ग प्रत्येक ६ माशा लेकर घी गुआरके गूदेमें मर्दन कर एरण्ड पत्रोंमें लपेट कर धानके ढेरमें ३ दिन तक दबाके रखना। फिर निकाल कर २ रत्ती प्रमाण वटी बना कर रखना।

**रक्तपित्तान्तक रस**—अभ्रक, लोहा, सोनामक्खी, रसतालक व गन्धक प्रत्येक समान भाग। मुलेठी, दाख व गिलोयके रसमें एक दिन तक मर्दन कर १ माशा प्रमाणवटी बना कर रखना। रक्तपित्त, ज्वर, दाह, यक्ष्मा आदि रोगोंमें प्रयोग करना चाहिए। ( पारा, गन्धक, हरताल व दारमूँज विषको एकत्र मर्दन कर वालुका यन्त्रमें ४ पहर तक पकानेसे पीले रंगकी जो चीज निकलती है, उसको ही रसतालक कहते हैं। रसेन्द्रसार संग्रहके टीकाकारने कहा है—रसतालकका अर्थ—हरताल )।

**रक्तपित्तान्तक लौह**—आमला, पीपल, चीनी व लोहा प्रत्येक समान भाग लेकर एक साथ मर्दन कर रखना। रक्तपित्त व अम्ल-पित्तमें प्रयोग करना चाहिये।

**रतिवल्लभ मोदक**—भाँगके बीजोंका चूर्ण ढाई पाव ऽ॥=, घी ऽ॥ सेर, चीनी २ सेर, शतावरका रस ४ सेर, गौका दूध ४ सेर, बकरीका दूध ४ सेर। यथा नियमसे पकाना। आसन्नपाकके समय आमला, जीरा, काला जीरा, नागरमोथा, दालचीनी, इलायची, तेज-पात, नागकेशर, कौंचके बीज, गंगेरन, ताड़का अंकुर, कशेरू, सिंघाड़ा, त्रिकटु, धनिया, अभ्रक, वङ्ग, हरड़, दाख, काकोली, क्षीरकाकोली, पिंडखजूर, तालमखानेके बीज, कुटकी, मुलेठी, कूठ, लौंग, सेंधानमक, अजवायन, अजमोद जीवन्ती व गजपीपल प्रत्येक २ तोला प्रक्षेप देना। शीतल होने पर शहद ऽ। पाव मिलाकर कस्तूरी व कपूरसे सुवासित करके रखना।

**रस गुड़िका**—रससिन्दूर १ भाग, वायविडंग, कालीमिर्च व अभ्रक प्रत्येक ३ भाग लेकर गङ्गापालकके रसमें मर्दन कर १ रत्ती प्रमाणवटी बना कर रखना। अर्श व अग्निमान्द्य रोगमें प्रयोग करना चाहिये।

**रसमाणिक्य**—वंशपत्र हरतालको पेठेके जलकी व खट्टे दहीकी यथाक्रम ३ बार वा ७ बार भावना देकर सुखा कर व चावलके समान चूर्ण करके एक सकोरेमें रख कर ऊपरसे एक दूसरा सकोरा ढाँक कर दोनों सकोरोंके जोड़को वेरके पत्तोंकी लुगदीसे लेप कर अच्छी तरह बन्द कर कोयलोंकी आँचमें रख कर पकाना। जब नीचेके सकोरेका तला लाल अग्निके समान होजाय, तब उतार देना। स्वांगशीतल होने पर संपुट खोल कर औषधि निकाल लेना। इस क्रियासे हरताल माणिकके समान लाल रंगकी होजावेगी। मात्रा—२ रत्ती।

**रसोनपिण्ड**—लहसुन १२॥ सेर, धोयेतिल ऽ॥ सेर, और हींग, त्रिकटु, जवाखार, सज्जिखार, पाचों नमक, सोया, कूठ, पीपलामूल, चीतेकी जड़, अजमोद, अजवायन व धनिया प्रत्येकका चूर्ण ८ तोला, इन सब चूर्णको किसी एक घी वाली हाँडीमें रख कर उसमें तिलका तेल २ सेर व काँजी २ सेर प्रक्षेप देकर १६ दिन तक धानके ढेरमें दबा कर रखना। तदनन्तर निकाल कर आमलेके बराबर गोली बना कर रखना।

**राजमृगाङ्क रस**—रससिन्दूर ३ तोला, सोना १ तोला, ताम्र वा रौप्य १ तोला, शिलाजीत वा मनशिल २ तोला, हरताल २ तोला, गन्धक २ तोला, इन सबको एक साथ मर्दन करके बड़ी २ कौड़ियोंमें भर कर इन कौड़ियोंका मुख बकरीके दूधमें सुहागा पीस कर उससे बन्द कर देना, और मिट्टीके वर्त्तनमें रख कर वर्त्तनका मुख शरावसे बन्द कर तथा कपड़मिट्टीसे लेप कर गजपुटमें पकाना। मात्रा—४ रत्ती।

**लक्ष्मीविलास रस**—अभ्रक ४ भाग, पारा, गन्धक, कपूर, जावत्री, जायफल प्रत्येक २-२ भाग, विधायरेके बीज, धतूरेके बीज, भाँगके बीज, विदारिकन्द, शतावर, गंगेरनकी जड़, खरेटीकी जड़,

गोखरूके बीज, समुद्रफल प्रत्येकका चूर्ण २-२ भाग लेकर पानके रसमें मर्दन कर ३ रत्ती प्रमाणवटी बना कर रखना। अनुपान विशेषसे यह सब रोगोंमें प्रयोग किया जाता है।

**लीलाविलास रस**-पारा, गन्धक, अभ्रक, ताँबा व लोहा प्रत्येक समान भाग लेकर आमला व बहेड़ेके रसमें ३ दिन तक थोड़ा२ मर्दन करनेके अनन्तर भंगरेके रसमें मर्दन कर २ रत्ती प्रमाणवटी बना कर रखना।

**लोकनाथ रस**—पारा, गन्धक व अभ्रक प्रत्येक १ तोला लोहा व ताम्र प्रत्येक २ तोला, कौड़ी भस्म ६ तोला पानके रसमें मर्दन कर गजपुटमें पका कर २ रत्ती प्रमाण वटी बना कर रखना।

**लौहपर्पटी**—पारा १ तोला, गन्धक २ तोला, दोनोंकी कज्जली बना कर उसमें लोहा २ तोला मिला कर लोहेके बर्त्तनमें अच्छी तरहसे मर्दन करना। तदनन्तर लोहेके करछेमें थोड़ासा घी चुपड़ कर उसमें पूर्वोक्त लोह मिश्रित कज्जलीको रखकर अग्निमें गरम करना। कज्जली के पिघल जाने पर केलेके पत्तमें डालकर पर्पटी बनाना। पर्पटी बनाने की विधि यह है—गोबरको जमीनमें बिछाकर सिलके आकारका बनाकर उसके ऊपर एक केलेका कच्चा पत्ता बिछाकर रखना और एक दूसरे केलेके पत्तमें गोबरको लपेट कर बट्टा सा बना लेना। इस प्रकार बनी हुई सिलके ऊपर ऊपरलिखित पिघली हुई कज्जलीको डाल कर जल्दीसे बट्टेसे उसको दबाकर फैला देना ताकि पर्पटीसा बनजाय। बार२ इसी तरह थोड़ा २ डालता जाय और पर्पटी बनाता रहे। कज्जलीका जो अंश कठिन होकर करछेमें लगजाय उसको निकालकर फेंक देना चाहिये। यह शोथ, उदर रोग आदि की महौषधि है।

**शंखवटी व महाशंखवटी**—शंख भस्म, पाँचोनमक, इमलीका क्षार, त्रिकटु, हींग, मीठातेलिया, पारा व गन्धक प्रत्येक समान भाग लेकर चिरचिटा व चीतेकी जड़के क्वाथकी भावना देकर पीछेसे निंबू के रसकी इतनी भावना देवे कि—जिससे औषधि खट्टी होजाय।

२ रत्ती प्रमाण वटी बनाकर रखना। अग्निमान्द्य, अजीर्ण, अर्श, पाण्डु, शूल, प्रमेह, वातरक्त व—शोथ आदि में प्रयोग करना चाहिये।

इस औषधिके साथ लोहा व वङ्ग मिलानेसे इसीको महाशंख वटी कहते हैं। यह अत्यन्त अग्निवर्धक व पाचक औचक औषधि है।

**शतावरी घृत**—घी ४ सेर, शतावरका रस ४ सेर, दूध १६ सेर; शतावरका कल्क १ सेर। यथाविधि पाक करना।

**शम्बूक तैल**—सरसोंके तेलमें घोंघोंका मांस पका कर रखना। इस तेलको कानोंमें भरनेसे कानका नासूर आराम होजाता है।

**शिर शूलाद्रिवज्र रस**—पारा, गन्धक, लोहा व निशोथका चूर्ण प्रत्येक ८ तोला, गुग्गलु ३२ तोला, त्रिफला प्रत्येक १६ तोला, कुठ, मुलेठी, पीपल, सोंठ गोखरू, वायविडंग व दशमूलकी १० चीजें इनमें से प्रत्येक ८ तोला लेकर इनके चूर्णको दशमूलके काथकी भावना देकर और पीछे घी डाल कर मर्दन कर १ माशा प्रमाण वटी बना कर रखना।

**शिलाजतू वटिका**—पारा १ तोला, गन्धक १ तोला, लाल कमलके पत्त व कुड़ेकी छालके रसमें दो दिन तक मर्दन कर उसके साथ शिलाजीत १ सेर चीनी १ सेर और वंशलोचन, पीपल, आमला, काकड़ासिंगी, कटेलीके फल व जड़, दालचीनी, तेजपात व इलायची प्रत्येक ८ तोला मिला कर रखना। मात्रा—६ माशासे २ तोला तक।

**शीतकल्याण घृत**—गौका घी ४ सेर। गौका दूध १६ सेर। कल्कके लिए—कमल, पद्माख, खश, गेहूँ, लालसाठी चावल, मुद्गपर्णी, क्षीर-काकोली, खम्भारीके फल, मुलेठी, खरेटीकी जड़, गंगेरनकी जड़, नीलोफर, ताड़मस्तक, विदारिकन्द, शतावर, शालपर्णी, जीरा, त्रिफला, ककड़ीके बीज व कच्चाकेला प्रत्येक ४ तोला। पकानेके लिये जल—८ सेर।

**शीतभञ्जी रस**—पारा, गन्धक व सिंगरफ प्रत्येक १ भाग जमाल-गोटेके बीज ३ भाग लेकर दन्तीके क्वाथकी भावना देकर २ रत्ती प्रमाण वटी बना कर रखना।

**शीतारिरस**—पारा, गन्धक, सुहागेकी खील, सेंधानमक, काली-मिर्च, मीठातेलिया, इमलीका क्षार प्रत्येक १ भाग, जमालगोटा २ भाग लेकर निम्बूके रसमें मर्दन कर २ रत्ती प्रमाण गोली बनाकर रखना।

**शुण्ठीखण्ड**—सोंठका चूर्ण आध सेर, चीनी २ सेर घी १ सेर, दूध ८ सेर, इन सबको यथाविधिसे पाक करना। आसन्न पाक होने पर आमला, धनिया, नागरमोथा, जीरा, पीपल, वंशलोचन, दाल-चीनी, तेजपात, इलायची, कालाजीरा व हरड़ प्रत्येकका चूर्ण १॥ तोला, मिर्च व नागकेशर प्रत्येकका चूर्ण ६ माशा प्रक्षेप देकर अच्छी तरहसे मिला कर उतार देना। शीतल होने पर शहद २४ तोला मिला कर रखना।

**शुण्ठी घृत**—घी ४ सेर। कल्कके लिए-कुटी हुई सोंठ १ सेर। सोंठका क्वाथ वा केवल जल १६ सेर लेकर यथाविधि पकाना।

**शुष्कमूलकाद्य तैल**-मूर्छित तैल ४ सेर। कल्कके लिए-सूखी मूली, पुनर्नवा, देवदारु, रायसन व सोंठ मिलित १ सेर। पकानेके लिये जल १६ सेर।

**शूलगजेन्द्र तैल**—तिलका तेल ८ सेर। क्वाथके लिए-एरण्डकी जड़ व दशमूलकी प्रत्येक चीजें ४०-४० तोला पकानेके लिए जल ५१ सेर, शेष १२॥। सेर, जौ ८ सेर, पकानेके लिए जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, दूध १६ सेर। कल्कके लिए-सोंठ, जीरा, अजवायन, धनिया, पीपल, बच, सेंधानमक व बेरके पत्ते प्रत्येक १६ तोला।

**शृङ्गाराभ्र व सार्वभौम रस**—अभ्रक १६ तोला, कपूर, जावित्री, नेत्रबाला, गजपीपल, तेजपात, लौंग, जटामांसी, तालीशपत्र, दालचीनी, नागकेशर, कूठ, धायके फूल प्रत्येक ६ माशा, हरड़, आमला, बहेड़ा व त्रिकटु प्रत्येक ३ माशा, इलायची, जायफल प्रत्येक १ तोला, गन्धक १ तोला, पारा ६ माशा लेकर जलमें मर्दन कर चनेके समान वटी बना कर रखना। कास, श्वास, यक्ष्मा, ज्वर, अम्लपित्त, रक्तपित्त व पाण्डु आदि विविध रोगोंमें प्रयोग करना चाहिए।

शृङ्गाराभ्रमें सोना व लोहा २-२माशा मिश्रित करनेसे इसको सार्वभौमरस कहते हैं।

**श्रीजयमंगल रस**—शिंगरफसे निकाला हुआ पारा, गन्धक, सुहागेकी खील, तामा, बङ्ग, सोनामक्खी, लोहा, चाँदी, सेंधानमक व कालीमिर्च प्रत्येक एक एक भाग सोना २ भाग लेकर धतूरेके पत्ते व हारसिंगारके पत्तोंके रसको, दशमूलका क्वाथ व चीतेके क्वाथकी ३-३ बार भावना देकर २ रत्ती प्रमाण वटी बना कर रखना। इसको सब प्रकारके पुराने ज्वरोंमें प्रयोग करना चाहिए।

**श्रीज्वरमुरारी**—शिंगरफ, मीठातेलिया, सोंठ, पीपल, मिर्च, सुहागेकी खील, नागरमोथा ( कोई कहते हैं-सोंठ ) व हरड़ प्रत्येक समान भाग, जमालगोटेके बीजोंका चूर्ण सबके समान लेकर जलमें पीस कर मटर प्रमाण वटी बना कर रखना।

**श्रीनृपति वल्लभ**—जायफल, लौंग, नागरमोथा, दालचीनी, इलायची, सुहागेकी खील, हींग, जीरा, तेजपात, अजवायन, सोंठ, सेंधानमक, लोहा, अभ्रक, पारा, गन्धक, ताम्रभस्म प्रत्येक १-१ भाग, कालीमिर्च २ भाग लेकर बकरीका दूध वा आमलेके रसमें मर्दन कर आधा माशा प्रमाण वटी बना कर रखना। ग्रहणी, अतिसार आदि सब प्रकारके उदर रोगोंमें और अजीर्ण, अग्निमान्द्य, शूल, अर्श, गुल्म, ज्वर, प्लीहा व विविध रोगोंमें प्रयोग करना चाहिए।

**श्रीविल्व तैल**—तिलका तेल ४ सेर। क्वाथके लिए बेलगिरि १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, आमलेका रस ४ सेर, बकरीका दूध ८ सेर। कल्कके लिए आमला, लाख, हरड़, नागरमोथा, लालचन्दन, नेत्र वाला, सरलकी लकड़ी, देवदारु, मंजीठ, सुफेदचन्दन, कूट, इलायची, तगर, बालछड़, छारछबीला, तेजपात, फूलप्रियंगु, अनन्तमूल, बच, शतावर, असगन्ध, सोया व पुनर्नवा सब मिला कर १ सेर।

**श्रीवेताल रस**—पारा, गन्धक, मीठातेलिया, कालीमिर्च व हरताल समान भाग लेकर जलमें मर्दन कर १ रत्ती प्रमाण वटी बना कर रखना।

**श्रीमदनानन्दमोदक**—पारा, गन्धक, लोहा प्रत्येक १ तोला,

अभ्रक ३ तोला, कपूर, सेंधानमक, बालछड़, आमला, इलायची, सोंठ, पीपल, मिर्च, जवत्री, जायफल, तेजपात, लौंग, जीरा, कालाजीरा, मुलेठी, बच कूठ, हल्दी, देवदारु, समुद्रफल, सुहागा, भारंगी, सोंठ, नागकेशर, काकड़ासिंगी, तालीशपत्र, दाख, चमेलीकी जड़, दन्तीके बीज, खरेटी, गंगेरन, दालचीनी, धनिया, गजपीपल, कचूर, नेत्रबाला, नागरमोथा, प्रसारणी, विदारीकन्द, शतावर, आंकड़ेकी जड़, कौंचके बीज, गोखरू, चिरायता व भाँगके बीज प्रत्येक २ तोला लेकर इन सब चीजोंको शतावरके रसमें मर्दन कर व सुखा कर फिर दूसरी बार चूर्ण करके रखना। तब इस सब चूर्णका चौथाई भाग सेमलकी जड़का चूर्ण और इस चूर्णका आधा भाँगका चूर्ण लेकर इस सब चूर्णको बकरीके दूधमें पीस कर रखना। तब इस सब चूर्णसे दूनी चीनी बकरीके दूधमें घोल कर पकाना। चीनीकी चासनी तय्यार होजाने पर ऊपर लिखित सबका सब चूर्ण प्रक्षेप देकर पाक समाप्त करना। तदनन्तर दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर, कपूर, सेंधानमक व त्रिकटु इन सबका थोड़ा २ चूर्ण और उपयुक्त मात्रामें घी व शहद मिला कर मोदक बना कर रखना।

**श्री मृत्युंजय रस**—मीठातेलिया, कालीमिर्च, पीपल, गन्धक सुहागेकी खील प्रत्येक १-१ भाग, सिंगरफ २ भाग लेकर अदरकके रसमें मर्दन कर मूँग प्रमाण वटी बना कर रखना। अनुपान विशेषसे सब प्रकारके ज्वरोंमें प्रयोग करना चाहिए।

**श्री रामवाण रस**—पारा, गन्धक, मीठातेलिया, लौंग प्रत्येक १ तोला, कालीमिर्च २ तोला, जायफल ६ माशा लेकर कच्ची इमलीके फलोंके रसमें व अदरकके रसमे मर्दन कर उड़दके बराबर गोली बना कर रखना। अग्निमान्द्य व उदररोगमें प्रयोग करना चाहिए।

**श्लेष्म कालानल रस**—पारा, गन्धक, मामा, नीलाथोथा, मनशिल, हरताल, कायफल, धतूरेके बीज, हींग, सोनामक्खी, कूठ, निशोथ, दन्तीकी जड़, सोंठ, पीपल, मिर्च, अमलतास, बङ्गभस्म,

सुहागेकी खील प्रत्येक समान भाग लेकर थूहरके दूधमें मर्दन कर १ रत्ती प्रमाण बटी बना कर रखना।

**श्लेष्म शैलेन्द्र रस**–गन्धक, पारा, अभ्रक, सोंठ, पीपल, मिर्च, जीरा, कालाजीरा, कचूर, काकड़ासिंगी, अजवायन, कूठ, सेंधानमक, हींग, जवाखार, सुहागेकी खील, गजपीपल, जवत्री, अजमोद, लोह-भस्म, धमासा, लौंग, धतूरेके बीज, जमालगोटेके बीज, कायफल व चीतेकी जड़ प्रत्येक समान भाग लेकर बेल, आँक, चीता, दन्ती, चिर-चिटा, जीवन्ती, अडूसा, सम्हालू अरणी, धतूरा, फरहद, पीपल व कटेरी इनकी जड़के रसमें, अदरकके रसमें, व कालेजीरेके काथमें यथा क्रम भावना देकर १ रत्ती प्रमाण बटी बना कर रखना। ज्वर और कफ प्रधान जो कोई भी रोग हों उनमें प्रयोग करना चाहिए।

**श्वासकुठार रस**–पारा, गन्धक, मीठातेलिया, सुहागेकी खील, मनशिल, मिर्च व त्रिकटू प्रत्येक समान भाग लेकर जलमें मर्दन कर १ रत्ती प्रमाण बटी बना कर रखना।

**श्वास चिन्तामणि**–लोहा ४ तोला, अभ्रक २ तोला, गन्धक २ तोला, पारा १ तोला, सोनामक्खी १ तोला, मोती ६ माशा लेकर कटेलाके रस, अदरकके रस, बकरीका दूध व मुलेठीके काथकी भावना देकर ४ रत्ती प्रमाण बटी बना कर रखना।

**श्वित्रपंचानन तैल**–कड़वातैल ४ सेर। गोमूत्र, दहीका तोड़, दूध व बकरीका पेशाव प्रत्येक ४ सेर। कल्कके लिए-एरण्डके बीज, तुलसीके बीज, बावचीके बीज, पवाँड़के बीज, कड़वी तोरईके बीज, पीपल, ढेरेके बीज, मनशिल, हीराकसीस, हरड़, कूठ व बायविडंग सब मिला कर १ सेर। यथा विधि पकाना।

**श्वेतारिरस**–पारा, गन्धक, त्रिफला, भंगरा, बावची, भिलावा, कालेतिल व नीमके बीज प्रत्येक समान भाग लेकर भंगरेके रसकी ३ सप्ताह तक भावना देकर व सुखा कर रखना। मात्रा–१ माशा।

**षड्बिन्दु तैल**–तिलका तेल ४ सेर। बकरीका दूध ४ सेर, भंगरेका रस १६ सेर। कल्कके लिए–एरण्डकी जड़, तगर, सोया,

जिवन्ती, रायसन, सैंधानमक, [illegible], वायविडंग, मुलेठी व सोंठ सब मिला कर १ सेर।

**संग्रहग्रहणी कपाट**—सीसा, सोना, पारा, गन्धक, सुहागेकी खील, अभ्रक, कौड़ी भस्म व मीठा तेलिया प्रत्येक समान भाग, ताम्र-भस्म सब चूर्णके समान लेकर अगस्तके पत्तोंकी भावना देकर २ पहर तक पुटपाक करना तदनन्तर उसको लोहेके बर्तनमें रख कर धतूरा चीता व मुसलीके रस की भावना देकर २ रत्ती प्रमाणवटी बना कर रखना। सब प्रकारकी ग्रहणी और अतिसार, अर्श, प्रमेह व अग्निमान्द्य रोगमें प्रयोग करना चाहिए।

**सन्निपात भैरव रस**—हिंगुल ४॥ तोला, गन्धक २ तोला २ माशा, मीठातेलिया २ तोला २ माशा, धतूरेके बीज ३ तोला, सुहागे की खील १ तोला १ माशा लेकर खट्टे निम्बूके रसमें मर्दन कर १ रत्ती प्रमाणवटी बना कर रखना।

**सप्तामृत लौह**—त्रिफला व मुलेठी प्रत्येक १ भाग, लोहभस्म ४ भाग, लेकर इन सबको घी व शहदके साथ मर्दन कर रखना।

**सर्वज्वरहर लौह**—चीतेकी जड़, बहेड़ा, आमला, हरड़, सोंठ, पीपल, मिर्च, वायविडंग, नागरमोथा, गजपीपल, पीपल, मूसा, देवदारु, चिरायता, पटोलपत्र, नेत्रबाला, कुटकी, कटेली, सहजनेके बीज, मुलेठी व इन्द्रजौ प्रत्येकका चूर्ण समान भाग, सबके समान लोहभस्म लेकर जलमें घोट कर १ रत्ती प्रमाणवटी बना कर रखना। सब प्रकारके ज्वर और प्लीहा, यकृत्, अग्रमांस आदि उपद्रवोंमें प्रयोग करना चाहिये।

**सर्वाङ्गसुन्दर रस**—पारा, गन्धक व सोना प्रत्येक १ भाग, सुहागेकी खील २ भाग, मुक्ताभस्म, प्रवाल व शंखभस्म प्रत्येक आधा भाग लेकर कागजीके रसमें मर्दन कर मूषामें भर कर तीव्र अग्निमें पुटपाक करना। शीतल होने पर औषधिको निकाल कर उसमें लोहा आधा भाग और सिंगरफ चौथाई भाग मिला कर रखना। यह यक्ष्मा-रोगकी प्रधान औषधि है।

**सारस्वतघृत ( ब्राह्मी घृत )**—घी ४ सेर। ब्राह्मीका रस

१६ सेर। कल्कके लिए-हल्दी, चमेलीके फूल, कूठ, निशोथ व हरड़ प्रत्येक ८ तोला, पीपल, वायविडंग, सेंधानमक, चीनी व वच प्रत्येक २ तोला। मृदु अग्निमें पकाना।

सिंहनाद गुग्गुल—त्रिफलाका काथ २४ तोला, गन्धकका चूर्ण ८ तोला, गुग्गुल ८ तोला एरण्डका तैल ॥ सेर (कोई कहते हैं-१ सेर)। एक लोहेके बर्त्तनमें पहिले एरण्ड तेलके साथ गन्धकका चूर्ण व गुग्गुल पका कर तब त्रिफलाका काथ डालकर खूब अच्छी तरहसे मिला कर पकाते रहना। जब गोली बनाने लायक गाढ़ा होजाय तब उतार कर गोलियाँ बना कर रखना।

सिद्धप्राणेश्वर रस—पारा, गन्धक, अभ्रक, प्रत्येक ४ माशा, सज्जीखार, सुहागेकी खील, जवाखार, पाँचों नमक, त्रिफला, त्रिकटु, इन्द्रजौ, जीरा, कालाजीरा, चीतेकी जड़, अजवायन, हींग, वायविडंग व सोया प्रत्येकका चूर्ण १ माशा लेकर जलमें मर्दन कर १ माशा प्रमाण बटी बना कर रखना। प्रबल ज्वरातिसार और भयानक अतिसार, ग्रहणी व शूल आदि रोगोंमें प्रयोग करना चाहिये।

सिन्दूरादि तैल—कडुवा तेल ४ सेर, कशेरुका रस १६ सेर। कल्कके लिए-पवाँड़की जड़ ॥ सेर। पाकशेष होने पर सिन्दूर ॥ सेर प्रक्षेप देना।

सूचिकाभरणरस—पारा, गन्धक, सीसा, मीठातेलिया व काले सर्पका विष प्रत्येक समान भाग लेकर रोहितमत्स्य, सूअर, मोर, भैंस व बकरी इनके पित्तमें मर्दन कर सरसोंके प्रमाण बटी बनाकर रखना

सूतिकारि रस—पारा, गन्धक, अभ्रक, ताम्र समान भाग लेकर मालीक रसमें मर्दन कर मटर प्रमाण बटी बना कर रखना।

सैन्धवाद्य तैल—एरण्ड तैल ४ सेर, सोयेका काथ ४ सेर, काँजी ८ सेर, दहीका तोड़ ८ सेर। कल्क-द्रव्य-सेंधानमक, गजपीपल, रायसन, सोया, अजवायन, सज्जीखार, मिर्च, कूठ, सोंठ, सौंचलनमक, बिड़नमक, वच, अजमोद, मुलेठी, जीरा, पुहकरमूल (अभावमें कूठ), व पीपल इनमेंसे प्रत्येक ४ तोला। यथाविधि पकाना।

**सोमराजी तैल**—सरसोंका तेल ४ सेर। जल १६ सेर। कल्कके लिए—बावची, हल्दी, दारुहल्दी, सुफेद सरसों, कूठ, करंजवेकी छाल वा बीज, पवाँड़के बीज अमलतासके पत्ते सब मिला कर १ सेर।

**सौभाग्य वटी**—सुहागेकी खील, मीठातेलिया, जीरा, सेंधा नमक और करकच, बिड्, सौंचल व सांभरनमक, सोंठ, पीपल, मिर्च, हरड़, बहेड़ा, आमला, अभ्रक, पारा, गन्धक प्रत्येक समान भाग लेकर सम्हालू ( कोई कहते हैं—हारसिंगार ), भंगरा, कटेरू, अडूसा व चिरचिटा इन प्रत्येकके पत्तोंके रसमें पृथक् २ भावना देकर २ रत्ती प्रमाण वटी बना कर रखना।

**सौभाग्य शुण्ठी**—कसेरू, सिंघाड़ा, कमलके बीजोंका गोंद, नागरमोथा, जीरा, कालाजीरा, जायफल, जावित्री, लौंग, छानछबीला, नागकेशर, तेजपात, दालचीनी, कचूर, धायके फूल, इलायची, सोया, धनिया, गजपीपल, पीपल, मिर्च व शतावर प्रत्येक ४ तोला, सोंठका चूर्ण १ सेर, मिश्री व चीनी ३॥ सेर, घी १ सेर। गौका दूध ८ सेर लेकर यथा नियमसे पकाना।

**सौभाग्य शुण्ठी मोदक**—त्रिकटु, त्रिफला, दालचीनी, जीरा, कालाजीरा, धनिया, कूठ, अजवायन; लोहा, अभ्रक, काकड़ासिंगी, कायफल, नागरमोथा, इलायची, जायफल, जटामांसी, तेजपात, तालीश पत्र, नागकेशर, चन्दन, कपूर, मुलेठी, लौंग व लालचन्दन प्रत्येक समान भाग, सबके समान सोंठका चूर्ण, इन सबसे दुगनी चीनी और सबसे चौगुना गौका दूध लेकर यथानियमसे पकाना।

**स्वच्छन्द भैरव रस**—पारा, गन्धक, मीठातेलिया, जायफल व पीपल प्रत्येकका चूर्ण समान भाग लेकर जलमें मर्दन कर आधा रत्ती प्रमाण वटी बना कर रखना।

**स्वर्ण वङ्ग**—लोहा या मिट्टीके बर्तनमें थोड़ासा वङ्ग पिघला कर उसके समान पारा मिला देना। दोनोंके मिल जाने पर उसमें पारेके समान नौसादर व गन्धकका चूर्ण थोड़ा २ करके डालते रहना और लोहेके डंडेसे घोटना। इस तरह घोटते २ जब कज्जलीसा हो जाय,

... कज्जलीको कपड़ मिट्टीकी हुई एक आतशी शीशीमें भर कर ...लुका यन्त्रमें ४ पहर तक पकाना। इस प्रक्रियासे सोनेके कणोंके ...न परम रमणीय स्वर्णवङ्ग नामक औषधि तैय्यार होगी।

...कस्तूरी भैरव–शिंगरफ, विष, सुहागेकी खील, जवत्री, जायफल, मिर्च, पीपल व कस्तूरी प्रत्येक समान भाग लेकर जलमें मर्दन कर २ रत्ती प्रमाण वटी बना कर रखना।

स्वल्प पंचगव्यघृत–गौका घी ४ सेर, गोबरका रस ४ सेर, खट्टा गौका दही ४ सेर, गौका दूध ४ सेर, गोमूत्र ६ सेर। पकानेके लिए जल–१६ सेर।

स्वल्प धात्रीघृत–बृहद् धात्री घृतको बिना कल्कके पकानेसे उसीको स्वल्प धात्री घृत कहते हैं।

स्वल्प विष्णु तैल–तेल ४ सेर। गौ या बकरीका दूध १६ सेर। कल्कके लिए-शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, कटेरी, शतावर, एरण्डकी जड़, बड़ी कटेलीकी जड़, कटेली की जड़, करंजवेकी जड़, गंगेरन व पियावांसे ...की जड़ प्रत्येक ८ तोला। कल्क पकानेके लिए जल–१६ सेर।

स्वल्प सूरणमोदक–मिर्च २ भाग, सोंठ ४ भाग, वनका जिमीक... १६ भाग, गुड़ सबके समान भाग लेकर मोदक बना कर रखना। अर्श अग्निमान्द्य, जठर, गुल्म, शूल आदि रोगोंमें प्रयोग करना चाहिये।

स्वर्णपर्पटी–पारा ८ तोला व सोना १ तोला लेकर अच्छी तरहसे मर्दन कर दोनोंके एक जीव हो जाने पर उसमें ८ तोला गन्धक मिला ...कर ...नोंको खरलमें मर्दन कर कज्जली बनाना। तदनन्तर लौह पर्पटी ...की ...ी बना कर रखना। विविध प्रकारकी ग्रहणी व ज्वर ...

...हिये।